प्रकाशक :
राधेमोहन अग्रवाल
मैनेजिंग डायरेक्टर
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं॰ प्राइवेट लि॰ आगरा



●

प्रथम संस्करण १९५९
मूल्य पाँच रुपया

मुद्रक :
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
१ दरियागंज
दिल्ली

# दो शब्द

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और उनके सत्य एवं अहिंसा पर आधारित गांधी-दर्शन पर देश-विदेश के अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा प्रचुर साहित्य सृजन किया गया है।

महात्माजी के एक निकटतम सहयोगी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक प्रमुख स्तम्भ, गांधी दर्शन के प्रामाणिक व्याख्याता और "कांग्रेस का इतिहास" जैसी पुस्तकों के सिद्धहस्त लेखक माननीय डा. बी. पट्टाभि सीतारमैय्या द्वारा लिखित Gandhi and Gandhism (दो भाग) को अंग्रेजी जानने वाले पाठकों ने बहुत पसन्द किया है। उनकी लेखनी का प्रसाद हिन्दी भाषी पाठकों तक पहुंचाने की दृष्टि से हम Gandhi and Gandhism के द्वितीय भाग का हिन्दी अनुवाद हिन्दी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं।

इससे पूर्व हम प्रथम भाग का हिन्दी अनुवाद अपने पाठकों को भेंट कर चुके हैं, जिसकी हिन्दी साहित्य-जगत् में मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है। इन दोनों भागों में गांधी दर्शन की पूर्ण एवं प्रामाणिक व्याख्या के साथ-साथ पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत संपन्न किये जाने वाले राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्यों का भी विवेचन किया गया है।

यदि पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से आत्म-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण में कुछ भी प्रेरणा मिली तो हम अपने प्रयास को सार्थक समझेंगे।

राधेमोहन अग्रवाल
मैनेजिंग डायरेक्टर,
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं॰ प्रा॰ लिमिटेड

आगरा
१ जनवरी, १९५९

# विषय-सूची

पहला अध्याय

# गांधीवाद और समाजवाद

## १

## समाजवाद

एककोषीय अमीबा से सभ्य मनुष्य के नाम से ज्ञात अत्यन्त जटिल जीवधारी की ओर विश्व की प्रगति में हमें जलचर से स्थल-जलचर, भूचर, मेरुदंडीय चतुष्पद द्विपद मानवाकृति और अन्त में मनुष्य के रूप में विकास की विभिन्न अवस्थाएं दृष्टिगोचर होती हैं। आकाश के पक्षियों के अपने घोंसले होते हैं पृथ्वी पर विचरने वाले पशुओं की अपनी मांदें होती हैं और आदम तथा ईव की सन्तानों ने अपने लिए छोटी-छोटी झोंपड़ियां या गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का निर्माण किया है। जंगल के पशु रात को अपन शिकार की तलाश में घूमते हैं और कुओं मांदों या कन्दराओं में अपना निवास-स्थान बनाते हैं। वे एक प्रतियोगिता के विश्व में जिसमें कमजोरों का नामोनिशां मिट जाता है अपनी शक्ति के भरोसे जिन्दा रहते हैं। मनुष्य ने सहयोग के सिद्धांत का विकास किया है। परन्तु प्रतियोगी युग के ये अवशेष पश्चिम की—यूरोप और अमरीका की—सभ्यताओं में अब भी दृष्टिगोचर होते हैं जहां अकेला एक आदमी दूसरे का शोषण नहीं करता वहां न केवल पश्चिम और पूर्व के राष्ट्रों में एक निरन्तर संघर्ष हो रहा है अपितु वहां स्वयं पश्चिम के विभिन्न राष्ट्रों में एक सतत संघर्ष जारी है। इस संघर्ष में सामयिक युद्ध पारस्परिक मतभेदों को मिटाने का एक सर्व-स्वीकृत साधन बन चुके हैं और इंसान एक बार फिर अपने साथियों की हत्या करके मानव-शिकार की टोह में घूमने और जमीन के नीचे मांदों खाइयों तथा बन्कर्ों में रहने के लिए विवश हुआ है। इस प्रकार सभ्यता का आधार हिल चुका है और विश्व की प्रगति अवरुद्ध हो गयी है।

## भारत में विपरीत प्रगति

जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र द्वारा विजय कर लिया जाता है और इस विजय का रूप बहुमुखी होता है तब शीघ्र ही जैसा कि भारत में हुआ विजेता राष्ट्र द्वारा विजित राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के विशिष्ट रूप उसकी ललित कलाएं और उद्योग तथा उसके राष्ट्रीय जीवन के ध्येय एवं उद्देश्य अभिभूत कर लिए जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् ५७ के महान् भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के बाद से पश्चिमी संस्थाओं के सम्पर्क में आने के कारण तथा पश्चिमी जीवन और साहित्य के प्रभाव के कारण हमारे भारतीय

समाज का ढांचा पूर्णतः बदल चुका है। न केवल शिक्षा, न्याय-प्रणाली और व्यवस्थापन के क्षेत्रों में ही न्यायालयों, कचहरियों और कौंसिलों द्वारा ये प्रभाव हम पर बड़े गहरे रूप में पड़े हैं अपितु ये हिन्दुस्तान के बाजारों पर, भारतीयों द्वारा अपनाए जाने वाले फैशनों और वस्त्रों पर, पश्चिम के उद्योगपतियों द्वारा उत्पन्न किये गये मशीनरी के प्रति भ्रम पर, जिसके परिणामस्वरूप एक ओर गांवों का शोषण होता है और दूसरी ओर उनके शोषण से हमारे शहर फलते-फूलते हैं अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। हिन्दुस्तान की गरीबी के होते हुए भी ग्रामीणों के रक्त का शोषण करके संपत्ति शहरों में इकट्ठी हो गयी है और कुछ व्यापारिक संस्थानों में उसका प्रभाव हो रहा है। इस पूंजी के साथ मिलें खड़ी की गयी हैं जिन्होंने ग्रामीण उद्योग-धन्धों तथा कला-कौशल का सर्वनाश कर डाला है परन्तु इस सर्वनाश का आरम्भ पश्चिमी देशों से यन्त्र-निर्मित वस्तुओं के आयात से हुआ। भारतीय समाज के सामने जो युगों तक सम्पत्ति और शक्ति के सन्तुलित विनिमयन पर फलता-फूलता रहा और जिसने सफलतापूर्वक बेकारी का सामना किया विदेशी शासन के फल-स्वरूप अब ऐसी विकट समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं जिनका सामना पश्चिम वालों को भी करना पड़ रहा है। भारत में पूंजीवाद के आक्रमण उतने भयंकर न होते जितने कि ये पश्चिम में हुए हैं। परन्तु पश्चिम में पूंजीवाद को जन्म देने वाले साम्राज्यवाद ने हिन्दुस्तान में भी प्रवेश किया और हमारे सामने कई समस्याएं खड़ी कर दीं जैसे पूंजी कुछ थोड़े से धनी मानी व्यक्तियों के हाथों में इकट्ठी हो गई और किसानों का विशाल समुदाय भूमि के स्वत्वाधिकार से वंचित होकर मुजारों की सी जिन्दगी बिताने पर मजबूर हुआ। पश्चिम में पूंजीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया ने समाजवाद का रूप ले लिया है, बलियों द्वारा धारण किये जाने वाले एक रक्षक शस्त्र के रूप में नहीं अपितु बढ़ते हुए पूंजीवादी प्रयासों के कारण पैदा होने वाली बुराइयों के शोषण के निमित्त समाज द्वारा अपनायी गयी एक नई विचार धारा के रूप में। हिन्दुस्तान के नगरों में कुछ वर्षों में पश्चिम के उद्योगों की नकल की है और यद्यपि सारे देश में विद्युत् द्वारा संचालित उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या कोई बहुत अधिक नहीं है फिर भी आवास, शिक्षा, बच्चों का पालन-पोषण, प्रसूतिका तथा श्रमिकों की तनख्वाहों और श्रमिकों, श्रम और तनख्वाहों एवं काम के घंटों और छुट्टियों में संबंध की समस्याएं प्रमुख रूप से उठ खड़ी हुई हैं और लाखों ग्रामवासियों की बेकारी की समस्या की उपेक्षा कर दी गयी है। पश्चिम की संस्कृति, उसके आर्थिक सिद्धान्तों और समस्याओं को उत्तराधिकार में पाने वाले शिक्षित तरुणों ने निश्चित रूप से पूंजीवादी विकास की दिशा का अनुसरण करने वाली समाजवादी विचारधारा के प्रति पक्षपात भी उत्तराधिकार में पाया है।

## भारत में समाजवाद की तीव्र प्रगति

समाजवाद की विचारधारा हमारे देश में बड़ी तेजी से फैली और इसी के परिणाम-

स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दो दलों में तीव्र मतभेद पैदा हो गये। परन्तु गांधी दर्शन की प्राणस्वरूप अहिंसा के सिद्धांत द्वारा प्राप्त सफलताओं का ही यह परिणाम था कि इन मतभेदों की सर्वथा उपेक्षा कर दी गयी। वस्तुतः जब एक बार अहिंसा की शक्ति को स्वीकार कर लिया जाता है, तो हमारे सामने एक नया और कभी न समाप्त होने वाला शक्ति का स्रोत प्रकट हो जाता है और अहिंसा के सिद्धांत पर परिपोषित एक सामाजिक संरचना एक नया शक्ति-भंडार सिद्ध हुई है जिसके चालक गांधीजी अहिंसा और सत्य के डायनमो द्वारा पर्वतों को कम्पायमान करने वाली और साम्राज्यों को उखाड़ फेंकने वाली अनन्त शक्ति का सृजन कर रहे हैं। निर्माणात्मक पक्ष की ओर, गांधीजी ने मानो भूकम्प से ध्वस्त राष्ट्र के मलबे को मोटर-संचालित ट्रैक्टरों द्वारा खोद निकाला है और वे इसे साफ करने के महान् कार्य में लगे हुए हैं ताकि हमारी मृतप्राय प्राचीन सभ्यता में पुनः जीवन ज्योति और उत्साह का संचार हो। गांधीजी का समाजवाद केवल एक भौतिक शक्ति नहीं है अपितु एक नैतिक शक्ति है जिसने उपेक्षा के कारण वीरान पड़े और बन्जर से मृतप्राय एवं जड़ीभूत राष्ट्रीय संस्कृति के क्षेत्रों को फिर से सरसब्ज बनाने में सहायता पहुंचायी है। वे अपने इस महान् कार्यक्रम का आधार अहिंसा को बताते हैं और मन वचन एवं कर्म से हिंसा का पूर्णतः प्रतिषेध करते हैं।

जब हमारे साथी एक समाजवादी सरकार के पक्ष में तर्क करते हैं तो वे हमें यह नहीं बताते कि वे अपने ध्येय की प्राप्ति हिंसा से करेंगे या अहिंसा का आश्रय लेकर। इसलिये वे या तो धीरे-धीरे अहिंसक स्वरूप की ओर मुड़ गये हैं और गांधीवादी दर्शन को उन्होंने हार्दिक भाव से स्वीकार कर लिया है या फिर उन्होंने स्पष्ट रूप से साम्यवादी सिद्धान्तों को अपना लिया है और वे हिंसा के प्रचारक बन गये हैं। वे समाज के निम्न दो रूपों में स्पष्ट भेद करते हैं। एक तो समाज का वह रूप है जिसमें सामाजिक एवं आर्थिक आधार पर विभाग कर दिये गये हैं जो हमेशा के लिये विभिन्न समूहों में शक्ति-सन्तुलन कायम रखते हैं और समाज का दूसरा रूप वह है जो हमेशा हलचल की अवस्था में है और जिसमें प्रतियोगिता तथा हिंसा की अग्नियों पर प्रज्वलित जीवन-रूपी पात्र में शाश्वत वाष्प धाराएं उबल रही हैं और तल की ओर से सदा ऊपर उठने का प्रयत्न करने वाली धाराओं को दबा रही हैं। वस्तुतः आज का संघर्ष एक सर्वशक्तिमान राज्य के विचार और मानव व्यक्तित्व के विचार के बीच में है प्रतियोगिता और सहयोग में है आत्मा और प्रकृति में है धन और सेवा में है, चरखे और मशीन में है।

## समय की गति

कोई भी रीति-रिवाज या संस्था चाहे वह कितनी ही पुरातन या पवित्र हो उसे बदलते हुए समय की चुनौती को स्वीकार करना ही होगा। इसके विरुद्ध, कोई भी परिवर्तन

चाहे वह कितना ही आकर्षक हो बिना सन्देह के स्वीकार नहीं किया जा सकता। ये तो केवल साधारण सी चीजें हैं परन्तु इन साधारण चीजों में भी सत्य अन्तर्हित होता है जो हमारे जीवन के आचार-व्यवहार का पथ-प्रदर्शन करता है। इसलिये हमारे देश के सामने दो रास्ते खुले हैं या तो वह औद्योगिक क्रांति के बाद आने वाली बुराइयों के इलाज के लिये पश्चिम के तौर-तरीकों को अपना ले या फिर समाज के प्राचीन ढांचे और मूल्यों का इसके कर्तव्यों के विभाजन का इसके देश के संगठन का सहानुभूतिपूर्वक पुनर्निरीक्षण करे, जिसके परिणामस्वरूप पांच मुख्य आधारों पर स्थिर करते हुए सामाजिक जीवन का संतुलन दृष्टिगोचर होता है। वे पांच आधार ये हैं (१) राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता (२) समाजवाद के सिद्धांत के विरोध में व्यास द्वारा प्रतिपादित आर्थिक पूंजीवाद, श्रमिकों द्वारा मुनाफायी गयी श्रमिकों की समस्याएं, संयुक्त-परिवार-प्रणाली तथा ग्राम का सामुदायिक जीवन (३) जीवन के भौतिक पक्षों पर बल देने वाले विज्ञान द्वारा निषिद्ध आध्यात्मिक पक्षों का विकास करने वाला धर्म (४) मनुष्यों का नहीं अपितु वर्ग का अभिनायकतन्त्र जो विशेष वर्ग की वृद्धि के प्रजातंत्र का विरोध करता है, जिसका कि नहीं और (५) स्वामी के रूप में शक्ति का सेवक की तरह नियन्त्रण करने वाली अहिंसा। इस प्रकार विरोधी गुणों का संतुलन करके हम एक ऐसे संश्लेषण पर पहुँचेंगे जो कि वर्तमान और भूत में एक मधुर समस्वरता पैदा करेगा सिद्धांत और नीति का मिश्रण करेगा और सांसारिक तथा दैवी तत्त्वों में पारस्परिक सम्बन्ध की सृष्टि करेगा। इसलिये किसी भी समाधान का यह पुरातन है इस आधार पर परित्याग नहीं करना चाहिए और किसी भी समस्या को उसकी आधुनिकता के कारण असमाधेय नहीं समझना चाहिये। अब हम इस कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए हैं जो कि जितना ही ठीक है उतना ही कठिन है हम केवल उपचारात्मक उपायों का ही आश्रय न लेकर निवारक उपायों को अपनाने के लिये प्रयत्नशील होंगे। उपचार अच्छा है परन्तु परहेज उससे भी अधिक अच्छा है, चाहे वह शारीरिक बीमारी के क्षेत्र में हो चाहे वह राजनीतिक बीमारी के क्षेत्र में हो और इसी भावना के साथ हम उन सिद्धांतों के अध्ययन का समर्थन करते हैं जिन्होंने हिन्दू समाज के ढांचे और मूल्यों को नियमित किया है। हमें उन मूल्यों पुराने तौर-तरीकों का अध्ययन करना चाहिये जिनको अपना कर यद्यपि गरीबी को दूर नहीं किया जा सका था फिर भी कुछ व्यक्तियों के हाथों में संपत्ति के संग्रह को जिन्होंने रोका था जिन्होंने यद्यपि न्यून-रोजगार को दूर नहीं किया था परन्तु बेकारी का सर्वथा उन्मूलन कर दिया था।

## सभ्यता के दो रूप

हम विश्व की सभ्यताओं को दो वर्गों में बांट सकते हैं—एक तो वे जो धन पर आधारित हैं और दूसरी वे जिनका आधार संस्कृति या विद्वत्ता है। प्रायः ऐसा कहा जाता है कि

धन की देवी लक्ष्मी चंचला होती है और विद्या की देवी सरस्वती चंचला नहीं होती। भारतीय प्रथा के अनुसार, लक्ष्मी और सरस्वती में युगों पुराना संघर्ष रहा है और वस्तुतः इसी संघर्ष को भारतीय सभ्यता के आधार रूप में स्वीकृत किया गया है। हमारी हिन्दू सभ्यता म लक्ष्मी और सरस्वती को एक दूसरे से पृथक रखा गया है और समाज में संतुलन समाज-रूपी घड़ी को चलाने वाले शक्ति-पूरक बोलक द्वारा स्थापित किया जाता है। एक विशेष प्रकार के वातावरण में परिपोषित भारतीय सभ्यता पर पश्चिम की सभ्यता ने एकाएक आक्रमण किया है जो धन की उच्चता पर आधारित है और सरस्वती जिसकी दासी है और जिसकी प्राप्ति के लिये सरस्वती को साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

हमें अब यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमें उस सभ्यता को सर्वथा असफल कहना होगा जिस सभ्यता के प्रभाव के कारण

किसान धन-धान्य पैदा करते हैं और भूखों मरते हैं,
बुनकर कपड़ा बुनते हैं और नंगे रहते हैं
सहकारी समितियों के अधिकारी रुपया उधार लेते हैं और वापस नहीं देते,
डाक्टर बीमार पड़ जाते हैं और स्वयं सिधार जाते हैं
वकील मुकदमे लड़ने लगते हैं और उनमें हार जाते हैं,
इंजीनियर ऐसे घरों का निर्माण करते हैं जो शीघ्र ही धराशायी हो जाते हैं,
अध्यापकों के लड़के अध्ययन करते हैं और परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं,
जनता के सेवक तनख्वाहें लेते हैं परन्तु जनता की सेवा नहीं करते,
बैंक धनराशि जमा करते हैं और अपने द्वार बन्द कर देते हैं,
आय-कर अधिकारियों के लड़के इंकोरैन्स एजेन्ट बन जाते हैं,
एक मां अपने बच्चों को जहर दे देती है,
एक बाप अपने लड़कों को बेचता है, और
एक भाई सारे खेत का सफाया कर देती है।

तथ्य तो यह है कि लूट-खसोट और लोभ ने सहानुभूति तथा मैत्रीपूर्ण सहयोग का स्थान ले लिया है, व्यापार में ईमानदारी की जगह सट्टे ने ले ली है, सत्य-व्यवहार के स्थान पर छल-प्रपंच ने अपना अधिकार कर लिया है और काम क्रोध आदि आवेश न्याय-भावना तथा प्राकृतिक भावों पर हावी हो गये हैं। सबसे बढ़कर विद्या या सरस्वती लक्ष्मी की दासी और उसके हाथों का खिलौना बन गयी है।

विश्व के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की धारा के निश्चय करने में व्यक्तिवाद और समूहवाद एक दूसरे को पराभूत करने में एक दूसरे पर हावी होने में प्रयत्नशील है। एक तो युद्ध स्वतन्त्र प्रतियोगिता है और दूसरा युद्ध राज्य-समाजवाद है। युद्ध स्वतन्त्र प्रतियोगिता में व्यापारी के सामने विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है जिसमें कोई एकाधिकार नहीं

है कोई आर्थिक सहायताएं नहीं हैं कोई विशेषाधिकार नहीं है कोई श्रमिक संघ नहीं है कोई सामाजिक व्यवस्थापन नहीं है और वस्तुओं के स्वतन्त्र विनिमय में किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है। सरकार केवल कानून और व्यवस्था की स्थापना करती है। यही सब कुछ है। 'सस्ता खरीदो और मंहगा बेचो' यह नारा है। मुनाफ़ों से कुछ दान-पुण्य किया जाता है परन्तु उन्हें पवित्र समझा जाता है।

शुद्ध राज्य-समाजवाद किराया ब्याज रायल्टी सट्टा और अनार्जित आय को मिटा देता है। सरकार ही एकमात्र भूमियों मकानों साधन-सामग्री और परिवहन के साधनों की स्वामी होती है, वही सारे श्रमिकों को काम पर लगाती है, लागत पर ही वस्तुओं को बिक्री पर रखती है लागत पर ही वस्तुएं खरीद करती है और सब काम करने के इच्छुक व्यक्तियों को काम मुहैय्या करती है। समाज में आलसी बनी नज़र नहीं आते। कोई भी गरीब या धनवान नहीं होता। उद्योग द्वारा उत्पन्न वस्तुएं अपने 'उत्पादकों' के पास वापस लौट जाती हैं। परन्तु सत्य वस्तुतः इन दोनों के बीच में है।

इस भेद के मूल में व्यक्ति और संपूर्ण राष्ट्र दोनों का सम्पत्ति के प्रति प्रेम विद्यमान है। पूंजीवादी जिसने धनसंग्रह किया है और अधिक संपत्ति चाहता है साम्राज्यवादी जिसके कब्जे में पहले से ही कई राज्य हैं और अधिक राज्यों की कामना करता है। इसलिये प्रथम दर्शन में तो सम्पत्ति और परिवार प्रथा की समाप्ति शीघ्र और निश्चित उपचार दिखायी देती है परन्तु सम्पत्ति विवाह और धर्म का नामोनिशां मिटाने की इच्छा रखने वाले रूस को भी अपने लंबे और कड़वे अनुभवों के बाद विवश होकर इन तीनों को पुनः स्थापित करना पड़ा है। जब आप किसी हाव-भाव या चेष्टा का फ़िल्म चित्र लेते हैं तो फ़िल्म के पूरे प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिये आपको सैकड़ों चित्रों को मिलाना पड़ता है। उनमें से अकेली कोई तस्वीर आपके प्रयोजन की नहीं होती। इसी प्रकार रूसी क्रांति के विश्वस्त प्रतिबिम्बित्व के रूप में हमें संपूर्ण रूसी क्रांति को ध्यान में रखना होगा उसकी विभिन्न अवस्थाओं को नहीं। संसार में यह अनुभव नहीं किया गया कि व्यक्तिगत अधिकारों की अंतिम परीक्षा यह है कि ये अधिकार समाज के सर्व-सामान्य लाभ के लिये प्रयोग में लाये जा रहे हैं या नहीं। सेन्ट एम्ब्रोस के कथनानुसार,

> भगवान् की ऐसी इच्छा है कि पृथ्वी पर सब मनुष्यों का अधिकार हो और इसके फल सभी भोगें। लोभ ने ही सम्पत्ति के अधिकार को जन्म दिया इसलिए यह बिल्कुल न्याय्य है कि समस्त मानव-जाति को सामान्य रूप से दी जाने वाली सम्पत्ति पर अपने व्यक्तिगत स्वामित्व का दावा करने वाले मनुष्य को, अपनी सम्पत्ति का कम से कम कुछ हिस्सा तो गरीबों में बांटना चाहिए। व्यक्तिगत सम्पत्ति सर्व-सामान्य के लाभ के लिए हो अन्यथा इसकी न्याय्यता सिद्ध नहीं की जा सकती। व्यक्तिगत सम्पत्ति तभी तक अच्छी है जब तक यह

सर्वसाधारण को मुक्त कर सकती है। इस संसार की किसी वस्तु पर मनुष्य का ऐसा निरपेक्ष स्वामित्व नहीं है जो उसे भगवान् के कानून से बाहर रखे और उसे यह सोचने से कि अपने अधिकार के प्रयोग के बदले में वह भी भगवान् का ऋणी है दोषमुक्त कर दे।

सेण्ट थामस एक्विनास का कथन है

भगवान् द्वारा मनुष्य को दिये गये भौतिक पदार्थ, जहाँ तक उनके स्वामित्व का प्रश्न है, उसके हैं, परन्तु उनके प्रयोग के विषय में यदि वे आवश्यकता से अधिक हों तो उन पर दूसरे व्यक्तियों का अधिकार है जो उनसे लाभ उठा सकते हैं।

इसलिये संपत्ति के स्वामी का अपनी संपत्ति पर दावा उसकी आवश्यकताओं के अनुसार है परन्तु जब युक्तियुक्त रूप में उसकी आवश्यकताएं पूरी हो जायें तो उसे दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिये। किसी ने यह ठीक ही कहा है "संपत्ति के स्वामी के अपने कर्तव्य हैं और निर्धन व्यक्ति अपने कुछ अधिकार रखता है।

श्रद्धा और विश्वास के युग में यह सभी स्वीकार करते थे कि "जरूरतमन्द लोगों को देना दान नहीं अपितु न्याय है—सामाजिक न्याय। आधुनिक समय में ११वें पोप पायस ने अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अनुचित रीति से रोके हुए न्याय के लिए दान कोई स्थानापन्न नहीं है। न्याय से इनकार करने वाले मनुष्य दान नहीं करते।

आज के युग का सबसे बड़ा दोष यह है (सोशल आर्डर में एक लेखक कहता है) कि इस अर्थ में हमारे समाज में बहुत थोड़ी व्यक्तिगत सम्पत्ति है क्योंकि बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं जो वस्तुतः ऐसी संपत्ति के स्वामी हों जिसके जरिये वे अपना निर्वाह कर सकें। वस्तुतः हम ऐसा कह सकते हैं कि नैतिक अर्थों में व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप हो गया है क्योंकि लोग उस संपत्ति के अधिकारी नहीं हैं जिसके सहारे वे जिन्दा रहते हैं और संपत्ति के संरक्षक रूप में उत्तरदायित्व को भी अब स्वीकार नहीं किया जाता।

बहुत अधिक ऐश्वर्य के स्वामी जो अपनी व्यक्तिगत संपत्ति का उपयोग सर्वसाधारण के हित के लिए नहीं करते वे अपने हित की ओर से भी आंखें मूंदे हुए हैं। उन्हें मुसीबत का बहुत कम सामना करना पड़ता है। वे नैतिक अर्थों में बहुत कम दान देते हैं। इसीलिए राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया है। राज्य कष्ट की उपेक्षा नहीं कर सकता। राज्य उस कर्तव्य को पूरा करने के लिए विवश है जो कि नैतिक नियमानुसार व्यक्तियों का है। यदि सम्पत्ति के स्वामी संरक्षक के उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं करेंगे तो उनका स्वामित्व नष्ट हो जायगा।

---

१ दी सोशल आर्डर, इलाहाबाद नवम्बर १, १९४ ।

इसीलिये गांधीजी ने बार-बार इस विचारधारा का समर्थन किया है कि संपत्ति के स्वामी तो केवल समाज के ट्रस्टी हैं और उनको यह शोभा नहीं देता कि वे अधिकाधिक सम्पत्ति के भण्डार लगाते चले जायें और इसे अपने भोग-विलास में तथा फिजूलखर्ची में व्यर्थ ही नष्ट कर दें।

## राज्य समाजवाद

कभी-कभी हमें सामूहिक स्वामित्व के बारे में बड़ी-बड़ी प्रशस्तियां और प्रशंसा-वचन सुनने का अवसर प्राप्त होता है परन्तु हम शीघ्र ही यह नहीं देख पाते कि इसमें भी किसी उद्योग और प्रशासन के क्षेत्र में पूर्ण राज्य-नियंत्रण और अधिकार की भावना विद्यमान है। राज्य का पुलिस और राजकीय सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों पर बड़ा कड़ा नियंत्रण होता है। प्रेस का गला घोंट दिया जाता है या उसका नियंत्रण कर लिया जाता है। जिस प्रकार सूदखोरों और निर्यात के लिए, अपने देश में खपत के लिए नहीं बड़े पैमाने पर सामान बनाने वाले व्यापारियों के पूंजीवादी समाज में दासता पायी जाती है ठीक उसी प्रकार, तथाकथित राज्य-समाजवाद में भी एक घृणित प्रकार की दासता के दर्शन होते हैं। यहां पर व्यक्तियों के अत्याचार के स्थान पर आपको राज्य के अत्याचारों का सामना करना पड़ता है।

> राज्य-समाजवाद की पूर्णतः संगठित शासन-प्रणाली में (अनुभवत हुक्सले का कथन है) दान को केवल व्यर्थ ही नहीं अपितु अपराध समझा जायेगा। दान-पुण्य करने वाले व्यक्तियों पर इसलिए मुकदमा चलाया जायगा कि उन्होंने राज्य के सहायता-कार्यों में अपने भद्दे, अदक्ष और शौकिया ढंग से हस्तक्षेप करने का दुस्साहस क्यों किया।

केवल प्रजातन्त्र भी इन बुराइयों के लिए रामबाण औषधि नहीं है। मुख्य बात तो यह याद रखने की है कि हमारा उत्पादन सेवा के लिए है या धन के लिए। अगर राज्य-नियंत्रण फ़ासिस्टवाद की ओर ले जाता है तो प्रजातन्त्र के परदे में साम्राज्यवाद छिपा हुआ है। प्रजातन्त्र तो केवल उसका सहायक है। इंग्लैंड में ज्येष्ठाधिकार के कानून के अनुसार सबसे बड़ा लड़का अपने पिता की संपत्ति कारखानों बाग़ों शिकारगाहों और ज़मीन जायदाद का एकमात्र उत्तराधिकारी होता है। छोटे लड़के कारखानों के एजेण्ट जागीरदारों, अधिराज्यों और आश्रित राज्यों के प्रशासकीय गवर्नर होते हैं और व्यापारिक बाजारों को अपने नियंत्रण में रखते हैं। इसके बाद मंत्रियों और महन्तों का नम्बर आता है जो थोक के एजेंट या खुदरा मोटर गाड़ी के व्यापारी होते हैं। संपूर्ण इंग्लैंड और स्काटलैंड या ब्रिटेन एक लिमिटेड कम्पनी है जिसे ब्रिटिश एम्पायर लिमिटेड का नाम दिया जा सकता है और जिस कम्पनी के स्मृति-पत्र तथा अनुच्छेदों में साम्राज्यवाद का उद्देश्य वर्णित है

अर्थात् कच्चे माल की प्राप्ति तैयार माल की बिक्री और बहुरूपी—क्षेत्रीय और प्रकाश-कीय मानसिक और नैतिक बौद्धिक और आध्यात्मिक—प्रभुत्व द्वारा आवश्यक राज-नैतिक तथा सैनिक नियन्त्रण का प्रयोग। राजकीय योजना बोनसों धर्मार्थ सहायता और भत्तावृत्तियों द्वारा यह शोषण का कार्यक्रम और भी अधिक विधिबद्ध बन जाता है। राष्ट्र योजना लाभप्रद हो सकती है बशर्ते कि यह राष्ट्र के क्षेत्र से बाहर अव्यवस्था उत्पन्न न करे, जो अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय शोषण का रूप ले लेता है।

एक प्रकार के समाज को दूसरे प्रकार के समाज में परिवर्तित करने की प्रक्रिया दूरस्थ की सी शीघ्रता द्वारा संपन्न नहीं की जा सकती जब तक कि हिंसा का आश्रय न लिया जाय। हिंसा की शक्ति द्वारा जो वृद्धि होती है उसमें और भी अनेक अवांछनीय तत्त्व साथ मिले होते हैं यह एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगत वृद्धि नहीं होती। पहली प्रकार की वृद्धि यान्त्रिक होती है और दूसरी शरीर-शास्त्रीय या जैविक नियमों के अनुरूप होती है। शीघ्र ही रंग बदलने वाले राष्ट्रों के युद्ध-स्वामी हमारी भावनाओं को हमारे गौरव के प्रेम को प्रोत्साहित कर सकते हैं परन्तु ये दबाव और आवेश के कम होने के साथ ही भटके चले जाते हैं। इसके बाद निर्माणात्मक सुधारों की कठिन और परिश्रम-साध्य प्रक्रिया की ओर उदासी का भाव पाया जाता है और लोग एक प्रकार की ग्लानि एवं निरुत्साह का अनुभव करने लगते हैं। भारतीय समाज में ऐसे हिंसक परिवर्तनों का प्रवेश पहले ही किया जा चुका है। हमारे भारतीय राष्ट्र में सेवा के आदर्श को सदा ही सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। परन्तु अब यह आदर्श धूल में मिल चुका है।

वस्तुतः समाज के लिए सबसे अधिक घातक एवं विषैली चीज है सेवा के स्थान पर संपत्ति की प्रतिष्ठा। हमारा प्राचीन भारतीय समाज सेवापरायण था। पश्चिम धन का पुजारी है। यन्त्रों ने ही पश्चिम को धन-देवता का उपासक बनाया है और यह अनिवार्य भी है। आर्थिक जोड़-तोड़ का खेल ऐसा है जिसमें दो व्यक्ति खेल सकते हैं। यदि आप एक पार्श्व नली द्वारा तालाब को सुखा सकते हैं और उस से आप जितने जल के अधिकारी हैं उससे अधिक जल ले सकते हैं तो आपके सामने और आसपास रहने वाले पड़ोसियों द्वारा भी ऐसे ही उपायों का आश्रय लिया जा सकता है। गुप्त और छल-छिद्र भरी योजना का उद्देश्य विफल हो जाता है। मुद्रा-विस्फीति और निर्यातों का आश्रय लेकर व्यापार बढ़ाया जाता है परन्तु प्रत्येक राष्ट्र अपने निर्यातों को अनन्त रूप में नहीं बढ़ा सकता उसकी भी एक सीमा है। निर्यात में वृद्धि का अभिप्राय है कि आप जिस देश के साथ निर्यात व्यापार कर रहे हैं उसके उत्पादन में कमी और ऐसा हमेशा के लिए नहीं हो सकता। राष्ट्रवाद को हमें युद्ध के भीषण मार्ग की ओर से हटा कर शांति के प्रशस्त पथ की ओर ले जाना होगा। हमारी राष्ट्रीय योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे हमारा तो विकास हो परन्तु दूसरों के विकास को उससे कोई क्षति न पहुँचे। प्रत्येक राष्ट्र को अपने भाग्य की योजना का स्वयं

इसीलिये गांधीजी ने बार-बार इस विचारधारा का समर्थन किया है कि संपत्ति के स्वामी तो केवल समाज के ट्रस्टी हैं और उनको यह शोभा नहीं देता कि वे अधिकाधिक सम्पत्ति के भण्डार लगाते चले जायें और इसे अपने भोग-विलास में तथा फ़िजूलखर्ची में व्यर्थ ही नष्ट कर दें।

## राज्य समाजवाद

कभी-कभी हमें सामूहिक स्वामित्व के बारे में बड़ी-बड़ी प्रशस्तियां और प्रशंसा वचन सुनने का अवसर प्राप्त होता है परन्तु हम शीघ्र ही यह नहीं देख पाते कि इसमें भी शिक्षा उद्योग और प्रशासन के क्षेत्र में पूर्ण राज्य-नियंत्रण और अधिकार की भावना विद्यमान है। राज्य का पुलिस और राजकीय सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों पर बड़ा कड़ा नियंत्रण होता है। प्रेस का गला घोंट दिया जाता है या उसका नियंत्रण कर लिया जाता है। जिस प्रकार सूदखोरों और निर्यात के लिए, अपने देश में खपत के लिए नहीं बड़े पैमाने पर सामान बनाने वाले व्यापारियों के पूंजीवादी समाज में दासता पायी जाती है, ठीक उसी प्रकार, तथाकथित राज्य-समाजवाद में भी एक घृणित प्रकार की दासता के दर्शन होते हैं। यहां पर व्यक्तियों के अत्याचार के स्थान पर आपको राज्य के अत्याचारों का सामना करना पड़ता है।

> राज्य-समाजवाद की पूर्णतः संगठित शासन-प्रणाली में (अल्डुअस हक्सले का कथन है) दान को केवल व्यर्थ ही नहीं अपितु अपराध समझा जायेगा। दान-पुण्य करने वाले व्यक्तियों पर इसलिए मुकदमा चलाया जायगा कि उन्होंने राज्य के सहायता-कार्यों में अपने भद्दे, अवैध और शौकिया ढंग से हस्तक्षेप करने का दुस्साहस क्यों किया।

केवल प्रजातन्त्र भी इन बुराइयों के लिए रामबाण औषधि नहीं है। मुख्य बात तो यह याद रखने की है कि हमारा उत्पादन सेवा के लिए है या धन के लिए। अगर राज्य-नियंत्रण फ़ासिस्टवाद की ओर ले जाता है तो प्रजातन्त्र के परदे में साम्राज्यवाद छिपा हुआ है। प्रजातन्त्र तो केवल उसका सहायक है। इंग्लैंड में ज्येष्ठाधिकार के कानून के अनुसार सबसे बड़ा लड़का अपने पिता की संपत्ति कारखानों, बैंकों, शिकारगाहों और जमीन-जायदाद का एकमात्र उत्तराधिकारी होता है। छोटे लड़के कारखानों के एजेन्ट उपनिवेशों अधिराज्यों और आश्रित राज्यों के प्रशासकीय गवर्नर होते हैं और व्यापारिक बाजारों को अपने नियंत्रण में रखते हैं। इनके बाद भतीजों और बहनोइयों का नम्बर आता है जो तोप के एजेन्ट या युद्ध योग्य सामग्री के व्यापारी होते हैं। संपूर्ण इंग्लैंड और स्काटलैंड या ब्रिटेन एक लिमिटेड कम्पनी है जिसे ब्रिटिश एम्पायर लिमिटेड का नाम दिया जा सकता है और जिस कम्पनी के स्मृति-पत्र तथा अनुच्छेदों में साम्राज्यवाद का उद्देश्य वर्णित है

अर्थात् कच्चे मास की प्राप्ति तैयार माल की बिक्री और बहुरूपी—क्षेत्रीय और प्रशासकीय मानसिक और नैतिक बौद्धिक और आध्यात्मिक—प्रभुत्व द्वारा आवश्यक राजनैतिक तथा सैनिक नियन्त्रण का प्रयोग। राजकीय योजना बोगसी धर्मार्थ सहायता और प्रत्याभूतियों द्वारा यह शोषण का कार्यक्रम और भी अधिक विविधता बन जाता है। राष्ट्र योजना लाभप्रद हो सकती है बशर्ते कि यह राष्ट्र के क्षेत्र से बाहर अव्यवस्था उत्पन्न न करे, जो अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय शोषण का रूप ले लेता है।

एक प्रकार के समाज को दूसरे प्रकार के समाज में परिवर्तित करने की प्रक्रिया दूरदर्शिता की सी शीघ्रता द्वारा संपन्न नहीं की जा सकती जब तक कि हिंसा का आश्रय न लिया जाय। हिंसा की शक्ति द्वारा जो वृद्धि होती है उसमें और भी अनेक अवांछनीय तत्त्व साथ मिले होते हैं यह एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगत वृद्धि नहीं होती। पहली प्रकार की वृद्धि यान्त्रिक होती है और दूसरी शरीर-शास्त्रीय या जैविक नियमों के अनुरूप होती है। शीघ्र ही रंग बदलने वाले राष्ट्रों के युद्ध-स्वामी हमारी भावनाओं को हमारे वीरता के प्रेम को प्रोत्साहित कर सकते हैं परन्तु ये दबाव और आवेश के कम होने के साथ ही घटते चले जाते हैं। इसके बाद निर्माणात्मक सुधारों की कठिन और परिश्रम-साध्य प्रक्रिया की ओर उदासी का भाव पाया जाता है और लोग एक प्रकार की ग्लानि एवं निरुत्साह का अनुभव करने लगते हैं। भारतीय समाज में ऐसे हिंसक परिवर्तनों का प्रवेश पहले ही किया जा चुका है। हमारे भारतीय राष्ट्र ने सेवा के आदर्श को सदा ही सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। परन्तु अब यह आदर्श धूल में मिल चुका है।

वस्तुतः समाज के लिए सबसे अधिक घातक एवं विषैली चीज है सेवा के स्थान पर संपत्ति की प्रतिष्ठा। हमारा प्राचीन भारतीय समाज सेवापरायण था। पश्चिम धन का पुजारी है। यन्त्रों ने ही पश्चिम को धन-देवता का उपासक बनाया है और यह अनिवार्य भी है। आर्थिक जोड़-तोड़ का खेल ऐसा है जिसमें दो व्यक्ति खेल सकते हैं। यदि आप एक चालाक नकी द्वारा तालाब को सुखा सकते हैं और इस से आप जितने जल के अधिकारी हैं उससे अधिक जल ले सकते हैं तो आपके सामने और आसपास रहने वाले पड़ोसियों द्वारा भी ऐसे ही उपायों का आश्रय लिया जा सकता है। गुप्त और छल-छिद्र भरी योजना का उद्देश्य विफल हो जाता है। मुद्रा-विस्फीति और निर्यातों का आश्रय लेकर व्यापार बढ़ाया जाता है परन्तु प्रत्येक राष्ट्र अपने निर्यातों को अनन्त रूप में नहीं बढ़ा सकता उसकी भी एक सीमा है। निर्यात में वृद्धि का अभिप्राय है कि आप जिस देश के साथ निर्यात व्यापार कर रहे हैं उसके उत्पादन में कमी और ऐसा हमेशा के लिए नहीं हो सकता। राष्ट्रवाद को हमें युद्ध के भीषण मार्ग की ओर से हटा कर शांति के प्रशस्त पथ की ओर ले जाना होगा। हमारी राष्ट्रीय भावना ऐसी होनी चाहिए जिससे हमारा तो विकास हो परन्तु दूसरों के विकास को उससे कोई क्षति न पहुंचे। प्रत्येक राष्ट्र को अपने भाग्य की योजना का स्वयं

निर्माण करना चाहिए। न रूस न अमरीका और न कोई अन्य राष्ट्र हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं।

हमें अपना पथ-प्रदर्शन स्वयं करना चाहिए और यही गांधीवाद का उद्देश्य एवं प्रयोजन है। जिस प्रकार हमें समाजवाद का भारतीयकरण करना है, उसी प्रकार योजना का भी भारतीयकरण करना होगा। इसके लिए हमें अपने भारतीय समाज के ढांचे और उसके हृदयों से अपने को परिचित करना होगा उसके मूल्यों और दोषों को हृदयंगम करना होगा। हमें एक विकेन्द्रीकृत समाज की ओर वापस लौटना होगा। यही एकमात्र रास्ता है जो शान्ति के समय हमें उन्नति के पथ की ओर ले जा सकता है क्योंकि केन्द्रीकरण तो युद्ध के समय की आवश्यकता है। प्रजातन्त्र और युद्ध की तैयारियाँ साथ-साथ नहीं चलतीं। इनमें पारस्परिक विरोध है क्योंकि ज्यों ही युद्ध प्रारम्भ होता है प्रजातन्त्र के भव्य भवन भूमिसात् हो जाते हैं। अगर प्रजातन्त्र का पतन नहीं होता तो युद्ध-प्रयत्नों को बाधा पहुँचती है। एक वास्तविक प्रजातन्त्र तो आत्म-पूर्ण आत्म-निर्भर एककों का एक संघ होता है और ऐसे एकक प्राचीन भारत में विद्यमान थे।[१]

## अवकाश और कार्य

जब इस स्थापना को स्वीकार कर लिया जाता है कि हिन्दुस्तान के मृतप्राय गृहोद्योगों और ग्रामोद्योगों के पुनरुज्जीवन से बेकारी की समस्या हल हो जायगी तो इस पर समाजवादियों की यह आपत्ति है कि काम स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं है और काम तो तभी करना चाहिए जब इससे पर्याप्त आर्थिक लाभ हो तथा मूल समस्या तो सबको भोजन और आराम देने की है जिससे लोगों को अवकाश का समय मिल सके। श्री एल. पी. जैक्स अवकाश की परिभाषा करते हुए एक स्थान पर कहते हैं

> अवकाश मनुष्य के जीवन का वह भाग है जहाँ मनुष्य की आत्मा पर अधिकार जमाने के लिए अच्छे और बुरे विचारों में संघर्ष अपने उग्र रूप में होता है।

वास्तविक कठिनाई तो यह है कि अवकाश के क्षणों में शरीर और मन पर कुछ इस प्रकार का प्रभाव और आलस्य छा जाता है जिससे शीघ्र ही वे शैतान का कारखाना बन जाते हैं। कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि समय को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है कि मनुष्य दो घण्टे शारीरिक श्रम करे और छः घण्टे बौद्धिक श्रम। तब सवाल यह पैदा होगा कि बौद्धिक श्रम आर्थिक लाभ की दृष्टि से किया जाय या राष्ट्रीय लाभ के

---

१ "भारतीय ग्राम" शीर्षक अध्याय में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

लिए। अगर यह काम लाभ की दृष्टि से किया जाय तो जब तक राज्य घाटे के भौतिक कार्य के लिए पर्याप्त पैसा नहीं देगा तो यह असफल हो जायगा और गांधीजी की दृष्टि में इस प्रकार का कार्य राज्य द्वारा भरती किये हुए व्यक्तियों का कार्य होगा। निरन्तर शारीरिक श्रम से बुरे विचार दूर भागते हैं। यह सच है कि शारीरिक श्रम अपने आप में कोई शिक्षा नहीं है जैसे कि मानसिक श्रम अपने आप में कोई शिक्षा नहीं है। जहां श्रम अत्यन्त कठोर होता है वह मनुष्य की श्रेष्ठ सद्प्रवृत्तियों का नाश कर देता है। इस दृष्टि से ग्रामीण का जीवन पशुओं से भी गिरा हुआ है। जहां श्रम में व्यक्ति को आनन्द का अनुभव नहीं होता वहां श्रम का स्वरूप पाशविक हो जाता है। इसलिए श्रम और संस्कृति का सम्मिश्रण होना चाहिए। जिस भौतिक श्रम के साथ विशेषतः सृजनात्मक कलाओं के माध्यम से मिलने वाला जीवन का आनन्द मिला होता है उससे मनुष्य का मानसिक दृष्टि से ह्रास नहीं होता और इसलिए भारतीय कारीगर पश्चिम के यन्त्र श्रमिक से श्रेष्ठ स्थिति में है।

## समाजवाद का भारतीयकरण

हमें अपने समाजवाद के आदर्श का भारतीयकरण करना चाहिए। समाजवाद अच्छा है और उसको किसी किस्म की चुनौती नहीं दी जा सकती। हम अब भू-स्वामियों के शासन या सामन्तशाही की स्वेच्छाचारिता को और अधिक बर्दास्त नहीं कर सकते। हम हमेशा के लिए जन्म पर आधारित छोटे और बड़े के भेदों को बर्दास्त नहीं कर सकते हम इससे कदापि सहमत नहीं हो सकते कि जनता का पांचवां भाग अपने शेष भाग की आधीनता में गुलामों की सी जिन्दगी व्यतीत करे। हमें मद्यपान के दानव को दूर भगाना होगा और अस्पृश्यता के दैत्य का संहार करना होगा। परन्तु हमें इन कुप्रथा के शिकार व्यक्तियों को पूर्ण भोजन का आश्वासन देना होगा। हमें ग्रामों की कारीगरी और कला-कौशल को प्रोत्साहित करना होगा। पददलित निर्धनों को इससे क्या लाभ होगा अगर हम समाजवाद के ऊंचे नारे बुलन्द करें और हमेशा विदेशी या मिल का बना हुआ कपड़ा खरीदते रहें। हमें खाली नारों और सहानुभूति के शब्दों से अपने गरीब भाइयों पर अहसान नहीं जताना चाहिए अपितु हमें उनकी इस रूप में क्रियात्मक सहायता करनी चाहिए जिससे वे कुछ द्रव्योपार्जन कर अपने को जिन्दा रख सकें। जिस क्षण समाजवादी एक दैनिक कार्यक्रम अपनायेंगे जिससे स्पष्टतः गरीबों को लाभ पहुंचेगा उसी क्षण उनकी विजय निश्चित है। साम्यवादियों का यह नारा कि "विद्रोह की भावना प्रज्वलित करने और शांति का दंबनाद फूंकने के लिए भुखमरों के कष्टों को और अधिक उत्तेजित करो" सर्वथा अयुक्तियुक्त और निर्दय है। "दुनिया के मजदूरो अपनी जंजीरें तोड़ने के लिए एक हो जाओ" बड़ा सुन्दर नारा है परन्तु तब हम क्या कहेंगे जब दुनिया के आधे मजदूर दूसरे आधे मजदूरों को औद्योगिक और आर्थिक दासता की अमय जंजीरों से बांधने के लिए

संगठित हो रहे हों। समाजवादी का मत ठीक है परन्तु उसे कोई ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे धनी और अधिक धनी बने और गरीब पहले से और अधिक गरीब बन जाय। न ही समाजवादी और न ही शासकी जनता के सहयोग के बिना राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं। सहयोग तो व्यक्तियों के हृदयों में उत्पन्न आत्म-विश्वास की बाह्य अभिव्यक्ति है। हमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए जिससे सेवा और कष्टसहिष्णुता के कई वर्षों के बाद जनता में जो थोड़ा बहुत विश्वास पैदा हुआ है उसे क्षति पहुंचे। खाली बातों से पेट नहीं भरेगा। जब समाजवाद का कार्यक्रम ठोस क्रियाशीलता का कार्यक्रम होगा और इस प्राचीन भूमि के शोक-संतप्त घरों में वह कष्ट और दुःख-दर्द का नामोनिशां मिटा देगा तब इस देश की परम्पराओं और भारतीय समाज के आधारभूत तत्वों के साथ एकरूप हुई समाजवाद की शक्ति अप्रतिहत सिद्ध होगी।

## गांधीवाद बनाम समाजवाद

अगर समाजवाद का उद्देश्य सबको समान अवसर प्रदान करना है तो गांधीवाद का उद्देश्य यह है कि हर व्यक्ति अपने समय और अवसरों का अच्छे उद्देश्य के लिए प्रयोग करे। अगर समाजवाद पूंजी कर, बड़े अधिभार, जब्ती और ताकत के बल पर संपत्ति छीन लेता है तो गांधीवाद युगों पुरानी भारतीय राष्ट्र की परम्परा को उद्बोधित करता है जो गरीबी को अमीरी से और विद्वता को धन से ऊंचा दरजा देती है। अगर समाजवाद अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिए राज्य के हस्तक्षेप का आश्रय लेता है तो गांधीवाद अपनी सफलता के लिए राज्य के नागरिकों की संस्कृति के विकास और उनकी अन्तरात्मा की शुद्धि पर निर्भर करता है। बाहर से लादे गये समाजवाद के परिणाम चाहे वे भले ही चामत्कारिक मालूम दें, वस्तुतः अनिश्चित और भयकर हैं जबकि गांधीवाद के परिणाम चाहे वे छोटे ही दिखाई दें, जनता की प्रेम और भक्ति भावना में उसकी जड़ें सुदृढ़ और गहरी चली गयी हैं। समाजवाद ने यह दुखद दृश्य देखा है कि किस प्रकार उसके प्रचारक अपने सिद्धान्तों और सत्ता को दूसरों पर लादने के लिए अधिनायक बन बैठे हैं। गांधीवाद स्वैच्छिक आत्म त्याग की स्वीकृति पर आश्रित है और वह राम सागरी के ठाकुर गोपालदास देसाई और उत्तर प्रदेश के तरुण लाला कक्कर नरेश जैसे व्यक्तियों की प्रगतिशीलता एवं आत्मिक उत्कर्ष का साक्षी है जिन्होंने स्वेच्छा से गरीबी को स्वीकार करके या तो धन का परित्याग कर दिया है या फिर उसे गरीबों की सेवा में समर्पित कर दिया है। बहुत से लोगों के लिए समाजवाद एक प्रवृत्ति और धारणा है परन्तु गांधीवाद एक कठोर वास्तविकता है और सेवा तथा बलिदान का एक क्रियात्मक दैनिक कृत्य है। समाजवाद में नेतागण दूसरों का पथ-प्रदर्शन करते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए, परन्तु गांधीवाद में हरेक का कार्यक्रम स्वयं निर्धारित है कि उसे क्या करना चाहिए। समाजवाद लोगों में पारस्परिक कटुता उत्पन्न

करके मानवता का विकास करना चाहता है। समाजवाद देश के जहां कुछ क्षेत्र वीरान पड़े हैं भोज्य पदार्थों का संग्रह करता है और उनका पुनर्वितरण करता है गांधीवाद एक ऐसे देश में जहां पर हर प्रकार की जमीन जलवायु और अवस्था पायी जाती है प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित करता है कि वह अपना भोजन और वस्त्र स्वयं उत्पन्न करे। समाजवाद श्रमिकों के कार्ड रखता है और प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के लिये कार्य करने को बाध्य करता है, गांधीवाद समाज की परम्पराओं के अनुसार कार्य करने वाले प्रत्येक स्त्री और पुरुष की उपयोगिता संसार को दिखाता है। समाजवाद असमताओं भरे समाज में पारिवारिक क्षेत्र में भी जहां अग्रजाधिकार का कानून प्रचलित है—हिन्दुओं में उत्तराधिकार के कानून के अनुसार सब पुत्रों को संपत्ति का बराबर भाग मिलता है और मुसलमानों में लड़कियों को भी बराबर का हिस्सा मिलता है—संपत्ति का समवितरण करने का प्रयत्न करता है। समाजवाद पश्चिम के व्याधिग्रस्त समाज का इलाज हो सकता है परन्तु गांधीवाद तो उस समाज के ढांचे और कृत्यों की व्याख्या है जिसका निर्माण हजारों वर्ष पूर्व ऋषियों ने किया था और जिसे आधुनिक युग के ऋषि महात्मा गांधी ने पुनःस्थापित करने पुनरुज्जीवित करने और पुनः नव-जीवन प्रदान करने का प्रयत्न किया। इसीलिए गांधीजी ने कराची में कहा था "गांधी मर सकता है परन्तु गांधीवाद सदा अमर रहेगा।

मानव प्रयत्नों का उद्देश्य मनुष्यों के सुन्दर स्वास्थ्य ऐश्वर्य एवं कल्याण का संपादन करना है परन्तु यह किसी निर्जीव सूत्र से पूर्ण नहीं हो सकता इसके लिये तो हमें अपनी अतीत की सिद्धियों, वर्तमान कठिनाइयों और भावी आवश्यकताओं का निकट से अध्ययन करना होगा। यह सर्वोत्तम राजनीति है इसे आप 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन' का नाम दे सकते हैं नयी समाज-व्यवस्था के नाम से पुकार सकते हैं या इसे समाजवादी आर्थिक रचना कह सकते हैं—सबके लिये एक मुख्य सिद्धांत आवश्यक है—अधिकारों से पहले कर्तव्यों का सिद्धांत जो हमारे राष्ट्रवाद के भव्य भवन को जिसका आधार सत्य और शिखर अहिंसा है, सुव्यवस्थित रखता है।

लोग अक्सर पूछते हैं कि गांधीवाद की विषय-वस्तु के आधार पर निर्णय करें तो क्या गांधीवाद एक असफलता नहीं है। उत्तर हां और ना दोनों है। यह हमारे दृष्टिबिन्दु पर निर्भर करता है जिससे हम इसका निर्णय करते हैं। यदि आप विश्व की वास्तविकताओं की तह में नहीं जायेंगे और आदर्शों के दृष्टिबिन्दु से निर्णय करेंगे तो वास्तविकता तो हमेशा ही असफलता से संबोधित होगी। अगर आदर्श वास्तविकता में परिणत हो जाय तो यह पूर्ण सफलता नहीं हो सकती। वास्तविकता तो आदर्श का मिश्रण होनी चाहिए और सफलता तथा असफलता जैसे शब्द तो मिश्रण के विशेष अंश की ओर संकेत करते हैं। जब मिश्रण बहुत ही हल्का होता है हम कहते हैं कि इसमें मिलावट है। जब इसमें कोई वस्तु उचित अनुपात में मिलायी जाती है तब यह एक ग्राह्य एवं युक्तियुक्त मिश्रण होता है। जब आप, इन सब

गांवों से उनकी निर्झर जल दुग्ध और छाछ में उनका स्वास्थ्य और प्रसन्नता में उनकी समृद्धि और मजोर में उनके बहते हुए नदी-नालों से उनके तरोताजगी से भरने वाले वाता-वरण से उनकी प्यारी गाया और मैना से उनकी भेड़ों और बकरियों से उनकी कुटियों और बस्तियों से उनके गांव के तालाबों और छोटे-छोटे बाग-बगीचों से अलग कर दिया है और उन्हें नगरों और शहरों के भीड़-भाड़ बीमारी धक्कामारी और अनेक प्रकार के भय तथा अनिश्चित मार्गों में प्रवेश दिया है। बड़े-बड़े शहरों में हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों के लिए गुलाम बनाए और बन जाते हैं और शहरों में अब ग्राम्य भारत के कुशल कारीगरों द्वारा बनायी गयी कलात्मक वस्तुओं के दर्शन नहीं होते। यहीं पर ही इतिश्री नहीं हुई है। सहकारिता की भावना का स्थान प्रतिद्वन्द्विता की भावना ने ले लिया है व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की भावना ने सर्वजनहिताय की भावना को दबा लिया है। प्राचीन सहकारी समाज या ग्राम-संगठन पर आधारित संयुक्त परिवार प्रणाली यन्त्र-युग की प्रवृत्तियों के कारण छिन्न-भिन्न हो चुकी है।

भारतीय राष्ट्रवाद के पुनर्निर्माण के लिए समय-समय पर जो योजनाएं प्रस्तुत रखी जाती हैं वे पूंजीवाद और उपनिवेशवाद पर आधारित पश्चिम के सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे की नकल मात्र होती हैं और वे साम्राज्य के सिद्धांतों तथा नीतियों द्वारा समर्थित और उनका परिपोषण करने वाली होती हैं। हिन्दुस्तान के अर्थशास्त्री और प्रशासक मंत्री और राजनीतिज्ञ पश्चिमी शिक्षा पद्धति की उपज हैं और उन्होंने दशाब्दियों तक मार्शल और फासेट की पूजा करना सीखा है और वे भारत में भी औद्योगिक क्रांति के प्रबल पक्षपाती रहे हैं। इसीलिए वे भारत के नवनिर्माण के लिए विदेशी बनावट की राष्ट्रीय योज-नाओं को आवश्यक समझते हैं। सामाजिक और आर्थिक बीमारियों के अधिकतर वैद्य रोग के लक्षणों का तो इलाज करते हैं परन्तु वे इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति की ओर उपचार को नियमित करने वाले सिद्धांतों की सर्वथा उपेक्षा कर देते हैं। केवल औद्योगिक उन्नति को सर्वप्रिय बनाने के ही मिथ्या प्रयत्न नहीं हो रहे अपितु शिक्षा के क्षेत्र में भी राज्य की वही निर्जीव एकाधिकारिक प्रक्रिया अपनायी जा रही है क्योंकि शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकारीगण एक ऐसे विश्वविद्यालय की उपज हैं जिसकी शिक्षा-पद्धति अत्यंत पुरानी विदेशी और अनुपयुक्त है। कृषि के क्षेत्र में भी जिसमें भारत की अधिकांश जनता लगी हुई है श्री राममूर्ति आई सी. एस. के शब्दों में "सरकार को केवल भूमि और जलवायु के सम्बन्ध में पौधों, कीड़ों और पशुओं तक ही अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करना चाहिए अपितु व्यक्ति के भूत-कालीन इतिहास और वर्तमान परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में भी उसका अध्ययन करना चाहिये। केवल कृषि में ही नहीं अपितु शिक्षा उद्योग और गृहोद्योगों में तथा सरकार के संगठन में इसके उद्देश्यों और आधारभूत सिद्धांतों में हमने मनुष्य को तो बिलकुल भुला ही दिया है।

सरकार के इन सब विभागों का प्रशासन इस प्रकार से चलाया जाता है जिससे विश्व के व्यापार और उद्योग पर प्रभुत्व स्थापित किया जा सके और व्यापार-संतुलन अपने राष्ट्र के अनुकूल रहे। इसलिए संसार के प्रगतिशील राष्ट्र हमेशा एक दूसरे के साथ संघर्ष-रत रहे हैं। विश्व के समस्त राष्ट्रों का अनुकूल व्यापार-संतुलन कैसे संभव है? अगर कुछ राष्ट्रों का व्यापार-संतुलन अनुकूल है तो दूसरों का अवश्यम्भव प्रतिकूल होगा। अगर कुछ माँ-बाप अपने लड़कों के लिए दहेज लेते हैं तो दूसरे माँ-बाप जरूर ऐसे होने चाहिएं जो दहेज देने वाले हों क्योंकि उन्हें अपनी लड़कियों का विवाह जो करना है। क्या संसार के सब माँ बापों के लिए ऐसा संभव है कि वे दहेज लेवें? तो दहेज देने वाला कौन होगा? इसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र के लिए एक अनुकूल व्यापार-संतुलन रखना सर्वथा अविचारणीय है। कच्चे माल के लिए, नहोमहर और नए बाजारों की खोज ने युद्धों को अनिवार्य बना दिया है और युद्धों का स्वरूप ही बिलकुल बदल गया है। कम से कम १९१४-१८ के यूरोपीय युद्ध में सामरिक और वाणिज्यिक महत्व के स्थानों के लिए लड़ाइयाँ लड़ी जाती थीं परन्तु आज कल आसमान और समुद्र की लड़ाइयाँ हैं। बमबारी विराग-युद्ध और नाकाबन्दी की लड़ाइयाँ हैं।

प्रथम विश्व-युद्ध के प्रत्यक्ष व्यय (हमें ऐसा बताया जाता है) लगभग १८६, • डालर और अप्रत्यक्ष व्यय १५१ • • डालर थे और यह कुल धनराशि ३३७ डालर या १ लाख करोड़ रुपये के लगभग थी। इस युद्ध में लगभग ६ सिपाहियों ने युद्ध में भाग लिया और ३३ व्यक्ति हताहत हुए, जिनमें से लगभग ८, व्यक्ति मारे गये या बीमारी के कारण मर गये लगभग १८, जख्मी हुए और ७ • कैदी बनाये गये। सबसे अधिक हानि रूस की हुई जिसके ६, व्यक्ति हताहत हुए इसके बाद जर्मनी का नम्बर था जिसके ६, व्यक्ति हताहत हुए और फिर फ्रांस के हताहतों की संख्या ४५ • थी। ब्रिटिश साम्राज्य के हताहतों की संख्या ३ • थी। अमेरिका के हताहतों की संख्या ३ • से थोड़ी कम थी। युद्ध की वजह से कुल लगभग ४ • व्यक्ति मारे गये। अगर घटती हुई जन्म-दर को जोड़ा जाय तो कुल संख्या लगभग २ तक जा पहुँचेगी। सबसे दुःखदायी करुणाजनक तथ्य तो यह है कि हरेक मृत सिपाही के पीछे पांच नागरिकों को प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इससे भी अधिक शोचनीय तो यह है कि यूरोप के बेकारों को काम-काज और आर्थिक सहायता देने वाले कार्यालयों के विवरण से ऐसा पता चलता है कि १५, • परिवारों को एक या दूसरे रूप में बेकारी का भत्ता दिया जा

चीजों को निकाल बाहर करते हैं 'किन-रेन' की बिलकुल स्वीकृति नहीं देते तब आप इसे असफल कहते हैं। इसलिये आपको विभिन्न समझौतों के लिये ही नहीं अपितु अनेक आदर्शों के लिये भी सन्नद्ध रहना चाहिये और ऐसी अनुकूलताओं में जिनकी आज्ञा दी जा सकती है तथा ऐसी अनुकूलताओं में जिनकी आज्ञा नहीं दी जा सकती भेदक-रेखा खींचनी चाहिए।

## २
## मनुष्य और यन्त्र

उन संघर्षों के मूल में विद्यमान आधुनिक जीवन की समस्या यह है कि मनुष्य और यन्त्र जीवन के परस्पर परिवर्तनीय घटक हैं या वे एक दूसरे के पूरक हैं। दूसरे शब्दों में यह प्रश्न यों पूछा जा सकता है कि यन्त्र मानव प्रयत्नों में सहायता देने और मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त हैं या इसका इस प्रकार से निर्माण और विकास किया जाना चाहिये कि वह यन्त्र में मानव-श्रम का स्थान ले ले। पश्चिम के लोग मानवीय शरीर को एक यन्त्र समझते हैं, समाज को पृथक विभागों से निर्मित यन्त्र समझते हैं और सरकार को एक जटिल यन्त्र। इस अध्ययन में उनकी दृष्टि में मनुष्य का हित सबसे बड़ा है क्योंकि वह अपने को अभी तक आविष्कृत सर्वश्रेष्ठ एंजिन के रूप में रखता है जहाँ शक्ति का गुणक सर्वोच्च है।

आजकल मशीन जोड़ती और घटाती है, गुणा और भाग करती है, रेलें चलाती है, वायुयानों का मार्ग-निर्देशन करती है, ट्रैफिक का नियन्त्रण करती है, पृष्ठ संख्या अंकित करती है, अखबार छापती है उसे मोड़ती है और उसके बंडल बनाती है, संदेश ले जाती है और सुदूर शहरों से आयी हुई खबरों को टाईप करती है। हमारे आधुनिक जीवन को एक प्रकार के जादू और मैस्मेरिज्म ने परिव्याप्त कर लिया है और वायरलैस तथा टैली-विजन के आविष्कार से मानवीय सोचों और प्रजा पर बहुत प्रभाव पड़ा है। एक ही रात में उद्योग के संचालक दृष्टिगोचर होने लगे हैं और उन्होंने धन की अपार राशि एकत्रित कर ली है। बाह्य दृष्टि से न केवल व्यक्तियों में अपितु व्यक्तियों के समूहों में और राष्ट्रों में एक नये भाईचारे की सृष्टि हुई प्रतीत होती है। परन्तु एक नया दानव अस्तित्व में आया है—स्वार्थ का दानव—जिससे मिलती-जुलती शक्ल का एक दूसरा दानव है—प्रतियोगिता का दानव। इन दानवों की व्यापार और अर्थशास्त्र पर प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप मध्य-विक्टोरिया युग के लिबरलों द्वारा प्रचारित स्वतन्त्र व्यापार का सिद्धांत अस्तित्व में आया। धन-संपदा के उपार्जक के रूप में नियुक्त किया जाने वाला श्रमिक शीघ्र ही अपनी वास्तविक स्थिति से अवगत हो गया और उसने ट्रेड यूनियन आन्दोलन का प्रारम्भ किया जो आगे चलकर समाजवादी आन्दोलन में परिणत हुआ और अन्ततः जिसकी परिणति हिंसा पर आधारित साम्यवाद

जाने से उनकी निहाई, घन हथौड़े और छेनी से उनके स्वास्थ्य और प्रसन्नता से उनकी समृद्धि और संतोष से उनके बहते हुए नदी-नालों से उनके हरेभरेपन से भरे वाले वातावरण से उनकी प्यारी गायों और बैलों से उनकी भेड़ों और बकरियों से उनकी मुर्गियों और बत्तखों से उनके गांव के तालाबों और छोटे-छोटे बाग-बगीचों से अलग कर दिया है और उन्हें कस्बों और शहरों के भीड़-भाड़ बीमारी पराश्रयोरी और अनेक प्रकार के श्रम तथा अनिश्चित कामों में धकेल दिया है। बड़े-बड़े शहरों में हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों के लिए मकान बनाए और बेचे जाते हैं और शहरों में अब ग्राम्य भारत के कुशल कारीगरों द्वारा बनायी गयी कलात्मक वस्तुओं के दर्शन नहीं होते। यहीं पर ही इतिश्री नहीं हुई है। सहकारिता की भावना का स्थान प्रतियोगिता की भावना ने ले लिया है व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की भावना ने सर्वजनहिताय की भावना को ग्रस लिया है। प्राचीन सहकारी समाज या श्रम-संगठन पर आधारित संयुक्त परिवार प्रणाली मध्य-युग की प्रवृत्तियों के कारण छिन्न-भिन्न हो चुकी है।

भारतीय राष्ट्रवाद के पुनर्निर्माण के लिए समय-समय पर जो योजनाएं सम्मुख रखी जाती हैं वे पूंजीवाद और उद्योगवाद पर आधारित पश्चिम के सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे की नकल मात्र होती हैं और वे साम्राज्य के सिद्धांतों तथा नीतियों द्वारा समर्थित और उनका परिपोषण करने वाली होती हैं। हिन्दुस्तान के अर्थशास्त्री और प्राध्यापक, मंत्री और राजनीतिज्ञ पश्चिमी शिक्षा-पद्धति की उपज हैं और उन्होंने दशाब्दियों तक मार्शल और फ्लर्ट की पूजा करना सीखा है और वे भारत में भी औद्योगिक क्रांति के प्रबल पक्षपाती रहे हैं। इसीलिए वे भारत के नवनिर्माण के लिए विशेष अवधि की राष्ट्रीय योजनाओं को आवश्यक समझते हैं। सामाजिक और आर्थिक बीमारियों के अधिकतर वैद्य रोग के लक्षणों का तो इलाज करते हैं परन्तु वे इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति की और उपचार को विनियमित करने वाले सिद्धांतों की सर्वथा उपेक्षा कर देते हैं। केवल औद्योगिक उन्नति को सर्वोपरि बनाने के ही मिथ्या प्रयत्न नहीं हो रहे अपितु शिक्षा के क्षेत्र में भी राज्य की वही निर्जीव एकाधिकारिक प्रक्रिया अपनायी जा रही है क्योंकि शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकारीगण एक ऐसे विश्वविद्यालय की उपज हैं जिसकी शिक्षा-पद्धति अत्यंत पुरानी विदेशी और असंतुलित है। कृषि के क्षेत्र में भी जिसमें भारत की अधिकांश जनता लगी हुई है श्री राममूर्ति आई० सी० एस० के शब्दों में "सरकार को केवल भूमि और जलवायु के सम्बन्ध में पौधों कीड़ों और पशुओं तक ही अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करना चाहिए अपितु व्यक्ति के मूलकालीन इतिहास और वर्तमान परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में भी उसका अध्ययन करना चाहिये। केवल कृषि में ही नहीं अपितु शिक्षा उद्योग और गृहोद्योगों में तथा सरकार के संगठन में इसके उद्देश्यों और आधारभूत सिद्धांतों में हमने मनुष्य को तो बिल्कुल भुला ही दिया है।

> रहा था और यह धनराशि मुख्यतः देश में निरंतर मुद्रा-स्फीति द्वारा दी जा रही थी। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यूरोप की आबादी बिना आयात का आश्रय लिये निर्वाह करने वाली आबादी से कम से कम १
> अधिक है और इस आबादी को उत्पादन तथा निर्यातों के वितरण पर जीवित रहना है। वस्तुतः हम यन्त्र से अपनी उत्पादन-क्षमता तो बढ़ा लेते हैं और फिर यन्त्र हमें पीछे की ओर ले जाता है।

हम ऐसा सुझाव नहीं देते कि भारतीय किसान और बुनकर को भारतीय विद्वान और पंडित को भारतीय भोज्य सामग्री पहुंचाने वाले और राजनीतिज्ञ को यन्त्र युग के लाभों से अपने को बिल्कुल वञ्चित रखना चाहिए। अगर ऐसा ही होता तो गांधीजी का दैनिक जीवन उनके अपने सिद्धांतों का निषेध होता। वे बिजली की बैटरी का प्रयोग करते हैं टाईप राइटर का उपयोग करते हैं और कार में सफर करते हैं (वे ४ मील प्रति घंटे की रफ्तार से भी संतुष्ट नहीं हैं) रेल, डाक और तार उनकी दैनिक आवश्यकताओं के अंग हैं। गांधीजी जिस चीज से घृणा करते हैं वह है मनुष्य का स्वयं यंत्र में परिवर्तित हो जाना स्वयंचालित यंत्र बन जाना कैंक राड या काटरपिन दोनों वाले चक्कर या पीतल के निर्माण का हिस्सा बन जाना क्योंकि मनुष्य जब मिल या फैक्ट्री में कार्य करता है वह अपने कार्य से उसी प्रकार परिचित नहीं होता जिस प्रकार यन्त्र के निर्जीव हिस्से उसकी सृजनात्मकता का लोप हो जाता है। वह वैसे ही यन्त्र का एक भाग बन जाता है जैसे कि धातु का कोई दूसरा हिस्सा परन्तु भारतीय कारीगरों का कार्य सृजनात्मक कारीगरों का कार्य है वे अपने दिन भर की उपज को अपने पास रखते हैं वे तनख्वाहों के लिए काम नहीं करते वे अपने घरों के पवित्र वातावरण में परिवारों के सहधर्मी सदस्यों के आनन्ददायी सहवास में अपना काम संपन्न करते हैं और उसमें अपनी पूरी आत्मा उड़ेल देते हैं। महिलाओं की आचारिक पवित्रता भी बनी रहती है और श्रमिकों को विविधरूप श्रम का आश्रय नहीं लेना पड़ता।

## भारतीय कारीगर

भारतीय कारीगर के लिये उसका काम पेशा या व्यापार-मात्र न होकर हृदय और आत्मा की प्रेरणा है। उसका हस्त-कौशल ही वह मापदण्ड है जो उसके भाग्य का निर्धारण करता है। भारतीय कारीगर किसी काम को केवल इसीलिए नहीं करता कि इससे उसे आर्थिक लाभ होता है अपितु उस को आंतरिक प्रेरणा द्वारा प्रोत्साहन मिलता है और अपने काम में आनन्द अनुभव होता है। दैनिक जीवन की चिन्ता से मुक्त निर्मम प्रतियोगिता के अभाव में उचित मापदण्ड की गारंटी और सबसे बढ़कर यह भावना कि शिल्पकारों, पूंजीपतियों और कला के समर्थित संरक्षकों द्वारा मुनाफे के प्रलोभ से कला का शोषण नहीं

शाश्वत सौंदर्य के आदर्शों और अपरिवर्तनशील नियमों की अभिव्यक्ति करता है।" शिल्पकर्मा भारतीय कारीगरों का दिव्य शिल्पक है और उसी लेखक के शब्दों में "सौंदर्य सम अनुपात और विचार की एसे आदर्श धरातल पर एक निरपेक्ष सत्ता है, जिस पर 'जिन खोजा तिन पाइयां' वाली कहावत चरितार्थ होती है। "वस्तुओं की वास्तविकता तो मन के अन्दर है, आंखों को दिखायी देने वाले उनके बाह्य रूप-विस्तार में नहीं। कारीगर के काम में एक प्रकार की रहस्य-भावना निहित है। वह व्यापार न होकर एक धार्मिक संस्कार है। नहीं तो आप फिर किस प्रकार चित्रकार के इन गुणों की व्याख्या कर पायेंगे जिसे हमारे प्राचीन शास्त्रानुसार 'मद्र पुरुष होना चाहिए, प्रमाद और क्रोध नहीं करना चाहिए, पवित्रात्मा और विद्वान होना चाहिए, आत्मसंयमी धर्मवृत्तभक्त दानी और लोभरहित होना चाहिए। हिन्दू कारीगर साल में एक बार दशहरे के त्यौहार पर या विश्वकर्मा वस्तुओं के दिन अपने यन्त्रों की पूजा करता है। कारीगर वह पहला व्यक्ति है जो यह स्वीकार करता है कि वह अपनी बिरादरी का एक सदस्य है। प्रत्येक आदमी अपने निर्धारित कार्य का संपादन करने के लिए पैदा हुआ है और उसी कर्म द्वारा वह आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः

(भगवद् गीता ३-३५)

आधुनिक प्रतियोगिता ने प्राचीन आदर्शों और मापदण्डों को विनष्ट कर दिया है। लोगों के स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम के कारण हाथ की बनी हुई उच्च कोटि की कलात्मक वस्तुओं की मांग चाहे वह बाहर के कपड़ों के लिए हो या पुराने जमाने की जवाहर की बनी अत्यन्त समृद्ध और उत्तम नक्काशीकारी की वस्तुओं के लिए हो, बहुत बढ़ गयी है परन्तु प्रतियोगिता की भावना के कारण दस्तकारी पर जोर देने के कारण और सबसे बढ़ कर अधिकारों के व्यक्तिगत और अधार्मिक विचारों पर बल देने के कारण हाथ की बनी हुई इन कलात्मक वस्तुओं के गुण में काफी ह्रास आ गया है।[१]

मशीनों की बाढ़ के कारण प्राकृतिक मानवीय बुद्धि का विकास अवरुद्ध हो गया है राष्ट्र के जीवन-रक्त का परिभ्रमण बन्द हो गया है समाज में एक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी है और लोगों के दिलों में बड़ी बेचैनी पैदा हो गयी है जिससे हमारे राष्ट्र शरीर की नाड़ी का स्पन्दन केन्द्रीय शक्ति के साथ एकरूप होकर गतिशील नहीं हो रहा। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि विश्व के विनाश के गर्त में जाने से पहले गांधीजी ने अन-

१ परिशिष्ट ए में इस विषय पर सर जार्ज बर्डवुड और मी हैवल के विचार दिये गये हैं।

संपत्ति की बुराइयों के नाश के लिये और सेवा के आदर्श को पुनस्स्थापित करने के लिए, प्रतियोगिता को मिटाने के लिए तथा सहयोग की भावना के प्रसार के लिए, घृणा का समूलोन्मूलन करने और मानवीय हृदय में प्रेम की ज्योति जगाने के लिए, अवतार के रूप में जन्म लिया ।

समाज पर यन्त्रों का अन्तिम प्रभाव यह पड़ा है कि जिन राष्ट्रों का दृष्टिकोण अभी तक साम्राज्यवादी था और जो पूर्वी तथा अफ्रीकी देशों के बाजारों को अपने देश का बना हुआ माल भेज कर समृद्धिशाली हो रहे थे उन्हें अब अपने ही प्राकृतिक साधनों पर अवलम्बित होना पड़ रहा है क्योंकि इन राष्ट्रों के लिए अब यह संभव नहीं रहा कि वे पूर्वी राष्ट्रों को अपना बनाया हुआ माल लेने के लिए या उन्हें कच्चा माल देने के लिए बाध्य कर सकें। पूर्व के राष्ट्र अब जाग गये हैं। पूर्वी राष्ट्रों के विद्रोह के कारण उनका शोषण अब असंभव हो गया है। जापान पश्चिम के अग्रगण्य औद्योगिक राष्ट्रों के साथ सफलतापूर्वक प्रतियोगिता करने लगा है, चीन ने भी युगों के प्रमाद और आलस्य को छोड़ दिया है और भारत पूर्ण प्रभुत्वसपन्न स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया है, अफ़ग़ानिस्तान और पर्शिया आज के प्रमुख राष्ट्रों में आ सम्मिलित हुए हैं और पैलस्टाइन तथा सीरिया ने पश्चिम की कूट नीतियों का सफलतापूर्वक सामना किया है, टर्की अब यूरोप का बीमार मुल्क नहीं रहा और मिस्र भी विदेशी राष्ट्रों का खिलौना नहीं रहा तो इन राष्ट्रों के शोषण के क्षेत्र और अवसर समाप्तप्राय हो गये हैं। सौभाग्य से फ्रांस की ऐसी स्थिति है कि वह अपने औद्योगिक और कृषक जीवन का संतुलन कायम रख सकता है जब कि इटली औद्योगिक होने की अपेक्षा कृषि-प्रधान ही अधिक है यद्यपि वह भी उन औद्योगिक क्षेत्रों में जिनमें वह साधन-संपन्न नहीं है आत्माश्रित बनने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा है। दूसरी तरफ रूस ने अकेले ही सफलतापूर्वक विश्व-युद्ध में विजय-श्री प्राप्त की और अपनी राष्ट्रीय योजनाओं द्वारा वह इतना समृद्ध और आत्माश्रित हो गया कि वह अपनी जरूरत की चीजें स्वयं पैदा करने लगा। उसने केवल मशीनें मिलें और बड़ी-बड़ी भट्टियां ही नहीं बनायीं अपितु उसने अपने देश में इतने बड़े पैमाने पर खरगोशों का पालना शुरू किया कि दूसरे देशों से मांस का आयात बिल्कुल बन्द कर दिया। रूस का दूसरे देशों के साथ व्यापार सीमित है और वह भी राज्य द्वारा वस्तु-विनिमय के आधार पर किया जाता है और जब अनिवार्य हो तब मुद्रा के लिए किया जाता है।

जब पश्चिम के राष्ट्रों के हाथों से पूर्व के बाजार निकल जायेंगे और वे एक-दूसरे को भी अपने देश की बनी हुई वस्तुएं नहीं बेच सकेंगे तो वे आत्म-पूर्ण और आत्म-निर्भर और इस प्रकार निर्यात के लिए वस्तुओं का निर्माण बन्द हो जायेगा अपने देश में खपत लिए उत्पादन बना रहेगा और लोग यह कदापि न चाहेंगे कि एक एकाधिकारी और लाखों उपभोक्ता हों जो उसके लिए मुनाफे और संपत्ति का अम्बार लगा दें,

लिए गगनचुम्बी अट्टालिकाएं बनवाने में सहायक हों और स्वयं झोंपड़ियों और गन्दी बस्तियों में निवास से संतोष करें। जब बड़े पैमाने के निर्माता नहीं रहेंगे तो श्रमिकों को अतिरिक्त अवकाशमय मजदूर काम करेंगा परन्तु इसका एकमात्र इलाज यह होगा कि सहकारिता के आधार पर वस्तुओं का उत्पादन प्रारंभ किया जाय और मुनाफों को आपस में बांट लिया जाय या फिर पुराने गृहउद्योगों का सहारा लिया जाय। शायद हम बहुत दूर तक चले हैं, परन्तु राष्ट्रों के भाग्यों का भविष्य-निर्धारण करते समय और उनके समय भविष्य की योजनाएं बनाते समय यह अच्छा होगा कि हम निकट न देख कर थोड़ा दूर तक देखें।

## यन्त्र स्वामी नहीं सेवक के रूप में

गांधीजी मशीन को हिन्दुस्तान का स्वामी नहीं अपितु उसका सेवक बनाना चाहते हैं। पश्चिम में तो मशीन ने स्वामी ही नहीं अपितु एक बड़े दैत्य का रूप धारण कर लिया है, जिस दैत्य की भूख और प्यास का कोई ठिकाना ही नहीं। वहां की मशीनों का उत्पादन और खपत बहुत विशाल परिमाण पर हो रही है। इतने बड़े पैमाने पर उत्पादन का परिणाम यह होता है कि वस्तुएं सस्ती हो जाती हैं, उससे प्रतियोगिता को प्रोत्साहन मिलता है वे अपनी वस्तुओं की खपत के लिए बाजार ढूंढने के लिए बाध्य हो जाते हैं। वे बाजार केवल अनिवार्य रूप से सैनिक प्रभुत्व द्वारा समर्थित राजनीतिक प्रभावों द्वारा ही हस्तगत किये जा सकते हैं। इस प्रकार इतने विशाल परिमाण के उत्पादन के लिये एक ओर तो कच्चे माल की जरूरत होती है और दूसरी ओर तैयार माल की निकासी के लिए बाजारों की और इनमें से कोई भी साम्राज्यवाद के बिना अन्य किसी भी साधन से अधिकृत एवं सुरक्षित नहीं किया जा सकता और साम्राज्यवाद का अभिप्राय है कभी न समाप्त होने वाली हिंसा के सहारे शान्ति-काल में उद्योगीकरण को बढ़ावा देना और युद्ध के समय देश का सैनिकीकरण करना। इसीलिए यन्त्र उद्योग को संक्षिप्त और सारिभ्रान्त रूप में गतिशील हिंसा का नाम दिया गया है जबकि कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को, जिसमें चरखा सर्वप्रधान ग्रामोद्योग है और साम्प्रदायिक एकता मद्यनिषेध तथा अस्पृश्यता-निवारण का कार्यक्रम सम्मिलित है, गतिशील अहिंसा के नाम से संबोधित [illegible] है।

द्वारा कल्पित समाज का क्या स्वरूप है? निस्सन्देह [illegible]
का समाज नहीं है जो अपने पीछे धूल छोड़ जाती है [illegible]
मुंह नाक और कान इस धूल से सन जाते हैं जबर मान्यता
नहीं जाते। यह एक आदिमकालीन और मध्ययुगीन [illegible]

सन् १९११ में लन्दन से अमरीका के [illegible]
बीस अन्य और १७ मील चौड़े भू-क्षेत्र पर फैले हुए [illegible]
से उखड़ते हुए ग्रामीणों की ओर निर्देश किया था। उन्होंने

यह एक बड़ी करुणाजनक अवस्था है कि इन सीधे-सादे निर्दोष ग्रामीणों को वर्ष में छः महीने हाथ पर हाथ धरे खाली बैठना पड़ता है। दूर की बात नहीं है एक समय ऐसा भी था, जब प्रत्येक गांव की प्रारम्भिक मानवीय आवश्यकताओं—भोजन और वस्त्र—के विषय में आत्म-निर्भर था। हमारे देशवासियों के दुर्भाग्य से जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ऐसे उपायों का आश्रय लेकर, जिनका वर्णन करना मैं पसन्द नहीं करता पूरक ग्रामोद्योगों को नष्ट किया तो लाखों बुनकर, जिन्होंने अपने अद्भुत हस्त-कौशल द्वारा ऐसा सुन्दर वस्त्र निर्माण किया था जिसकी दुनिया के परदे पर मिसाल नहीं मिलती और जिसकी बराबरी का कपड़ा आज की आधुनिक मशीन भी तैयार नहीं कर सकी बेकार हो गये और उस दिन से हमारा हिन्दुस्तान दिन-प्रति-दिन गरीब होता चला गया। मुझे इसकी परवाह नहीं कि इसके विरोध में क्या कहा जाता है।

## पश्चिम में

अब हम यह देखते हैं कि पश्चिम में मशीनरी के प्रभाव के कारण धन-संपत्ति और कार्य-नियोजन की अवस्थाओं के संबंध में घटना-चक्र ने किस प्रकार प्रगति की। शायद पाठकों को यह विरोधाभास प्रतीत हो कि धन-संपत्ति विनाश से बढ़ती है और मिल तथा मशीनरी में श्रम की बचत करने वाली विधियों के अपनाने से प्रत्यक्षतः पहले से दुगुनी बेकारी बढ़ गयी है। उद्योगों की अपेक्षा कृषि का स्थान बिल्कुल गौण हो गया है। इंग्लैंड एक कृषि-प्रधान देश की अपेक्षा उद्योग-प्रधान अधिक है इटली और रूस ने जो पहले कृषि-प्रधान देश थे पिछले १५ वर्षों में औद्योगिक राष्ट्रों के साथ प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि से उद्योग-क्षेत्र में उत्कर्ष प्राप्त करने के लिए कोई कसर नहीं उठा रखी। इंग्लैंड अपनी अधिकांश भोज्य सामग्री बाहर के देशों से—मांस न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया से गेहूं कनाडा से और डैनमार्क से दूध और दूध के बने पदार्थ हालैण्ड और बेलजियम से और कापी (कॉफी) ब्राजील से—मंगाता है। इन सब पदार्थों के लिये उसे कोयले और लोहे के रूप में या दूसरे देशों से मंगाये हुए कच्चे माल—रुई और बिनौले पशुओं की खालें और मूंगफली—द्वारा निर्मित पदार्थों के रूप में अदायगी करनी पड़ती है। प्रथम यूरोपीय युद्ध के पाठों को युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटेन ने शीघ्र ही भुला दिया। १९१४ १८ के विश्व-युद्ध में ब्रिटेन के पार्क, शिकारगाहें और चरागाहें कुछ अंश तक उपजाऊ भूमि में परिवर्तित कर दी गयी थी परन्तु ज्यों ही १९१९ में युद्ध समाप्त हुआ १९१९ ३ के वर्षों में २५ लाख एकड़ उपजाऊ भूमि को फिर चरागाहों में बदल दिया गया और वह अनुपजाऊ हो गयी तथा परिणामतः अपनी भोज्य-सामग्री के लिये इंग्लैण्ड को दूसरे देशों पर निर्भर होना पड़ा।

बड़े परिमाण में वस्तु-विनिमय ने जो कि अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु-विनिमय के कारण अपने में पूर्ण नहीं है आनुपातिक रूप से बड़े पैमाने पर धन के प्रयोग को आवश्यक बना दिया है और इसके साथ ही मुद्रा और विनिमय के कृत्रिम मापदण्ड मुद्रा-विस्फीति और मुद्रा-स्फीति तथा उन बाजारों में पूर्ण अनिश्चितता आ गयी है जो वस्तुओं या फसलों के उत्पादन द्वारा नियन्त्रित नहीं किये जाते अपितु आर्थिक उद्भव की नयी वस्तुओं और करेंसी नोटों के नए उत्पादन द्वारा नियन्त्रित होते हैं। वस्तुओं का उत्पादन बाजारों पर कब्जा पाने की इच्छा से किया जाता है और इसलिए उनकी कीमतों पर नियन्त्रण रखा जाता है। कोई पदार्थ चाहे कितना ही मूल्यवान क्यों न हो राष्ट्रों को इसकी उपयोगिता प्रभावित नहीं करती अपितु वे तो इसके बाजार भाव से प्रभावित होते हैं। यह बड़ा विचित्र और विरोधाभास प्रतीत हो सकता है कि धन की वृद्धि संपत्ति के नाश द्वारा ही संभव हुई है।

सन् १९२६ में मिस्रियों से कहा गया कि वे अपनी कपास की खेती में तीन वर्षों तक हर वर्ष एक-तिहाई क्षेत्र की कमी करते चले जायें। सन् १९२७ में क्यूबा के प्रैजीडेंट ने ४५ लाख टन तक खांड की उत्पादन सीमा निर्धारित कर दी। सन् १९३१ में ब्राजील ने १८९ करोड़ पौंड की कीमत के १ करोड़ २ लाख कॉफी के बोरे नष्ट कर दिये और १९३३ के अन्त तक २ करोड़ २ लाख कॉफी के बोरे या तो जला दिये गये या समुद्र में डुबो दिये गये। जर्सी की गायों को कृत्रिम उपायों से सुखा कर दिया गया ताकि दूध की कीमत ऊंची रह सके और इसी कारण से मैक्सिको की अंजीरों को सड़ने दिया गया। अमरीका में भी कभी किसान ईंधन के स्थान पर गेहूं जलाते थे।

जब फलों के उत्पादक लाखों बुशल फलों को वृक्षों की शाखाओं पर सड़ने के लिए छोड़ देते हैं जब फैडरल फार्म बोर्ड कपास की हर चौथी पंक्ति को बिना बोये छोड़ने का आग्रह करता है और गेहूं के कृषि-क्षेत्र में भारी कमी की जाती है तो हर कोई यह सोचता कि देश में धन-धान्य की बहुतायत है और बेकारी तो भूतकाल की चीज है। कम से कम इतनी समृद्धि एवं बहुतायत के बीच तथा राज्य द्वारा मशीनरी के प्रभाव के कारण अपनाए गए इन उपायों के द्वारा बेकारों की संख्या में तो कमी होनी चाहिए, पर ऐसा नहीं है।

अमरीका में १९१९ और १९३१ के वर्षों के बीच में मशीनों की सहायता से काम कर्मों की उत्पादन-क्षमता में ७१ प्रतिशत वृद्धि हो गयी परन्तु उन्हीं वर्षों में बेकारों की संख्या १५ लाख से बढ़कर १ करोड़ २ लाख हो गयी और "उद्योग वैज्ञानिक प्रबन्ध" ने बेकारों की संख्या में ४ लाख की और वृद्धि कर दी।[१]

---

१ श्री एम. आर. अग्रवाल द्वारा लिखित "Why Swadeshi" के पृष्ठ १८, ४ ।

२ एम. आर. अग्रवाल द्वारा लिखित "Why Swadeshi" पृष्ठ १९ ।

हिन्दुस्तान में भी बेकारों की संख्या बहुत अधिक है। खेती का मशीनीकरण करने के बाद और भी अधिक आदमी बेकार हो जायेंगे और उन्हें ग्राम छोड़ने के लिए विवश होना पड़ेगा।[1] बेकारी अनिवार्य नहीं है परन्तु हमारे अर्थशास्त्र का संपूर्ण ढांचा श्रम की बचत करने वाली मशीनरी और कोरी किताबी शिक्षा बकारी और अन्य समस्याओं के लिए उत्तरदायी है। बेकारी वस्तुतः विश्व के बाजारों में उथल-पुथल से उत्पन्न होती है और मुद्रा तथा विनिमय-नीतियों धूमक-सूची और रेल-दरों में हेरफेर से इसको और अधिक प्रश्रय मिलता है। जन-संख्या या कामगारों की वृद्धि के कारण बकारी नहीं होती। न ही श्रम-क्षेत्र में महिलाओं के प्रवेश से बेकारी का जन्म होता है। अमरीका में रिपब्लिकन और डैमोक्रेटिक आदर्शों के होते हुए और साम्राज्यवाद-विरोधी अभिमान प्रदर्शित करते हुए भी भोजन वस्त्र और आवास की दृष्टि से अधिकांश जनता की स्थिति दयनीय है। "बहुत पहले ऐसा लगता है कि बहुत पहले एक आदमी को पागलखाने में डाला गया था और वह आधुनिक कल-कार खानों का स्वप्नद्रष्टा था। इसी प्रकार एक नयी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करने वालों को भी पागल समझा जायगा जबकि चारों ओर मशीनरी के प्रशस्ति-गीत गाये जा रहे हैं।" मशीनरी को इसकी सीमाओं में रखो। इसे मुख्यतः भोजन और वस्त्र से संबंधित ग्राम्य कार्य-नियोजन के क्षेत्र पर हावी मत होने दो और इस प्रकार हमारे देश में धन-धान्य का प्राचुर्य और शांति का साम्राज्य होगा। जिन्दगी के लिए बड़ोजहद बन्द हो जायगी। ग्रामों से कस्बों और शहरों की ओर, खुली हवा से गन्दी बस्तियों और भीड़भाड़ के स्थानों की ओर, पारिवारिक जीवन से गलियों में घूमने और सड़कों पर सोने की ओर लोगों का प्रयाण रुक जायगा। अक्सर जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने की चर्चा होती है। मशीनरी के अन्तर्गत कुछ थोड़े से चुने हुए लोगों का जीवन-स्तर तो अवश्य उन्नत हो जाता है परन्तु दूसरी ओर अनेकों निस्सहाय इन्सानों का जीवन-स्तर अवनत हो जाता है। हिन्दुस्तान में निस्सन्देह जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने की समस्या है परन्तु यह केवल उचित भोजन वस्त्र और आवास की प्राप्ति तक सीमित होनी चाहिए। मशीनरी के प्रभाव के कारण भीड़ भाड़ हो गई है ग्राम्य-जीवन में बाधा के कारण उसका विकास अवरुद्ध हो गया है और समस्त भारतीय जनता को भोजन तथा वस्त्र प्रदान करने वाली प्रणाली छिन्न-भिन्न हो गयी है। टांगों में अलवर रोग और चेहरे के फूले हुए होने के कारण मानव शरीर ऊपर से भरा हुआ अवश्य नजर आ सकता है परन्तु इन रोगों से पीड़ित मनुष्य और वह राष्ट्र जिसके कुछ व्यक्तियों के पास तो सम्पत्ति का अम्बार जमा हुआ है और शेष लोग अभावग्रस्त हैं अवश्य ही विनाश के पथ की ओर अग्रसर होगा।

मशीनरी के चाहे कितने ही फायदे हों—और फायदे बहुत सारे हैं—इनसे लोगों

---

[1] एम. आर. मसानी द्वारा लिखित "Why Swadeshi" पृष्ठ ३७।

है, जिसमें कार्य और कारण एक-दूसरे को उत्पन्न करते हैं और प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक बुराइयां करने और उनका इलाज ढूंढ निकालने की प्रक्रियाओं में हमें व्यस्त रहना पड़ता है। समय धन है और इसकी गति की तीव्रता सारतः आधुनिक युग की एक कथा है। तीव्र गति से सड़क पर धूल हो जाती है। धूल हटाने के लिए सड़कों पर तारकोल बिछाया जाता है और इस अतिरिक्त खर्चे के लिए नए कर लगाने पड़ते हैं और पुराने करों की दरें बढ़ानी पड़ती हैं। इससे असन्तोष और भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है। ये दोनों सहयोग और शुभेच्छा की भावनाओं का नाश कर लोभ को जन्म देते हैं और फिर हमें युद्ध के मोड़ पर लाकर खड़ा कर देते हैं। फिर तीव्र गति से दुर्घटनाएं होती हैं। दुर्घटनाओं से बचने के लिए भूमि के नीचे सड़कें बनायी जाती हैं। इससे फिर पूर्वोक्त परिणामों के कारण करों की दरें बढ़ानी पड़ती हैं।

दूसरे, धन मुद्रा या करेन्सी नोटों के रूप में होता है। निर्मित वस्तुओं में प्रतियोगिता से आपका निर्यात व्यापार नष्ट हो जाता है। आप अपने विनिमय मूल्य को कम करके बाजार को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करते हैं। यह तो ऐसा है जैसे आप बांध में किसी अदृश्य छिद्र द्वारा तालाब का सारा पानी खींच लें। जब विनिमय दर गिर जाती है तो निस्सन्देह निर्यातों में वृद्धि होती है परन्तु दूसरों से लिये गये अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों में वृद्धि हो जाती है। इसलिये विनिमय की दर में फिर वृद्धि होती है और निर्यात गिर जाता है। एक गतिरोध उत्पन्न हो जाता है और राष्ट्र ऋण देने से मुकर जाते हैं, जैसे फ्रांस ने अमेरिका को उसका ऋण देने से इनकार कर दिया था।

तीसरा चक्र युद्धों द्वारा पैदा होता है। युद्ध से युद्ध-ग्रस्त राष्ट्रों का स्वर्ण भंडार खत्म हो जाता है। वे स्वर्ण मान छोड़ देते हैं। करेन्सी नोटों के लिए एक सुरक्षित संचय होने के अतिरिक्त स्वर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलन का भी साधन है। अमरीका ने संसार का अधिकांश स्वर्ण हस्तगत कर लिया था। परन्तु स्वर्ण-मान के छोड़ने वाले देश अमरीकी विदेश व्यापार के जबर्दस्त प्रतियोगी बन गये थे। अमरीका के निर्यात गिर गये थे इसलिए उसे अपने आयातों के लिए स्वर्ण में अदायगी करनी पड़ी और उसके स्वर्ण-भंडार समाप्त हो गये थे। ब्रिटेन ने भी सन् १९३१ में स्वर्णमान छोड़ दिया था और इस प्रकार एक चौथे चक्र की सृष्टि हुई।

उसने निस्सन्देह अपने व्यापार और बजट का संतुलन किया, आन्तरिक समृद्धि प्राप्त की और उसकी करेन्सी का मूल्य भी बाजार में बढ़ गया था परन्तु एक नया ही खतरा उठ खड़ा हुआ था। करेन्सी किसी के साथ जुड़ी हुई नहीं थी और वह बाजार में सट्टेबाजों की कारस्तानियों के लिए खुली थी जो इसे झूठे मूल्य—ऊंचे या नीचे—दे सकते थे। इसने राष्ट्रीय मुद्रा को हरा दिया।

पांचवां चक्र बैंक-दर से सम्बन्धित है। बैंक दर नीची होने से धन मिलना आसान

हो जाता है। उद्योग समृद्ध होते हैं परन्तु जमा पूंजी कम होने लगती है। रुपये-पैसे की बहुतायत से वस्तुओं भी बढ़ने लगती हैं। मांग कम करने के लिए बैंकदर ऊंची की जाती है। इस बीच राष्ट्रीय ऋण की किस्त की अदायगी का समय आ जाता है और बैंकदर नीची की जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि सिक्यूरिटियों का पुनर्गठीकरण नीची दर पर किया जाता है। एक बार ऐसा करने के बाद बैंकदर फिर ऊंची कर दी जाती है।

छठा चक्र यह है कि इंग्लैंड अपने बजट का संतुलन टैक्सों में वृद्धि करके करता है जो कि सीमा पर पहुंच गये हैं। टैक्सों में कमी के लिए प्रबल आन्दोलन चल रहा है। टैक्सों में कमी से बजट डांवाडोल हो उठता है। अगर स्टर्लिंग की कीमत बहुत अधिक घट जाती है यह समाप्ति का सूचक है और अगर यह बहुत ऊंची चढ़ जाती है तो यह तेज बुखार का सूचक है जिसका अंत पागलपन में होता है और इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में मौत आरम्भ हो जाती है।

सातवां चक्र ओटावा समझौते ने पैदा किया था। इंग्लैंड अपना सारा गेहूं अपने उपनिवेशों से खरीद करना चाहता था। पहले रूस इंग्लैंड से मशीनरी खरीद कर रहा था और बदले में इंग्लैंड को गेहूं बेच रहा था। इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन को अपने आयात कम करने पड़े। या फिर मक्खन को ले लीजिए जो कि इंग्लैंड ७ करोड़ रुपये का अपने साम्राज्य में से और बाहर के देशों से मंगाता था। उसने डेनमार्क और हालैण्ड से मक्खन खरीद नहीं किया इसलिए वह इन देशों को अपना सामान नहीं बेच सका और उसके निर्यात व्यापार को बड़ा भारी धक्का लगा था।

आठवां चक्र सन् १४-१८ के यूरोपीय विश्वयुद्ध से पैदा हुआ। ब्रिटेन ने अमरीका का ९,२८२, पौंड का ऋण देना था जो कि ६२ वर्षों में चुकाया जाना था। जर्मनी ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में ६ ५७६ पौंड देने थे जो कि ५८ वर्षों में चुकाये जाने थे। जर्मनी ने अपना ऋण फ्रांस को वस्तुओं के रूप में अदा किया था और इस प्रकार फ्रांस को जाने वाले ब्रिटिश निर्यात बन्द हो गये। जर्मनी के कारखाने दिन-रात चल रहे थे और श्रमिकों को अच्छी खासी तनख्वाहें मिल रही थीं और युद्ध के तत्काल बाद इंग्लैंड में बेकारों की संख्या १ करोड़ १ लाख तक पहुंच गयी थी। इन्हीं दूषित चक्रों को गांधीजी शक्तिशाली चक्रों में परिवर्तित करना चाहते थे।

राजनीति की उपमा एक बड़ी ट्रेन से दी जा सकती है जिसका नायक कुशल ड्राइवर है जो यह जानता है कि कहां गाड़ी की रफ्तार धीमी की जाय और कहां इसे तेज किया जाय कब इसे ठहराया जाय और कब इसे चलाया जाय कहां इसमें और डिब्बे लगाये जाएं और कहां उन्हें अलग किया जाय गाड़ी में कब यात्रियों को सवार किया जाय और कब सामान लादा जाय। जब राष्ट्र-नायक गांधीजी तेजी से कदम बढ़ाते हैं जब अपनी रफ्तार धीमी कर देते हैं जब वे असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हैं और जब हरिजन लहर,

को मुलाम बना दिया है मानवीय एकता का नाश कर दिया है, पारिवारिक जीवन की शान्ति का लोप कर दिया है परिवार के नैतिक मूल्यों का ह्रास कर दिया है कारीगरों की सृजनात्मक प्रतिभा को पंगु बना दिया है और इससे उनकी स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो गया है। इसने सहयोग की भावना के स्थान पर प्रतियोगिता की भावना को जन्म देकर अन्तर्राष्ट्रीय उलझन खड़ी कर दी है और उद्योगवाद तथा सैनिकवाद की विभीषिकाओं के साथ साम्राज्यवाद की भावना को जन्म दिया है। समय और दूरी के व्यवधान को कम करके यह संसार के देशों को एक-दूसरे के निकट लायी है परन्तु इसने राष्ट्रों को एक दूसरे से जुदा कर दिया है। यह मानव शरीरों को तो जरूर एक दूसरे के निकट लायी है परन्तु इसने लोगों के हृदयों और आत्माओं को एक दूसरे से पृथक् कर दिया है। सबसे अधिक बुराई की बात तो यह है कि इसने ईसाइयत के क्षेत्र और दृष्टि को संकुचित कर के उसे साम्राज्यवादी की दासी बना दिया है।

पश्चिमी प्रकार के समाजवादी ने अवकाश का प्रश्न उठा कर भारतीय समस्या को और जटिल बना दिया है। हिन्दुस्तान में कारीगर अपने काम में अपनी आत्मा को उंडेल कर रख देता है और इसे समय या वेतन द्वारा विनियमित नहीं करता। यहां अवकाश की समस्या नहीं है क्योंकि काम और अवकाश तो परस्पर-परिवर्तनीय शब्द हैं। जब मूर्तिकार एक भद्दे पत्थर में से काट-छांट कर जगन्मोहिनी और कैलासस्वामी की सुन्दर और आश्चर्य जनक मूर्तियों का निर्माण करता है तो उसके कलात्मक हृदय से बहुत कुछ प्रकट होता है। हमारे देश में श्रम अवकाश है और अवकाश श्रम है। श्रम कला है श्रम आनन्द और स्फूर्ति है श्रम कलाकार की आत्मानुभूति और उसकी आत्मा का विश्राम है। भारत की समस्या तो यह है कि अवकाश के क्षणों के लिए कैसे काम प्राप्त किया जाय कारीगर के लिए अवकाश कैसे निकाला जाय यह नहीं।

> इंग्लैंड में कान्फ्रेंस करता हुआ, ९० से अधिक स्वैच्छिक संगठनों के प्रतिनिधि, शिक्षा-विशारद और औद्योगिक संस्थाओं के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे और उन्होंने अवकाश के उपयोग की समस्या का राष्ट्रीय सर्वेक्षण करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी।
>
> सभापति सर विलियम डौइल ने कहा, अवकाश यह खाली समय है, जिसमें लोग अपनी इच्छानुसार काम करके केवल औद्योगिक प्रणाली न बन कर सच्चे अर्थों में मानवीय पुरुषों का विकास कर सकते हैं। काम के घंटे थोड़े हैं परन्तु लाखों लोगों के लिए अवकाश केवल एक मजाक है।
>
> औद्योगिक मनोविज्ञान की राष्ट्रीय संस्था के कैप्टन के एच कौफल्से ने कहा कि ८ प्रतिशत लोग ऐसे कामों में लगे हुए हैं जो उनकी मानसिक क्षमता के अनुरूप नहीं है।

दूसरे वक्ता के शब्दों में दस प्रतिशत को छोड़ कर बाकी सब लोग ऐसे कामों में लगे हुए हैं जो उनकी मानसिक क्षमता से नीचे हैं। सोचिये इसका क्या अर्थ है। जरा कल्पना कीजिए अगर एक छठी श्रेणी के लड़के को चौथी श्रेणी के साथ कार्य करने के लिए बाधित किया जाय या यह कल्पना कीजिए कि एक अनुभवी और दक्ष डाक्टर को चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थी की तरह समय व्यतीत करने के लिए बाध्य किया जाय।

हर एक जीवित प्राणी को निरन्तर सीखना और उन्नति-पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिए, यदि वह एक ही स्थान पर आकर रुक जाता है तो उसके आन्तरिक गुणों का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

बड़े पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रियाएं भी, कुछ समय के बाद मनुष्य पर ऐसा ही प्रभाव डालती हैं। वे उसे मृतप्राय और निर्जीव बना देती हैं उसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पतन कर देती हैं। दूसरे वक्ता के शब्दों में हमारे नव-युवकों की वास्तव में इस प्रकार धीमे-धीमे हत्या की जा रही है।

कुछ लोग ऐसा अनुभव करना प्रारम्भ कर रहे हैं कि मशीन एक बुरी चीज है। हम ऐसा नहीं सोचते कि यह अपने आपमें कोई बुराई है जैसे कि बिजली की कुर्सी में शराब के नशे में चूर व्यक्ति की साइकिल अपने आप में बुरी नहीं है। यह हमारी विक्षिप्त और व्याकुल अवस्था ही है जिसे हमें दोषी ठहराना चाहिए।

हमारा विनाश तो इसमें निहित है कि हम मशीन को इस चीज की खुली छूट दे देते हैं कि यह हमें कार्य में जकड़े। 'काम नहीं, दाम नहीं' के नियम से हमारे परिश्रम एक आत्म-विनाशक नीरस काम में परिणत हो जाते हैं और अवकाश के समय एक मनहूस-भार बन कर रह जाते हैं।

और अवकाश ? ओह ! यह तो एक ऐसी चीज है जिससे हमें डरना चाहिए। नशीली चीजों के अभ्यस्त व्यक्तियों को अपने स्वप्न-लोक में ही विचरण करना चाहिए, वास्तविक जगत् में नहीं। अच्छा तो यही है कि हमें व्यर्थ सोचने का अवकाश ही न मिले।

## २

## दूषित चक्र

आधुनिक सभ्यता की परिस्थितियों से प्रभावित होकर हम सेवा और समय की अपेक्षा धन पर बहुत अधिक बल देते हैं। हमारा जीवन दूषित चक्रों की एक शृंखला बन गया

को गुलाम बना दिया है, मानवीय एकता का नाश कर दिया है, पारिवारिक जीवन की शान्ति का लोप कर दिया है, परिवार के नैतिक मूल्यों का ह्रास कर दिया है, कारीगरों की सृजनात्मक प्रतिभा को पंगु बना दिया है और इससे उनकी स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो गया है। इसने सहयोग की भावना के स्थान पर प्रतियोगिता की भावना को जन्म देकर अन्तर्राष्ट्रीय उलझन खड़ी कर दी है और उद्योगवाद तथा सैनिकवाद की विभीषिकाओं के साथ साम्राज्यवाद की भावना को जन्म दिया है। समय और दूरी के व्यवधान को खत्म करके यह संसार के देशों को एक-दूसरे के निकट लायी है परन्तु इसने राष्ट्रों को एक दूसरे से जुदा कर दिया है। यह मानव शरीरों को तो जरूर एक दूसरे के निकट लायी है परन्तु इसने लोगों के हृदयों और आत्माओं को एक दूसरे से पृथक कर दिया है। सबसे अधिक बुराई की बात तो यह है कि इसने ईसाइमत के तेज और दृष्टि को संकुचित कर के उसे साम्राज्यवाद की दासी बना दिया है।

पश्चिमी प्रकार के समाजवादी ने अवकाश का प्रश्न उठा कर भारतीय समस्या को और जटिल बना दिया है। हिन्दुस्तान में कारीगर अपने काम में अपनी आत्मा को उंडेल कर रख देता है और इसे समय या वेतन द्वारा विनियमित नहीं करता। यहां अवकाश की समस्या नहीं है क्योंकि काम और अवकाश तो परस्पर-परिवर्तनीय शब्द हैं। जब मूर्तिकार एक बड़े पत्थर में से काट-छांट कर जगन्मोहिनी और कैलाशस्वामी की सुन्दर और आश्चर्य जनक मूर्तियों का निर्माण करता है तो उसके कलात्मक हृदय से बहुत कुछ प्रकट होता है। हमारे देश में श्रम अवकाश है और अवकाश श्रम है। श्रम कला है, श्रम आनन्द और स्फूर्ति है, श्रम कलाकार की आत्मानुभूति और उसकी आत्मा का विश्राम है। भारत की समस्या तो यह है कि अवकाश के क्षणों के लिए कैसे काम प्राप्त किया जाय, कारीगर के लिए अवकाश कैसे निकाला जाय यह नहीं।

> इंग्लैंड में काफी अरसा हुआ २ से अधिक स्वैच्छिक संगठनों के प्रतिनिधि, शिक्षा-विशारद और औद्योगिक संस्थानों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे और उन्होंने अवकाश के उपयोग की समस्या का राष्ट्रीय सर्वेक्षण करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी।
>
> सभापति, सर विल्सन जैम्ब्स ने कहा, अवकाश वह खाली समय है, जिसमें लोग अपनी इच्छानुसार काम करके केवल औद्योगिक प्रभावी न बन कर लम्बे अर्थों में मानवीय गुणों का विकास कर सकते हैं। काम के घंटे थोड़े हैं परन्तु लाखों लोगों के लिए अवकाश केवल एक अवसाद है।
>
> औद्योगिक मनोविज्ञान की राष्ट्रीय संस्था के कैप्टन जे एच ग्रीव्स ने कहा कि ६ प्रतिशत लोग ऐसे कामों में लगे हुए हैं जो उनकी मानसिक क्षमता के अनुरूप नहीं हैं।

हो जाता है। उद्योग समृद्ध होते हैं परन्तु जमा पूंजी कम होने लगती है। रुपये-पैसे की बहुतायत से वस्तुएँ भी बढ़ने लगती हैं। मांग कम करने के लिए बैंकदर ऊंची की जाती है। इस बीच राष्ट्रीय ऋण की किस्त की अदायगी का समय आ जाता है और बैंकदर नीची की जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि सिक्युरिटियों का पुनर्नवीकरण नीची दर पर किया जाता है। एक बार ऐसा करने के बाद बैंकदर फिर ऊंची कर दी जाती है।

छठा चक्र यह है कि इंग्लैंड अपने बजट का संतुलन टैक्सों में वृद्धि करके करता है, जो कि सीमा पर पहुंच गये हैं। टैक्सों में कमी के लिए प्रबल आन्दोलन चल रहा है। टैक्सों में कमी से बजट डावांडोल हो उठता है। अगर स्टर्लिंग की कीमत बहुत अधिक घट जाती है यह समाप्ति का सूचक है और अगर यह बहुत ऊंची चढ़ जाती है तो यह तेज बुखार का सूचक है जिसका अंत पागलपन में होता है और इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में मौत आरम्भ हो जाती है।

सातवां चक्र ओटावा समझौते से पैदा किया था। इंग्लैंड अपना सारा गेहूं अपने उपनिवेशों से खरीद करना चाहता था। पहले रूस इंग्लैंड से मशीनरी खरीद कर रहा था और बदले में इंग्लैंड को गेहूं बेच रहा था। इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन को अपने आयात कम करने पड़े। या फिर मक्खन को ले लीजिए जो कि इंग्लैंड ७ करोड़ रुपये का अपने साम्राज्य में से और बाहर के देशों से मंगाता था। उसने बलजियम और हालैण्ड से मक्खन खरीद नहीं किया इसलिए वह इन देशों को अपना सामान नहीं बेच सका और उसके निर्यात व्यापार को बड़ा भारी धक्का लगा था।

आठवां चक्र सन् १४-१८ के यूरोपीय विश्वयुद्ध से पैदा हुआ। ब्रिटेन ने अमरीका का २,२८२, पौंड का ऋण देना था जो कि ६२ वर्षों में चुकाया जाना था। जर्मनी ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में १,५७१, पौंड देने थे जो कि ५८ वर्षों में चुकाये जाने थे। जर्मनी ने अपना ऋण फ्रांस को वस्तुओं के रूप में अदा किया था और इस प्रकार फ्रांस को जाने वाले ब्रिटिश निर्यात बन्द हो गये। जर्मनी के कारखाने दिन-रात चल रहे थे और श्रमिकों को अच्छी खासी तनख्वाहें मिल रही थीं और युद्ध के तत्काल बाद इंग्लैंड में बेकारों की संख्या १ करोड़ १ लाख तक पहुंच गयी थी। इन्हीं दूषित चक्रों को गांधीजी शक्तिशाली चक्रों में परिवर्तित करना चाहते थे।

राजनीति की उपमा एक बड़ी ट्रेन से दी जा सकती है जिसका नायक इंजिन ड्राइवर है जो यह जानता है कि कहां गाड़ी की रफ्तार धीमी की जाय और कहां इसे तेज किया जाय कब इसे ठहराया जाय और कब इसे चलाया जाय कहां इसमें और डिब्बे लगाये जाएं और कहां उन्हें अलग किया जाय गाड़ी में कब यात्रियों को सवार किया जाय और कब सामान लादा जाय। जब राष्ट्र-नायक गांधीजी तेजी से कदम बढ़ाते हैं जब अपनी रफ्तार धीमी कर देते हैं, जब वे असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हैं और जब हरिजन सहर,

हो जाता है। उद्योग समृद्ध होते हैं परन्तु जमा पूंजी कम होने लगती है। रुपये-पैसे की बहुतायत से बकरखें भी बढ़ने लगती हैं। मांग कम करने के लिए बैंकदर ऊंची की जाती है। इस बीच राष्ट्रीय ऋण की किस्त की अदायगी का समय आ जाता है और बैंकदर नीची की जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि सिक्यूरिटियों का पुनर्नवीकरण नीची दर पर किया जाता है। एक बार ऐसा करने के बाद बैंकदर फिर ऊंची कर दी जाती है।

छठा चक्र यह है कि इंग्लैंड अपने बजट का संतुलन टैक्सों में वृद्धि करके करता है जो कि सीमा पर पहुंच गये हैं। टैक्सों में कमी के लिए प्रबल आन्दोलन चल रहा है। टैक्सों में कमी से बजट डांवाडोल हो उठता है। अगर स्टर्लिंग की कीमत बहुत अधिक घट जाती है यह समाप्ति का सूचक है और अगर यह बहुत ऊंची चढ़ जाती है तो यह तेज बुखार का सूचक है जिसका अंत पागलपन में होता है और इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में मौत आरम्भ हो जाती है।

सातवां चक्र ओटावा समझौते ने पैदा किया था। इंग्लैंड अपना सारा गेहूं अपने उपनिवेशों से खरीद करना चाहता था। पहले रूस इंग्लैंड से मशीनरी खरीद कर रहा था और बदले में इंग्लैंड को गेहूं बेच रहा था। इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन को अपने आयात कम करने पड़े। या फिर मक्खन को ले लीजिए जो कि इंग्लैंड ७ करोड़ रुपये का अपने साम्राज्य में से और बाहर के देशों से मंगाता था। उसने बलजियम और हालैण्ड से मक्खन खरीद नहीं किया इसलिए वह इन देशों को अपना सामान नहीं बेच सका और उसके निर्यात व्यापार को बड़ा भारी धक्का लगा था।

आठवां चक्र सन् १९१८ के यूरोपीय विश्वयुद्ध से पैदा हुआ। ब्रिटेन ने अमरीका का २,२८२ पौंड का ऋण देना था जो कि ६२ वर्षों में चुकाया जाना था। जर्मनी ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में ६,५७६, पौंड देने थे जो कि ५८ वर्षों में चुकाये जाने थे। जर्मनी ने अपना ऋण फ्रांस को वस्तुओं के रूप में अदा किया था और इस प्रकार फ्रांस को जाने वाले ब्रिटिश निर्यात बन्द हो गये। जर्मनी के कारखाने दिन-रात चल रहे थे और श्रमिकों को अच्छी खासी तनख्वाहें मिल रही थीं और युद्ध के तत्काल बाद इंग्लैंड में बेकारों की संख्या १ करोड़ १ लाख तक पहुंच गयी थी। इन्हीं दूषित चक्रों को गांधीजी शक्तिशाली चक्रों में परिवर्तित करना चाहते थे।

राजनीति की उपमा एक बड़ी ट्रेन से दी जा सकती है जिसका नायक इंजिन ड्राइवर है जो यह जानता है कि कहां गाड़ी की रफ्तार धीमी की जाय और कहां इसे तेज किया जाय कब इसे ठहराया जाय और कब इसे चलाया जाय कहां इसमें और डिब्बे लगाए जाएं और कहां उन्हें अलग किया जाय गाड़ी में कब यात्रियों को सवार किया जाय और कब सामान उतारा जाय। अब राष्ट्र-नायक गांधीजी तेजी से कदम बढ़ाते हैं अब अपनी रफ्तार धीमी कर देते हैं अब वे असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हैं और अब हरिजन यात्रा,

मद्य-निषेध तथा साम्प्रदायिक एकता के कार्यक्रम में संलग्न हैं। रास्ता खोजने वाले और श्रमिक आगे-आगे चलते हैं और जंगल साफ करते हैं, झाड़ियों को काटते हैं, पटरियां बिछाते हैं और सड़क का निर्माण करते हैं। वे अपनी इस धुन में अपने जीवन की बलि दे देते हैं ताकि उनके पीछे आने वालों का रास्ता साफ हो सके। इस प्रकार यह काम विनम्रता का रूप धारण करके एक पवित्र धर्मोपदेश बन जाता है और उन के लिए दौड़-धूप प्रभु की खोज में परिवर्तित हो जाती है।

## दूसरा अध्याय

# भारतीय ग्राम

*भारत की स्वाधीनता के बाद हमारी प्रमुख समस्या ग्रामों के पुनरुत्थान की है।* उत्थान से अभिप्राय हमारे देश की प्राचीन संस्थाओं को पश्चिमी सभ्यता की भावना से प्रभावित करने में है या पूर्वी तत्त्वों के स्थान पर पश्चिमी तत्त्वों की स्थापना करने से है। आज की अवस्था में स्पष्ट रूप से पूर्व की अपेक्षा पश्चिम का ही हमारे देश में प्राधान्य है। हमें अपने राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना है—भारतीय स्वार्थों का प्रशासन के प्रत्येक विभाग का समाज के प्रत्येक स्तर का पुनर्निर्माण करना है। परन्तु हमारा प्रथम और आधारभूत कर्त्तव्य देश की जनता को उसके प्राचीन मूल्यों व्यवस्थाओं संबंधों और आदर्शों से अवगत कराना है। लगभग २० वर्षों के विदेशी शासन ने भारतीय जनता को नये तौर-तरीकों और नये संगठनों नये फैशनों और नयी पोशाकों नयी आवश्यकताओं और नयी शिक्षा दीक्षाओं का अभ्यस्त बना दिया है। व्यक्ति को समाज से अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है अधिकारों ने कर्त्तव्यों का स्थान ले लिया है। तात्कालिक लाभ ने दूर के लाभ की दबा दिया है नीति ने सिद्धान्त का स्थान ले लिया है और धन ने सेवा का। अवकाश और पूर्णता के स्थान पर जल्दबाजी और आकुलता हमारे मुख्य प्रेरक हैं। समय-पालन जो एक गुण सिद्ध हो सकता था बाधा बन गया है और उसने स्वस्थता तथा पूर्णता का नाश कर दिया है। सत्यनिष्ठा और परम्परानुकरण के स्थान पर समय ही एक मात्र संविदा (ठेका या पट्टा) का सार रह गया है। "सस्ता और मन्दा" आज का स्वीकृत आदर्श बन चुका है और यही *यन्त्र-उद्योग का आधार है जिसके पीछे मनुष्य का शताब्दियों का अनुभव है।* जब तक हमारा राष्ट्र प्राचीन आदर्शों की भावना से अनुप्राणित नहीं होता हम सच्चे रूप में ग्राम्य भारत की आधार-शिला नहीं रख सकते।

हम प्रचार तो "ग्राम की ओर वापस लौटो" का करते हैं परन्तु निर्लज्ज होकर शहरों और कस्बों के व्यवसायों के पीछे पड़े हुए हैं। हम बातें तो पंचायतों की करते हैं परन्तु कूड़ दम्भ और कृत्रिमता से भरी हुई विदेशी ढंग पर बनी अदालतों की शरण में जाते हैं। हम डींगें तो मानवता के आदर्श की मारते हैं परन्तु अर्द्ध-विक्षिप्त विधवा के हाथों से चक्र चांदी के सिक्के छीनते हुए हमें शर्म नहीं आती। हम नीचे खादी की सुषिमा मना रहे हैं और ऊपर की मंजिल में स्मपान-यात्रा के लिए लाइ पड़ी हुई है। हम गीत तो ग्रामोद्योग और गृहोद्योग के गाते हैं परन्तु हमारे बच्चों की शिक्षा-दीक्षा ऐसी शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत हो

रही है जो निर्जीव और यान्त्रिक है। हम कम तो विधवाओं और अनाथों की सहायता कम करते हैं परन्तु पूरा जीवन और आजीविका का नाश करने वाले यन्त्र की करते हैं। ग्राम्य भारत के आदर्श के झण्डे को ऊंचा उठाने वाले परन्तु अपनी शक्ति और समय का अपव्यय शहरों में करने वाले पुरुषों से क्या आशा की जा सकती है।

इसलिए अगर हमें अपने भारतीय राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना है हमें भारतीय समाज के ढांचे में प्रविष्ट हुई पश्चिमी मान्यताओं और धारणाओं को बदलना होगा और जिस प्रकार की विदेशी शिक्षा आज हम अपनी संतानों को दे रहे हैं उस पर निर्णय होकर पुनरावलोकन करना होगा। जिन लोगों को हमने मंत्रियों विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों प्रोफेसरों और लैक्चरारों वकीलों और डाक्टरों उद्योगपतियों और वाणिज्य-व्यापार के नायकों के उच्च और प्रतिष्ठापूर्ण स्थान पर बिठाया है उनके विदेशी संस्कारों और प्रभावों का हमें परिष्कार करना होगा। हमारे सुधार की प्रक्रिया वस्तुतः उल्टी होगी क्योंकि इस समय की आवश्यकता तो हमारे स्वामियों को शिक्षित करने की है यह ठीक वैसे ही है जैसे कि राबर्ट लो ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कहा था जब इंग्लैंड में मताधिकार का विस्तार हुआ था। ये केवल थोड़े से सुसंस्कृत व्यक्ति ही नहीं हैं जो अनेकों अनपढ़ों को शिक्षित करते हैं परन्तु ये लाखों मूक व्यक्ति हैं जिन्होंने शोर मचाने वाले इन थोड़े से व्यक्तियों को शिक्षित करना है जिनके हाथ में सत्ता और सम्मान है। ग्राम्य भारत का पुनरुत्थान का कार्य बड़ा कठिन कार्य है और अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के पुनरुज्जीवन द्वारा हमें भारत वर्ष के स्वर्णिम भविष्य का निर्माण करना होगा। आज की समस्याओं का समाधान तो देश के जन-जागरण में है और जब भारत की जनता जाग जाएगी तो समस्याओं का समाधान स्वतः हो जायगा।

## २

## भारतीय ग्राम—इसका संगठन

आधुनिक स्वतन्त्र भारत में ग्रामों की वास्तविक स्थिति महत्ता और ग्राम-संगठन के स्वरूप को समझने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक होगा कि हम आज से सवा सौ वर्ष पहले के ग्राम संगठन का बारीकी से अध्ययन करें और इस विषय के अध्ययन के लिये कौर्ट ऑफ डायरैक्टर्स द्वारा प्रसारित २ अप्रैल १८१४ के एक न्यायिक पत्र का निम्न उद्धरण अत्यन्त सहायक होगा। इस पत्र से यह भली प्रकार पता चलता है कि किस प्रकार मनु से लेकर आज तक का ग्राम-संगठन सुदृढ़ आधारों पर स्थित था और यह ग्राम-संगठन तभी छिन्न-भिन्न होना प्रारम्भ हुआ जब हमारे देश के कुछ प्रान्तों में रैय्यतवाड़ी प्रणाली अपनाई गई।

कर्नल मुनरो अपने १५ मई १८ ६ के प्रतिवेदन में सूचित करता है कि प्रत्येक

गांव एक प्रकार का छोटा-सा जनतन्त्र है जिसका अध्यक्ष पटेल होता है और हिन्दुस्तान में ऐसे अनेकों जनतन्त्र हैं। युद्ध के समय ग्राम-निवासी मुख्यतः अपने पटेल का ही आज्ञानुसरण करते हैं, वे साम्राज्यों के पतन और छिन्न-भिन्न होने की ओर कोई ध्यान नहीं देते। जब कि सारा गांव सुसंगठित रूप से एक रहता है वे इस बात की परवाह नहीं करते कि उनका गांव किस शक्ति को हस्तान्तरित किया जाता है। यह गांव चाहे किसी शक्ति के आधीन चला जाय आन्तरिक प्रबन्ध सर्वथा अपरिवर्तित रहता है। गांव का पटेल अब भी कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट है। मनु से लेकर आज तक बस्तियों का निर्माण पटेल ही करता है। एक दूसरे प्रतिवेदन में कर्नल मुनरो सूचित करता है कि "जो कोई प्रान्त का शासन करता है वही गांव का शासन करता है।" भारतीय ग्राम-समाजों के इस वर्णन की पुष्टि आपके बोर्ड आफ रेवेन्यू के १९ अप्रैल, १८०८ के प्रतिवेदन से होती है।

भौगोलिक दृष्टि से विचार करने पर गांव एक ऐसा भूमिखंड है जिसमें सैकड़ों या हजारों एकड़ उपजाऊ और बंजर भूमि आती है और राजनैतिक दृष्टि से यह एक कारपोरेशन या छोटे कस्बे से मिलता-जुलता है। गांव के प्रशासन और व्यवस्था के संचालन के लिए अधोलिखित अधिकारी और सेवक होते हैं।

पटेल या गांव का मुखिया गांव के मामलों की सामान्य देख-भाल करता है, ग्राम-वासियों के झगड़ों का निबटारा करता है पुलिस का निरीक्षण करता है और जैसा कि पहले बताया गया है अपने गांव का राजस्व इकट्ठा करता है क्योंकि वह अपने व्यक्तिगत प्रभाव और ग्राम-वासियों की स्थिति तथा संबंधों से भली भांति परिचित होने के कारण राजस्व इकट्ठा करने के कार्य को अच्छी प्रकार संचालित कर सकता है। कर्णम गांव की उपज का लेखा-जोखा रखता है और इससे संबंधित हर बात को अपने रजिस्टर में दर्ज करता है। तलियार का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत होता है; यह अपराधों के विषय में सूचना प्राप्त करता है और एक ग्राम से दूसरे ग्राम की ओर यात्रा करने वाले व्यक्तियों की रक्षा करता है। टोटी का कार्यक्षेत्र अपने गांव तक सीमित होता है यह अनेक दूसरे कर्तव्यों के साथ फसलों की रक्षा करता है और उनकी पैमाइश में सहायता करता है। बाउण्डरीमैन (सीमा-रक्षक) गांव की हद-बन्दी बनाए रखने के लिए जिम्मेदार होता है और झगड़े की हालत में वह उसके बारे में अपनी गवाही देता है। तालाबों और जल-व्यवस्था का सुपरिटेंडेंट कृषि के लिए पानी का समुचित वितरण करता है। ब्राह्मण गांव की पूजा के कृत्य संचालित करता है। स्कूल-मास्टर गांव के बच्चों को शिक्षा-

पढ़ना सिखाता है। कैलण्डर ब्राह्मण या ज्योतिषि फसल बोने और काटने के शुभ तथा अशुभ अवसरों की घोषणा करता है। लुहार तथा बढ़ई खेती के औजारों का निर्माण करते हैं और रैयतों के घर बनाते हैं। कुम्हार, धोबी नाई, पशुओं की देख-भाल करने वाला ग्वाला डाक्टर, उत्सवों-समारोहों में सम्मिलित होने वाली नर्तकी संगीतकार और कवि—ये अधिकारी और सेवक सामान्यतया ग्राम की व्यवस्था-संचालन और प्रशासन के लिये होते हैं, परन्तु देश के कुछ भागों में इनकी संख्या थोड़ी होती है। ऊपर बताये गये कर्तव्य और कृत्य कई स्थानों पर एक ही व्यक्तियों को करने पड़ते हैं और दूसरे स्थानों में उपरिवर्णित व्यक्तियों की संख्या में कुछ वृद्धि हो जाती है।

इस सादे नगरपालिका प्रशासन के अधीन हमारे देश के निवासी बड़े लम्बे अरसे से रहते चले आये हैं और यद्यपि युद्ध अकाल और बीमारी के कारण कभी-कभी ग्रामों को क्षति पहुंची है और वे निर्जन भी हो गये हैं तथापि वही नाम, वही सीमाएं, वही स्वार्थ और वही परिवार कई पीढ़ियों तक चले आये हैं। साम्राज्यों के पतन और उनके खण्डों में विभक्त होने की ग्रामवासियों को कोई चिन्ता नहीं है। जब कि ग्राम संपूर्ण रूप से एक और संगठित रहता है, ग्रामवासियों को इस बात की चिन्ता नहीं कि कौन-सी नयी शक्ति या कौन-सा नया राजा वहां आता है। इसकी आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था सर्वथा अपरिवर्तित रहती है। पटेल अब भी गांव का मुखिया है और अब भी वह एक छोटे जज और मैजिस्ट्रेट तथा कलेक्टर के रूप में कार्य करता है।

मन्दिरों, स्थानीय अधिकारियों और ग्राम-सेवकों के लिए कुछ भूमि-खंड अलग से दे दिये जाते थे और सरकार तथा किसान में फसल के बंटवारे के समय गांव की फसलों में से उनके लिए भी थोड़ा-सा निश्चित अंश पृथक् रखा जाता था। वृद्धावस्था या दुर्बलता के कारण सेवा-निवृत्त हुए सरकारी सेवकों के भरण-पोषण का भी प्रबन्ध किया जाता था। कई प्रकार के राजस्व अधिकारियों और ग्राम-सेवकों को दी जाने वाली धन-राशि का औसत स्वदेश में लगायी गयी पूंजी और सामुद्रिक या भूमि-संबंधी शुल्क था।

हिन्दुस्तान में १८ प्रकार के कारीगर हैं। पारसियों में १२ प्रकार के कारीगर हैं और अग्नियों की संख्या १३ है—१२ अग्नियां तो १२ कला-कौशलों से संबंध रखती हैं और १३वीं अग्नि स्वाभाविक अग्नि है जिसे पारसी प्रवासी हजार साल पहले भारत में लाये थे। ये १२ कारीगर इस प्रकार हैं

१ बढ़ई, २ लुहार, ३ रजतकार (चांदी के आभूषण बनाने वाला) ४ स्वर्णकार (सुनार) ५ कुम्हार, ६ नट ७. धोबी ८ रंगरेज ९. कताई करने वाला १ दर्जी

११ ओवरा १२ किसान १३ पुजारी १४ वैद्य १५ नाई, १६ मन्दिर की सामग्री संभालने वाला अधिकारी १७ पेन्टर, १८ राज १९ करनम २० मुन्सिफ, २१ व्यापारी २२ ताड़ी खींचने वाला २३ ज्योतिषी २४ कसबैया २५ मंत्री २६ नर्तक २७ गायक २८ बुनकर, २९ प्रहरी (पहरेदार) ३० जल-निर्वाहक ३१ पहलवान ३२ जादूगर।

## हमारे ग्रामों की एक झांकी

आओ, थोड़ी देर के लिए अपना ध्यान गांवों की ओर केन्द्रित करें और उनके भूत तथा वर्तमान का अध्ययन करें। अभी तक भारतीय ग्राम एक संगठित इकाई था और अब भी एक अर्थ में यह संगठित ही है। कुछ शताब्दियों पहले जिस सीमा तक ग्राम का सामा उत्पादन और साझे हित थे उस सीमा तक तो वे अब नहीं रहे परन्तु हमारा भारतीय ग्राम अब भी राष्ट्रीयता की आत्म-पूर्ण और आत्म-निर्भर इकाई है और अगर भारतीय राष्ट्र को अपने व्यक्तित्व तथा संगठन को कायम रखना है तो उसे इन गुणों को सुरक्षित रखना होगा। भारतीय ग्राम को हम एक छोटी-सी सृष्टि के नाम से संबोधित कर सकते हैं जिसकी अधिकांश आवश्यकताएं अपने यहां ही पूरी हो जाती हैं। गांव का अपना ही बढ़ई, कुम्हार और राज तथा सुनार, मोची और किसान नाई और मछियारा व्यापारी और महाजन कसबैया और बुनकर, पुजारी और वैद्य होता है। अगर थोड़े समय के लिए गांव दूसरों से अलग भी हो जाय तब भी इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। भोजन और वस्त्र जो मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताएं हैं पहले ही गाव में मौजूद हैं। दूसरे ग्रामों के साथ सम्पर्क तो सामाजिक सुख-सुविधाओं के लिए होता है। कसबों के साथ संपर्क से तो केवल गांव का धन वकील डाक्टर और कमीशन एजेंट के जरिये कसबों में खिंच कर चला गया है और कसबों से धन का प्रवाह शहरों की ओर हुआ है और शहरों से इसका प्रवाह समुद्र-पार के महाद्वीपों की ओर। प्राचीन काल में भी हमारे देश में शहर होते थे परन्तु वे भारतीय कलात्मक वस्तुओं के संग्रहालय थे और वे वस्तुएं विश्व के कोने-कोने में जाती थीं। हमने विश्व को अपनी सर्वोत्तम वस्तुएं प्रदान कीं परन्तु हम अपनी भोजन और वस्त्र की आधारभूत आवश्यकताओं के लिए कभी भी बाह्य विश्व पर निर्भर नहीं रहे। शोक ! अब तो वस्तुओं का रूप ही बिल्कुल बदल गया है।

हमारे देश में जो नवीन परिवर्तन हुए उनके पीछे भारतीयों के दिल और दिमाग पर काबू पाने के लिए अंग्रेजों के मूक और अदृश्य प्रयत्न थे। सन् '५७ के भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की असफलता के बाद अंग्रेजों को यह पूर्ण निश्चय हो गया था कि यह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए भारतीयों का अंतिम प्रयत्न नहीं है। इसलिए स्वतन्त्रता-संग्राम के अगले ही वर्ष अर्थात् सन १८५८ में उन्होंने बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में विश्व विद्यालयों की स्थापना की। १८६ में उच्च न्यायालयों की स्थापना की गयी और १८६१

में व्यवस्थापिका सभाओं की। कालेजों कचहरियों और कौंसिलों—इन तीन संस्थाओं ने जनता का ध्यान आकर्षित करना शुरू किया और उन्होंने भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व को एक प्रकार से गारन्टी-सी दे दी। अंग्रेजी भाषा का प्रचार होने लगा। सारी शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से दी जाने लगी और सब परीक्षाएं भी अंग्रेजी में होने लगीं। अफसरों ने भी सब काम-काज अंग्रेजी में ही प्रारंभ कर दिया। कचहरियों का इन्साफ भी अंग्रेजी में होने लगा। इस देश में अंग्रेजी कानून प्रचलित किया गया। यद्यपि वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षों के वकील न्यायाधीश और जूरी तथा गवाह सभी गुजराती या तेलुगू होते थे परन्तु फिर भी गवाहों से पूछताछ एक अनुवादक के जरिये अंग्रेजी में की जाती थी और फैसले भी अंग्रेजी में किए जाते थे। अदालतों में शपथ तो सत्य पूर्ण सत्य बोलने की ली जाती है परन्तु यह झूठ और बिलकुल सफेद झूठ बोलने के लिये खुली छुट्टी होती है। अपराध और लड़ाई-झगड़े के स्थानों से दूर-स्थित कचहरियों को लोग जुआ-घर समझते हैं जहां झूठ बोल कर बेदाग बच निकलने की खुली छुट्टी है। इन कचहरियों में मानवीय अनुभव के तथ्यों वास्तविक जीवन के दैनिक निरीक्षणों से साफ इन्कार कर दिया जाता है और कभी न खत्म होने वाली अपीलों के कारण कचहरियों की कार्रवाइयां भी एक प्रकार का जुआ बन जाती हैं। मुकदमेबाजों की एक नयी जमात पैदा हो गयी है जिसका पेशा ही मुकदमेबाजी को उकसाना और उसके लिए आन्दोलन करना है। मुकदमेबाजी तो एक झगड़े की भावना व युद्ध का रूप धारण कर चुकी है जिसके परिणाम सीधे शस्त्र-युद्ध से भी अधिक खतरनाक हैं। मुकदमेबाजी का मतलब है अमीरों द्वारा गरीबों का धीमे-धीमे शोषण। हमें स्वतन्त्र भारत में इस सबको बदलना है। पंचायतों की स्थापना से इस दिशा में अवश्य सुधार होगा। ग्राम-पंचायत को सफाई, सहकारिता और न्याय के प्रशासन का निरीक्षण करने के लिए हमेशा समर्थ होना चाहिए। इसे जंगलात और सिंचाई के साधनों की भी देखभाल करनी होगी। इसे एक पुस्तकालय भी चलाना चाहिए और ग्राम के उद्योग-धन्धों को पुनरुज्जीवित करने में प्रयत्नशील होना चाहिए। इसे एक सहकारी भंडार की स्थापना करनी चाहिए। पंचायत का रूप तो एक बहुउद्देश्यीय समाज का है जिसे विभिन्न जनोपकारी कृत्यों का सम्पादन करना है। ऐसा संभव है कि एक पंचायत इन सब कामों को इकट्ठे एक दम न कर सके। उस हालत में एक से अधिक पंचायतों की स्थापना करनी पड़ेगी। किसी भी हालत में जहां तक न्यायिक कृत्यों का संबंध है साधारणतया सरकारी वकील के सर्टिफिकेट के बिना ऊपर की कचहरियों में अपीलों की इजाजत नहीं होनी चाहिए।

## ग्राम पंचायत

पंचायतों के संगठन के बारे में एक आपत्ति यह की जाती है कि गांव के लोग मूर्ख होते हैं और उनमें दलबन्दी की भावना पाई जाती है। यह सच है कि गांवों में फूट-फरेब

बहुत है परन्तु इसका मूल कारण आज की न्याय-व्यवस्था और कचहरियाँ हैं। वकील का पेशा एकता स्थापित करना नहीं अपितु फूट डालना है। कचहरी का उद्देश्य न्याय का प्रशासन करना नहीं अपितु केवल कानून का प्रयोग करना है। न्याय सर्वप्रिय हो इसके लिए जरूरी है कि वह जल्दी किया जाय सस्ता और निश्चित हो। यह सब तो पंचायत के द्वारा ही संभव है। मजिस्ट्रेटों की कचहरियों और फौजदारी दावा दायर करने की संभावनाओं ने ही दीवानी और फौजदारी मुकदमेबाजी को बढ़ावा दिया है और उसे अत्याचार और पीड़न का साधन बना दिया है। जब कानून की रिपोर्टों को जला दिया जायगा केस-लॉ को छोड़ दिया जायगा और अपीलें बिल्कुल सीमित हो जायेंगी तब एक नये युग का प्रादुर्भाव होगा। उस समय उच्चारित शब्द की सत्यता पर कोई सन्देह नहीं करेंगे अपराध और झगड़े का फैसला जाने वर्तन के लगभग एक-सी स्थिति के लोग परस्पर मिल बैठ कर कर लेंगे बड़े-बूढ़े बिना किसी तकलीफ के गवाही दे सकेंगे और सारे ग्राम की सार्वजनिक सम्मति इतनी प्रभावशाली होगी कि झूठ-फरेब और मक्कारी का नामो-निशां ही गांव से मिट जायगा। झूठ से ही मुकदमेबाजी को बढ़ावा मिलता है और जब झूठ पर काबू पा लिया जाता है तो मुकदमेबाजी खत्म हो जाती है। केवल पंचायत ही इस काम को कर सकती है। इस संक्रमण-काल में हमें अपने ग्रामोत्थानों के संगठन में राष्ट्रीय शिक्षा के आयोजन में और हरिजन आंदोलन के संबंध में उलट-फेर का सामना करना पड़ेगा यह सब अनिवार्य है।

हमें भारत राष्ट्र का निर्माण करना होगा। प्रत्येक विभाग का फिर से संगठन करना पड़ेगा। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष पर पुनः दृष्टिपात करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा पर हमने एक अलग अध्याय में प्रकाश डाला है। प्रोफेसरों जजों और प्रशासकों में परिवर्तन या मंत्रालय में परिवर्तन-मात्र से हमारे राष्ट्र का नव-निर्माण नहीं होगा। यह तो हृदय का परिवर्तन है यह हमारे उद्देश्य का परिवर्तन है यह हमारे दृष्टिकोण का परिवर्तन है जो हमारे राष्ट्र को नव-निर्माण के प्रशस्त पथ पर अग्रसर करेगा और भारतीय ग्रामों को फिर से आत्म-निर्भर बनायेगा। गांधीवाद का यही लक्ष्य है।

## विरोधी दृष्टिबिन्दु

अब हमें यह खोज करनी है कि क्या हमारे पूर्वज केवल गांवों में ही रहते थे। ऐसा कहा जाता है कि ऐतिहासिक साक्ष्य इसके विरुद्ध हैं। कुछ लोग निश्चित रूप से शहरों का ह्रास नहीं चाहते अपितु इसके विरुद्ध वे यह चाहते हैं कि गांवों का विकास होकर वे शहरों का रूप धारण कर लें। वे निस्संदेह यह स्वीकार करते हैं कि शहरों में अधिक घनी आबादी धूल धुंआ और व्यापार होता है और इसमें भी शक की कोई गुंजायश नहीं कि गांव वालों को बिना धन का लालच दिये और बिना शहरों में जाने की आकांक्षा दिये गांवों में ही

...ी। मानव जीवन

की यह आदर्श अवस्था नहीं है। यह तो अभाव के कारण उत्पन्न होने वाला आलस्य है।

वे पूछते हैं कि ऐसा गांव किस प्रकार आत्म-रक्षा—चाहे वह विदेशी शक्तियों से आत्म रक्षा हो चाहे आन्तरिक अव्यवस्था से—कर सकेगा। उनका ऐसा मत है कि गांवों को विकसित होकर शहरों का रूप धारण करना ही चाहिए। हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि भारत के प्राचीन शासक केवल ग्रामों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते थे। यह सच है कि हमारा देश एक 'ग्राम-प्रधान देश' है परन्तु प्राचीन काल में हमारे गांव भी अनेक प्रकार की कलात्मक वस्तुएं शहरों को निर्यात किया करते थे। हम यह स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार यह कहना गलत है कि हमारे देश में केवल साधु या संन्यासी बसते हैं उसी प्रकार यह कहना भी गलत है कि हमारा देश गांवों का देश है शहरों का नहीं। ऋषि लोग जंगलों में अपने आश्रम बनाते थे इससे गांवों की महत्ता सिद्ध नहीं होती। प्राचीन काल में चार पत्तन और शहर थे। परन्तु वह कहते हैं कि संस्कृति या संस्कार के सूचक नागरिक शब्द के मुकाबले में ग्राम्य शब्द परिभाषा विषम का है यह सिद्ध नहीं होता कि सभ्यता या संस्कृति की दृष्टि से शहर का दर्जा गांव के दर्जे से बढ़कर था। ऐसा हो सकता है कि शहरों के बाह्य-आडम्बर और भ्रष्टाचार का ग्रामों में अभाव हो। इन लोगों का यह भी कहना है कि शहरों की बुराइयों को देखते हुए गांवों से स्नेह स्वाभाविक हो सकता है। प्रकृति-पूजा और शान्त-सरलता की ओर वापस लौटने वाले रूसो की तरह वे कहते हैं कि हम चाहे जब ही भूत की ओर लौट चलें परन्तु इससे हमारे सामने एक सुन्दर दृश्य उपस्थित होता है, यद्यपि निपुणता में हमें इससे अवश्य कुछ सहायता मिल सकती है। इससे हमें प्रकृति के सौंदर्य को एक ऋषि की आंखों से देखने में सहायता मिल सकती है। परन्तु क्या वस्तुतः गांवों की ओर दृष्टिपात करने से हमें स्पष्टतः उस गंभीर और असह्य अन्याय के दर्शन नहीं होते जो हमने उनके साथ किया है और जिसके परिणामस्वरूप भारतीय ग्रामों का ढांचा बह गया है। इस पहलू की ओर ध्यान आकर्षित करके हमें गांवों से अन्धकार दूर करने में सहायता मिलेगी। ग्राम का समर्थन करने में हम शहर का अस्तित्व नहीं मिटाना चाहते क्योंकि उस हालत में हम सिर को काट चुके होंगे और केवल अपने पैरों पर खड़े हो रहे होंगे। वास्तव में स्वस्थ और समृद्ध ग्राम तो शहरों का पोषण करते हैं और शहर केवल ग्राम की वस्तुओं को बेचने के लिए सहायक मात्र नहीं होते अपितु देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत नगर-निवासी जो कि वास्तव में देश का हित-साधन करना चाहते हैं गांव वालों का खून नहीं चूसते। वे तो अपनी अत्यन्त समृद्ध दशा से गांव वालों को भी फायदा पहुंचाते हैं। इस समय शहरों का दोष यही है कि वे विदेशी वस्तुओं का आयात ग्रामों के लिए करते हैं परन्तु होना यह चाहिए कि ग्राम की कलात्मक वस्तुओं से शहरों के बाजार सुशोभित हों। शहर को देश के गृहोद्योगों के छोटे-छोटे कल-कारखानों में बनी हुई वस्तुओं का वितरण-केन्द्र होना चाहिए।

अब यह सामान्यतया स्वीकार किया जाने लगा है कि सामाजिक समस्याओं को यों ही समय-प्रवाह के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। इन समस्याओं का भली प्रकार अध्ययन करना चाहिए और इनके समाधानों की पूरी योजना बनानी चाहिए बेहतर तो यही है कि यह योजना सहकारी सिद्धान्तों के आधार पर बनायी जाय ताकि हमारे पारस्परिक संबंधों का आधार केवल प्रबल और शुभ भावना हो। किसी काम को जबर्दस्ती कराने का तत्त्व संगठन की प्रारंभिक अवस्थाओं में भले ही उचित और आवश्यक प्रतीत हो परन्तु उसका उस समय लोप हो जाता है जबकि समय आने पर वांछित रूप से किया जाने वाला कार्य स्वाभाविक और अन्तःप्रेरणा से होने लगता है जैसे कि बच्चे के स्वाभाविक चलने की प्रक्रिया में होता है। इस प्रकार हमारी संयुक्त परिवार की प्रणाली एक सहकारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है जाति एक सहकारी संघ का रूप धारण कर चुकी है ग्राम ने एक सहकारी उप-नगर का रूप ले लिया है जिसका निर्माण सब के संगठन और परिश्रम से हुआ है व्यापार वस्तु-विनिमय पर आधारित हुआ है और पारस्परिक शुभ-कामना के कारण शांति का वातावरण तैयार हुआ है।

ग्राम का पुनर्निर्माण तो ग्राम की समृद्धि में सन्निहित है न कि ग्रामीणों द्वारा नगर निवासियों की नकल करने में। कचहरियों और कालिजों द्वारा यह सम्पर्क स्थापित होता है। हमें उन्हें फिर से नये सांचे में ढालना होगा। जैसे हमने ग्रामों में राजनीति का प्रवेश कराया है वैसे ही न्याय शांति और उद्योग-धन्धों का भी ग्रामों में ले जाना होगा। हमारे ग्राम फिर से विचार और क्रियाशीलता के केन्द्र बनेंगे।

## १
## आत्म-पूर्णता

आत्म-पूर्णता के आदर्श को भली-भांति समझने के लिए हमारे लिए यह जरूरी है कि हम हिन्दू समाज के ढांचे और इतिहास का अध्ययन करें और यह देखें कि समाज के प्रत्येक सदस्य को भोजन तथा वस्त्र की गारन्टी देने वाली समाज-व्यवस्था को किस निर्ममता से छिन्न-भिन्न किया गया है। आत्मपूर्णता और आत्म-निर्भरता की बातें करना एक फैशन-सा हो गया है परन्तु हम यह जरा भी अनुभव नहीं करते कि यह आत्मपूर्णता ही शताब्दियों से भारतीय समाज का आधार रही है और ग्राम हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक इकाई था और ग्राम भी कैसा—जिसमें जीवन को सुखी समृद्ध एवं आनन्दित बनाने वाले सब कारबार और पेशे सम्मिलित थे। जीवन के लिए उपयोगी और सुन्दर सब कलात्मक वस्तुएं ग्रामों में ही तैयार की जाती थीं। परन्तु इस प्रकार के ग्राम और उनकी कलात्मक वस्तुएं, ग्राम के हर व्यक्ति को काम पर लगाने के साधन और जीवन की प्रारंभिक एवं आवश्यक वस्तुएं सबको मुहय्या करने की व्यवस्था पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से नष्ट हो चुकी है। संसार में विरोधी

दस्तरों का इस्तेमाल करने वाले गांव के नाई और विदेशी औजारों का प्रयोग करने वाले गांव के बढ़ई ने गांव के लुहार के काम को चौपट कर दिया है। मिलों का बना कपड़ा पहनने वाले लुहार ने जुलाहे की कारीगरी को नुकसान पहुंचाया है। शहर के बने हुए जूते पहनने वाले जुलाहे ने गांव के मोची का कारबार ठप्प कर दिया है और चीनी के बर्तन प्रयोग में करने वाले मोची ने कुम्हार के काम को धक्का पहुंचाया है तथा आलमारी में कपड़े धुलवाने वाले कुम्हार ने धोबी को कहीं का नहीं रक्खा। इस प्रकार हर कोई अपने पड़ोसी की आजीविका के साधन को नष्ट करने पर तुला हुआ है और परिणामतः सारे ग्राम का नाश हो जाता है और जब ग्राम का नाश हो जाता है तो शहरी या ग्रामीण कोई भी आत्म-पूर्णता नहीं हो सकती केवल राष्ट्रीय असमता और बेकारी ही चारों ओर दिखायी देती है और हमारे सम्मुख अनेकों समस्याएं—आज के समाजवादी की समस्याएं और वे समस्याएं जिन्होंने पश्चिम में उद्योग-धन्धों और सैनिकवाद के बढ़ने के साथ-साथ बड़ा उग्र एवं असमाधेय रूप धारण कर लिया है और जिनके परिणामस्वरूप विश्व में गत दो भीषण महायुद्ध हुए—आ उपस्थित होती हैं। इस प्रकार हम देखेंगे कि सामुदायिक कल्याण और सामान्य सुख जो कभी हिन्दू समाज के आधार थे का स्थान वैयक्तिक जड़ोजहद, पारस्परिक प्रतियोगिता और राष्ट्रीय चरित्र का पतन करने वाले निरन्तर संघर्ष ने ले लिया है।

प्राचीन भारत में एक ऐसा सामाजिक संगठन था जिसमें देश का हर एक क्षेत्र हर एक ग्राम आत्म-निर्भर और आत्म-पूर्ण था। पश्चिमी उद्योगवाद के प्रभाव से ऐसा संगठन छिन्न-भिन्न हो चुका है। पश्चिमी उद्योगवाद बड़े पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन तथा प्रतियोगी कीमतों पर आधारित है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रतियोगी औद्योगिक राष्ट्रों के बीच में विश्व के बाजार झगड़े की जड़ हैं। गत दो महायुद्धों का कारण यही था। पश्चिमी औद्योगिक राष्ट्रों के सब बाजार पूर्वी देशों में स्थित हैं। पूर्व अब जाग गया है और पूर्व के देश एक एक करके गुलामी की जंजीरों को तोड़ते चले जा रहे हैं। पूर्वी राष्ट्रों ने विदेशी वस्तुओं के अपने देशों के बाजारों में आने के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रकट की है। उसके दो परिणाम अवश्यम्भावी हैं पूर्वी राष्ट्रों को अपने उत्पादन का विस्तार और अपनी आवश्यकताओं को कम करना होगा तथा पश्चिमी राष्ट्रों को निर्मित वस्तुओं की न्यूनता और भोज्य पदार्थों तथा कच्चे माल की पूर्ति का विस्तार करना होगा। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के निकट आयेंगे अब तो वे विरुद्ध दिशाओं में जा रहे हैं। पूर्व को पश्चिम के सामने अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। पश्चिम वाले अपने कटु अनुभवों के बिना नहीं सीख पायेंगे। पश्चिम कटु अनुभवों की अवस्था में से अब गुजर रहा है और उसने सीखना प्रारम्भ कर दिया है। जब आधारभूत तत्त्वों को ग्रहण कर लिया जाता है तो उनके विस्तार को कार्यरूप में परिणत करने के निमित्त विलम्ब में कोई तुक नहीं दिखायी

देती। भारत में इस कार्य का संचालन देश के महान् राष्ट्रीय संगठन कांग्रेस द्वारा किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आरम्भ तो उस समय हो गया था जब कांग्रेस ने खादी के कार्यक्रम का श्रीगणेश किया। स्वदेशी वस्त्रों ने हमारे देश के बाजारों से विदेशी वस्त्रों को लगभग खत्म ही कर दिया है। जाग्रत राष्ट्रीय चेतना वस्तुतः एक जाग्रत अन्तरात्मा होती है और यह कानूनों शुल्क-सूचियों निषेधाज्ञाओं, सीमा-शुल्कों और उन मुद्राओं से जिनका मूल्य-ह्रास हो चुका है अधिक शक्तिशालिनी होती है। ग्रामोद्योगों में खद्दर सबसे मुख्य है। इस उद्योग ने अपना काम संपन्न कर दिया है परन्तु राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूत के रूप में इसे दूसरे ग्रामोद्योगों की भी सहायता करनी चाहिए ताकि वे भी अपना सिर ऊंचा उठा सकें। इसी काम का बीड़ा कांग्रेस के आदेश पर महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ के माध्यम से उठाया था।

तीसरा अध्याय

# आर्थिक उत्थान

## खद्दर

शायद लोग इस प्रारंभिक तथ्य से परिचित नहीं हैं कि एक जमाना वह भी था जब हमारे देश की कपड़े की आवश्यकताएं पूर्णतः हमारे अपने ही देश में काते और बुने हुए वस्त्रों से पूरी हो जाती थीं। वे यह भी अनुभव नहीं करते कि ईस्ट इंडिया कंपनी का हमारे देश में आगमन का उद्देश्य समुद्र-तटवर्ती नगरों में बने हुए कपड़े को इकट्ठा करना था। इन नगरों में कम्पनी ने 'फैक्ट्रियां' खोल रखी थीं जिसका अभिप्राय 'डिपो' या 'गोदामों' से था क्योंकि उस समय आधुनिक अर्थों में इंजन या फैक्ट्रियां नहीं होती थी। सन् १६१२ में वाष्प-शक्ति का आविष्कार नहीं हुआ था। सारा कपड़ा इन डिपुओं और गोदामों में इकट्ठा करके व्यापार के लिए इंग्लैंड ले जाया जाता था और जो कपड़ा वहां बिक्री से बच रहता था वह दूसरे देशों में बिक्री के लिए भेजा जाता था। अंग्रेज व्यापारी इस देश से आयात किए वस्त्रों पर लगभग ३    प्रतिशत का मुनाफा कमाते थे और यह कपड़ा जो कभी इंग्लैंड के धनी घरानों के फर्शों पर बिछाया जाता था इतना अधिक लोकप्रिय हो गया कि उसे महारानियां पहनने लगीं और इस प्रकार लोग ईस्ट इंडिया कम्पनी का मजाक उड़ाने लगे जिसने इंग्लैंड की धनी राष्ट्रीय वस्तुओं की कारीगरी को धक्का पहुंचाया। बाद में जब मुर्शिदाबादी रेशम को अंग्रेज सभ्य समाज में बहुत पसन्द किया जाने लगा और समाज के उच्च वर्ग के धनीमानी प्रतिष्ठित लोग भारतीय रेशम के सूट पहनने लगे तो डेनियल डिफो ने उनकी यह कह कर भर्त्सना की कि अंग्रेज लोग अपने ही देश में मुर्शिदाबादी रेशम के सूट पहिन कर इठलाते फिर रहे हैं और वे यह नहीं जानते कि इससे वे अपने देश के व्यापार को कितना नुकसान पहुँचा रहे हैं।

यह तथ्य सर्वविदित है कि सन् १७    में एक कानून पास किया गया था जिसके अनुसार भारतीय रेशम पहिनने वाले हर अंग्रेज पर ५ पौण्ड का जुर्माना किया जाता था। १७१९ में एक ऐसा कानून पास किया गया जिसके अनुसार भारतीय रेशम बेचने वाले हर अंग्रेज पर २५ पौंड का जुर्माना किया जाता था। वे यहां ही नहीं रुके उन्होंने एक ऐसा कानून भी पास किया जिसके अनुसार मृत व्यक्ति के शव   ऊन के अलावा किसी दूसरे कपड़े से लपेटने पर ५ पौण्ड का जुर्माना देना पड़ता था। उन्होंने इंग्लैंड में भारतीय रेशम के आयात को रोकने के लिए उस पर टैक्स लगा दिये। इस प्रकार इंग्लैंड वालों ने विदेशी वस्त्र से अपने देश की रक्षा की और इसी बीच सन् १७८१ में वाष्प के इंजन का आविष्कार हुआ और कातने

तथा बुनने में वाष्प का उपयोग किया जाने लगा। इसके बड़े आश्चर्यजनक और प्रभावी परिणाम निकले जो आज तक सरकार की कर-नीति के कारण भी नहीं निकले थे।

इंग्लैंड में सूती कपड़े का निर्माण तेजी से बढ़ने लगा क्योंकि मिलों की उत्पादन-क्षमता तो गजों में न होकर गांठों में होती है। इन मशीनों की तुलना तो दैत्यों से की जा सकती है जिनका भोजन सेरों और तोलों में न होकर मनों और टनों में होता है। पहली बार हिन्दुस्तान में सन् १८ १ में ३ लाख रुपये के मूल्य का कपड़ा मंगाया गया १८२९ में यही धनराशि बढ़कर २९ लाख रुपये हो गयी और १९२९ में ६६ करोड़ रुपये का कपड़ा तथा ६ करोड़ रुपये का सूत आयात किया गया। इस प्रकार हमारा देश लंकाशायर और अन्य दलों के व्यापार के लिये एक अच्छी खासी मंडी बन गया। जब तक हमारे देश में अंग्रेजों का शासन रहा यह शासन कानून और व्यवस्था भू-राजस्व प्रणाली और विश्व-विद्यालय शिक्षा-पद्धति या कचहरियों कालेजों और कौंसिलों या बनीमानी कुलीन वर्ग के सहारे ही स्थापित नहीं रहा अपितु लंकाशायर और उसके बिजली से चलने वाले सूती कपड़े के कल-कारखानों के बल पर यह शासन कायम रहा।

भारतीय वस्त्र उद्योग को राष्ट्रीय आर्थिक सहायता देने का प्रस्ताव कांग्रेस के *माडरेटों ने भी किया जो १९ ८ से १९१९ तक कांग्रेस में अत्यन्त प्रभावशाली थे।* कांग्रेस और आल इंडिया स्पिनर्स एसोसियेशन जो कि खद्दर के निर्माण तथा वितरण के लिए कांग्रेस द्वारा मान्यता प्राप्त संस्था है एक कदम और भी आगे बढ़े और उन्होंने हाथ से कते सूत तथा इस उद्योग के विकास के लिए कुछ निश्चित आधारभूत नियमों की मांग की। उन्होंने खद्दर की परिभाषा करते हुए कहा कि किसी कपड़े को खद्दर का नाम देने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वह हाथ से काता और हाथ से बुना जाय अपितु इसके निर्माण में लगे हुए हरेक कारीगर—रुई साफ करने वाले कातने वाले बुनने वाले छापने वाले रंगने वाले या रंग चढ़ाने वाले—को निर्धारित मजदूरी मिलनी चाहिए। इसलिए खद्दर की कानूनी परिभाषा चाहे कोई भी हो, इसकी राजनीतिक परिभाषा जो कि आर्थिक परिभाषा भी है यही है कि खद्दर एक ऐसा कपड़ा है जो ऐसे कारीगरों द्वारा तैयार किया गया है जिन्हें आल इंडिया स्पिनर्स एसोसियेशन द्वारा निर्धारित वेतन मिलता है। इसीलिए जनता को प्रमाणित दुकानों से ही खद्दर खरीदने के लिये कहा जाता है।

## चर्खा एक यन्त्र

इस यन्त्र युग में इस पुराने गृहोद्योग के पुनरुज्जीवन पर एक सामान्य आलोचना यह की जाती है कि यह प्रगति रूपी घड़ी की सुई को पीछे कर देता है परन्तु जैसा कि प्रेम महोदय ने ठीक ही कहा है कि यह इस प्रकार का कोई कार्य नहीं करता अपितु यह घड़ी को फिर से चालू कर देता है। चर्खा तो स्वयं एक छोटी-सी मशीन है जो हर घर के दरवाजे पर

ले जायी जा सकती है। बार्कर महोदय के शब्दों में भारत में समस्या तो यह है कि "क्या हम उद्योग को ग्रामवासी के निकट ले जायें या फिर ग्रामवासी को उद्योग के निकट ले जायें।" ग्रामवासी को उद्योग के समीप ले जाने का अभिप्राय है कारखानों का घम उद्योग को ग्रामवासी के समीप ले जाने का अर्थ है चर्खा। किसी राष्ट्र को केवल धनी ही नहीं वस्तुतः शक्तिशाली बनाने वाली दौलत है उस राष्ट्र के श्रमिकों के उद्योग शिक्षा और कल्याण के लिए अवसर उपलब्ध कराना। देश तो वस्तुतः गरीबों का है जैसा कि हम देखते हैं हर देश में अधिकांश जनता गरीब ही होती है। यही गांधीजी के प्रचार का सार है। उन्होंने राष्ट्र को यह प्रेरणा प्रदान की है कि वे इस भ्रम में न रहें कि अधिकार किसी प्रकार भी जाति या रंग पर निर्भर करता है आन्तरिक गुणों पर नहीं। मुख्य बात तो यह है कि स्वतन्त्रता के लिए मनुष्यों को योग्य सिद्ध करने का एकमात्र तरीका उन्हें स्वतन्त्र करना है और उन्हें राजनीतिक शक्ति के प्रयोग सिखाने का उपाय उन्हें राजनीतिक शक्ति सौंपना है। वस्तुतः गांधीजी का यह दृढ़ विश्वास है कि स्वतन्त्रता तथा समता किसी व्यक्ति या राष्ट्र को दान में नहीं दिये जा सकते। अगर वे समता और स्वतन्त्रता के पात्र हैं तो उन्हें यह भगवान् द्वारा प्राप्त होगी उन पर अत्याचार करने वालों या उनके विरोधियों से नहीं। अर्नेस्ट बार्कर के शब्दों में "गांधीजी का चर्खा तो देश की आधारभूत पारिवारिक आवश्यकताओं को समझने के लिए प्रतीक-मात्र है। वैम महोदय की गणना के अनुसार, जहां तक लाखों परिवारों का संबंध है, चर्खे और हाथकरघे द्वारा रहन-सहन के कुल खर्चे के [illegible] वें हिस्से से लेकर [illegible] वें हिस्से तक पूर्ति की जा सकती है। हमारे देश में खेतों और गांवों में काम करने वाली एक-तिहाई जनता को लगभग एक-तिहाई या आधे वर्ष भर बेकार रहना पड़ता है। गांधीजी ने सभ्य वैज्ञानिक और मस्त-सूचक विश्व को यह चुनौती दी है कि वह इन अलभिज्ञ लोगों की आमदनी के लिए कोई दूसरा जरिया खोज निकाले। जब तक गांधीजी की इस चुनौती का कोई जवाब नहीं दिया जाता उनके अपने युग के सबसे बड़े अर्थशास्त्री होने के दावे को नहीं झुठलाया जा सकता। गांधीजी को हम मिथ्याविश्वासी और प्राचीन अनुसरणवादी नहीं कह सकते और न ही उन पर पश्चिमी विज्ञान से घृणा करने का दोषारोपण कर सकते हैं। उन्हें विज्ञान के प्रति विशेष पक्षपात है और वे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करते ऐसी किसी भी चीज को स्वीकार नहीं करते और ऐसी किसी भी बात पर विश्वास नहीं करते जो उन्हें युक्तियुक्त और वैज्ञानिक प्रतीत न हो। वह बात की तह तक जाते हैं और किसी भी कल्पना या सिद्धान्त को उस अवस्था में सर्वथा अस्वीकृत कर देते हैं जब तक कि उससे उनके सब सन्देहों का समाधान न हो जाय और वह उनकी ज्ञान की कसौटी पर खरा न उतरे। घृणा से अवैज्ञानिक कह कर उपहास उड़ाये जाने वाले चर्खे के समर्थन में भी उनका यथार्थ और वैज्ञानिक दृष्टिबिन्दु है। उन्होंने चर्खे की बनावट और उत्पादन-क्षमता में इतनी रचना

को बिना जटिल बनाए कई विशेष सुधार किये हैं और ये सुधार कोई इतने पेचीदे और मंहगे नहीं हैं कि चर्खे की मरम्मत के लिए ग्रामवासी की पहुंच से बाहर हों। गांधीजी की वैज्ञानिक कार्यक्षमता और ठीक प्रकार से काम करने के प्रति आग्रह के प्रमाण के रूप में हम यरवदा चर्खे को ले सकते हैं। गांधीजी पर अवैज्ञानिक होने का जो दोषारोपण किया जाता है, उसका उत्तर देने के लिए हम ग्रैग महोदय की महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि को उन्हीं के शब्दों में नीचे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं।

> महात्माजी एक समाज-वैज्ञानिक हैं क्योंकि वे निरीक्षण, स्फुरणात्मक एवं बौद्धिक कल्पना तथा प्रयोगात्मक परीक्षा की वैज्ञानिक विधियों द्वारा सामाजिक सत्य का अनुसरण करते हैं। उन्होंने एक बार मुझे बताया कि वे पश्चिमी वैज्ञानिकों को बहुत पूर्ण नहीं समझते क्योंकि उनमें से अधिकांश वैज्ञानिक अपनी कल्पनाओं की अपने पर परीक्षा करने के लिए तैयार नहीं हैं। परन्तु वे अपनी कल्पना या अनुमान की सर्वप्रथम परीक्षा अपने ऊपर करते हैं, पूर्व इसके कि वे किसी दूसरे से उसकी परीक्षा करने के लिए कहें चाहे यह कल्पना भोजन, स्वच्छता, चर्खा, जाति सुधार संबंधी हो या सत्याग्रह की हो। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम भी सत्य के विषय में मेरे प्रयोग "My Experiments with Truth" रखा।
>
> वे कोरे वैज्ञानिक ही नहीं हैं; वे सामाजिक सत्य के क्षेत्र में महान् वैज्ञानिक हैं। वे महान् हैं—अपनी समस्याओं के चुनाव के कारण, उनके समाधान के विशिष्ट उपायों के कारण, अपनी खोज और लगन के कारण और मानव-हृदय के अपने यथार्थ ज्ञान के कारण। सामाजिक आविष्कारक के रूप में उनकी महत्ता इससे प्रदर्शित होती है कि उन्होंने संस्कृति और विचार-सरणियों के अनुकूल अपने तौर-तरीकों को बनाया है और जनता की भावना तथा उसके आर्थिक एवं तकनीकी साधनों के अनुकूल अपने कर्म करने के तरीकों को ढाला है। उनकी महत्ता उनके त्याज्य और संग्राह्य के विवेक से भी प्रदर्शित होती है। फिर उनकी महत्ता उस शीघ्रता से भी प्रदर्शित होती है, जिससे वे सुधारों को क्रियात्मक रूप देते और उन्हें आगे बढ़ाते हैं। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि प्रत्येक समाज में उसकी एक विशेष स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन होते हैं जिस प्रकार वे एक अवयवी में होते हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि गर्भ धारण करने की स्थिति में कुछ विशेष लम्बी प्रक्रियाओं के उपरान्त एकाएक जन्म की प्रक्रिया आती है तो दूसरे परिवर्तनों में कम से कम तीन पीढ़ियां लग जायेंगी पूर्व इसके कि पूर्ण परिवर्तन हो, पुरानी विरासत में मिली आदतों और धारणाओं को दूर फेंका जाय और उनके स्थान पर नई आदतें

और धारणाएं आईं। सामाजिक आविष्कार के क्षेत्र में उनकी महत्ता का दूसरा चिह्न यह है कि जब कभी वे किसी नये सामाजिक सुधार को जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं तो वे उस सुधार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए एक शक्तिशाली संगठन की स्थापना करते हैं। वे संगठन और प्रशासन की बारीकियों से भली भांति परिचित हैं। विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्यों के परिणामों ने उनकी महत्ता को सिद्ध कर दिया है।

गांधीजी के खद्दर और स्वदेशी के कार्यक्रम में भारत के लिए एक रचनात्मक और विध्यात्मक कार्यक्रम संनिहित है और इसमें वही भावना काम कर रही है जो अब्राहम लिंकन के स्वदेशी के अर्थशास्त्र पर अभिव्यक्त विचारों में थी, जब उसने कहा था "मुझे आयात-निर्यात की वस्तुओं पर शुल्क-छूटों के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है, परन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूं कि जब हम विदेशों से सामान खरीदते हैं तो हमें सामान मिल जाता है और विदेशियों को धन; परन्तु जब हम अपने देश की बनी हुई वस्तुएं खरीद करते हैं तो हमें सामान और धन दोनों वस्तुओं की प्राप्ति होती है।"

## रचनात्मक कार्यक्रम और सत्याग्रह

गांधीजी ने नवम्बर सन् '४ के सत्याग्रह संग्राम के समय रचनात्मक कार्यक्रम पर बहुत बल दिया था। उन्होंने उस समय इस ओर विशेष ध्यान दिया था कि विनोबा भावे या जवाहरलालजी की गिरफ्तारी को किसी प्रकार की अवज्ञा का संकेत न समझ लिया जाय। यह उनके घोषित निर्देशों के सर्वथा विरुद्ध होता और इसलिए इसे 'भाग' का विशेषण नहीं दिया जा सकता था। उन्होंने उस समय यह समझाया था कि जनता के लिये सर्वोत्तम मार्ग यह है कि वे रचनात्मक कार्य में उत्साह के साथ जुट जायें। हम हिन्दुस्तान के जिस भी जिले में जाते हैं ईस्ट इंडिया कम्पनी के दिनों से लेकर भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक का ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित प्राचीन इतिहास यही बताता है कि समस्त देशवासियों का तन ढंकने वाला और निर्यात किया जाने वाला खद्दर धीरे-धीरे इस देश से लुप्त हो गया है। सन् १८ १ और बाद के वर्षों में कोरिंगा कुमारपिरियतनम्, नीलपल्ली और अन्य बन्दरगाहों से १५ लाख रुपये वार्षिक का खद्दर विदेशों को निर्यात किया जाता था। सन् १८२९ तक यह निर्यात १५ लाख से घट कर १ लाख के रह गयी सन् १८७५ में २ लाख के और बाद के समय में शून्य तक। भारतीय ग्रामवासी इन तथ्यों से भली-भांति परिचित हैं। वे यह अच्छी प्रकार जानते हैं कि उनकी गरीबी का कारण इस विदेशी व्यापार का पतन और इसके स्थान पर विदेशों से उन वस्त्रों का आयात है, जिनको वे स्वयं कभी निर्यात किया करते थे। गुरु के प्रवाह की दिशा परिवर्तित हो गयी है। अपने निर्मल पानी

के साथ समुद्र के खारे पानी में मिलने वाली नदियों का जल खारा हो जाता है। ग्राम वासियों के पास ताजा जल पीने के लिये नहीं है। उन्हें विदेशी वस्त्र के रूप में खारा जल लेना पड़ता है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् वस्त्र उद्योग में रुई धुनने से लेकर उसके कातने और बुनने की हर प्रक्रिया के पुनरुज्जीवन के लिये देश में बड़ी प्रबल मांग है। हम जहां भी जाते हैं लोग हमसे महिलाओं के प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं प्रदान करने के लिए कहते हैं और जब तक ऐसे प्रशिक्षण का प्रबन्ध न हो, हमें हरिजन स्कूलों के बच्चों या दूसरे ग्रामवासी बेकार लड़कों को रुई साफ करने से लेकर कातने तक की शिक्षा देनी चाहिए और इस प्रकार वे कुछ द्रव्य भी उपार्जन कर सकेंगे। यह कोई साधारण बात नहीं है। हरिजन विद्यार्थी भी देश के हर भाग में सवर्ण विद्यार्थियों की उसी शिक्षा-पद्धति का अन्धानुकरण कर रहा है, जो पढ़े-लिखे सवर्णों में बेकारी को जन्म देती है। इस भय से कि कहीं सवर्ण हिन्दू हमारी सहानुभूति गलत न समझ लें हम उन्हें उसी निरुद्देश्य शिक्षा के मार्ग पर जाने दे रहे हैं, जो बेकारी की ओर ले जाता है। अब भी समय है कि हरिजन संघ के कार्यकर्ता अपने विचारों में परिवर्तन करें और लड़कों तथा लड़कियों को इस प्रकार की शिक्षा दें जिससे उन्हें रोजगार मिल सके। रोजगार के अतिरिक्त गांव के लोगों की आवश्यकताएं भी इससे पूरी हो जायेंगी।

शायद यह विरोधाभास मालूम दे परन्तु तथ्य यह है कि सभ्यता की वृद्धि और विकास अनिवार्य रूप से बेकारी के बढ़ाने में सहायक हो रहा है। ऐसा बताया जाता है कि अमरीका में सन् १९१  से लेकर १९११ तक के वर्षों में मशीन की सहायता से कार्य करने वाले कामगारों की उत्पादन-क्षमता में ७१ प्रतिशत वृद्धि हुई जब कि बेकारों की संख्या १५ लाख से बढ़कर १ करोड़ २  लाख हो गयी। कहने का अभिप्राय यह है कि बेकारों की संख्या में यह वृद्धि ८   प्रतिशत की और बढ़ते हुए वैज्ञानिक ज्ञान ने बेकारों की संख्या में ४   लाख की और वृद्धि कर दी। दूसरे शब्दों में सभ्यता के विकास ने बेकारों की संख्या में १२५  प्रतिशत की वृद्धि कर दी। हमारे कृषि-प्रधान देश में कृषि के सहारे जीने वाले बेकारों की संख्या भी कम नहीं है और कृषि में ट्रैक्टर आदि यन्त्रों के प्रयोग से तो बेकारों की संख्या और भी बढ़ जायगी। परन्तु यदि हम अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की शिक्षाओं का अनुसरण करते हुए हाथ का कता सूत हाथ का बना कपड़ा हाथ का पिसा चावल हाथ का पिसा आटा हाथ का बना गुड़ हाथ से बनाया हुआ तेल और हाथ से बनाया हुआ कागज प्रयोग करें तो हमारे देश से बेकारी का नामनिशान मिट जायगा। इस दशा में हमारे गांव आत्म-निर्भर होंगे और एक नयी सामाजिक व्यवस्था का जन्म होगा। भारत के राष्ट्रीय पुनर्स्थापन और ग्राम-पुनर्निर्माण की यह [illegible] है।

## हाथ और मशीन का कता सूत

एक मित्र ने मशीन के बने सूत के मुकाबले में हाथ का कता सूत कितना बढ़िया और उच्च कोटि का हो सकता है, इस बारे में पूछताछ की है।

यह विषय ऐतिहासिक दिलचस्पी का है और हमारे सामने उन बीते दिनों की याद ताजा कर देता है जब कि हाथ-कताई उन्नति के परम शिखर पर थी और जनता बड़ी समृद्ध थी।

मिल के सूत और हाथ के कते सूत में मुकाबले का सवाल उस समय उठा जब कपड़े की मिलें अच्छी तरह स्थापित हो गयी थीं और हाथ से बने वस्त्रों को निकाल बाहर कर वे कपड़े के बाजारों पर कब्जा करने के लिए प्रयत्नशील थीं। उन दिनों ऐसी मान्यता थी कि मिलें भी मलमलों के उपयोग में आने वाला बढ़िया प्रकार का सूत तैयार कर सकती हैं। मलमल की नकल करने की कोशिशें की गयीं परन्तु वे असफल रहीं। मिल की मलमल और हाथ की बनी मलमल की तुलनात्मक परीक्षाओं के परिणाम सन् १८६६ में लन्दन के इंडिया आफिस द्वारा प्रकाशित वाटसन के "सूती वस्त्र" में संग्रहीत हैं।

वाटसन महोदय ने प्रदर्शनी में रखी गयी तीन प्रकार की मलमलों की परीक्षा का वर्णन किया है। एक फ्रांसीसी मलमल का टुकड़ा ४४ नम्बर का था जिसे थामस हॉल्सवर्थ एण्ड को० ने बनाया था और जो १८६२ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में रखा गया था। दूसरा अंग्रेजी मलमल का टुकड़ा ५४ नम्बर का था जिसे १८५१ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया था। तीसरा ४४ नम्बर का ढाका की मलमल का टुकड़ा भारतीय संग्रहालय ने भेजा था। अंग्रेजी मलमल का नमूना ५४ नम्बर का था यह अभी विवादास्पद है और वाटसन महोदय के शब्दों में इस नम्बर पर सन्देह करने के लिए पर्याप्त कारण है।

### ढाका का सूत

परन्तु किसी भी हालत में इन नम्बरों को हम अन्तिम नहीं मान सकते क्योंकि ये नम्बर बुने हुए कपड़ों के टुकड़ों से निकाले गये थे सीधे सूत से नहीं। बुनते समय सूत पर निशास्ता लगाया जाता है और फिर धोने पर वह निशास्ता कुछ चर्बी के साथ बाहर निकल जाता है। तब प्रारंभिक सूत का भार कम हो जाता है। धोने के बाद टुकड़ों पर अन्त में फिर निशास्ता लगाया जाता है। इसलिये इन सब प्रक्रियाओं के कारण परिणाम भिन्न-भिन्न हो जाते हैं और नम्बर पता लगाने की सामान्य विधि पर आधारित ठीक-ठीक नम्बरों का अनुमान संभव नहीं है। ऐसा प्रस्ताव किया गया कि कपड़े के इन नमूनों की बड़ी बारीकी से परीक्षा की जाये धागे का व्यास और सूत के तन्तुओं की संख्या का पता लगाया जाये। बारीकी से परीक्षा करने के उपरान्त ऐसा पता चला कि ढाका की मलमल का व्यास बढ़िया

से बढ़िया यूरोपियन मलमल के व्यास से कम है। ढाका की मलमल में यूरोपियन मलमल की अपेक्षा अंतिम रेशों या तन्तुओं की संख्या बहुत कम होती है इसमें ८ रेशे होते हैं और मिलों की मलमल में १४। ढाका की मलमल में इकले तन्तुओं का व्यास अधिक बड़ा था। परन्तु आनुपातिक दृष्टि से ये इकले रेशे समुद्री द्वीपों की कपास के रेशों से अधिक मजबूत थे जिससे मिल के कपड़े बनाये जाते हैं। खोज करने वाले इस परिणाम पर पहुँचे थे कि ढाका के सूत की श्रेष्ठता मुख्यतः इस बात पर आधारित है कि इसमें तन्तुओं की संख्या थोड़ी है और इसके कातने का तरीका ऐसा है कि यह संकुचित हो जाती है और यही कारण है कि परिणाम में इतना फर्क नजर आता है। परन्तु यहीं पर ही बस नहीं है। मिल की बनी हुई जिन मलमलों का प्रदर्शन किया गया उनका प्रदर्शन केवल इसी उद्देश्य से किया गया था कि मिल का सूत इतना बढ़िया काता जा सकता है परन्तु ये मलमलें पहनने के उद्देश्य से नहीं बनायी गयी थी क्योंकि वे बिल्कुल भी मजबूत नहीं थी। "पहनने के लिये मिलों की बनी हुई ये यूरोपीय मलमलें क्रियात्मक रूप से व्यर्थ हैं, जबकि हाथ की बनी हुई भारत की मलमलें मजबूत और टिकाऊ हैं इनको बार-बार धोया जा सकता है जबकि बढ़िया क्वालिटी की अंग्रेजी मलमलें बार-बार नहीं धोयी जा सकती।"

खोज करने वालों ने यह भी बताया है कि ढाका के सूत की श्रेष्ठता कुछ अंश तक ढाका की रुई के रेशे के कारण थी। समुद्री द्वीपों की रुई के रेशे लम्बे और व्यास में पतले थे और ढाका की रुई के रेशे लम्बाई में छोटे और व्यास में मोटे थे और एक ही नम्बर के सूत से ढाका की मलमल कहीं अधिक बढ़िया बनती थी।

संभवतः इन्हीं खोजों के कारण ढाका की मलमल के अनुकरण करने के प्रयत्न छोड़ दिये गये। समुद्री द्वीपों की रुई से अधिकतम १० नम्बर तक का सूत काता जा सकता था। इसलिए हम ऐसा कह सकते हैं कि मिल के सूत का अधिकतम नम्बर १ है जबकि हाथ-कते सूत का ४ । परन्तु ढाका के सूत के लिए यह सीमा नहीं थी। मैंने ढाका के सूत के ७ से लेकर १ तक के नम्बर के विषय में निर्देश देखे हैं। यह पूर्णतः सम्भव है। ढाका के रेशे के ९ तन्तुओं से ४ नम्बर का सूत बनता है। इसलिए अगर ऐसा सूत बनाया जाय कि व्यास में केवल ५ या ४ या ३ ही तन्तु हों तो ६ से लेकर १ तक के नम्बर हो सकते हैं।

ऐसा तर्क किया जा सकता है कि अगर ढाका की मलमल की रुई को मिलों में काता जाता तो ऐसे ही अच्छे परिणाम निकल सकते थे। परन्तु ऐसी बात नहीं है। जब मिल में ढाका की मलमल की रुई से काता गया तो इसके परिणाम बहुत खराब निकले।

## मिल के सूत के अधिकतम नम्बर

इस समय सर्वोत्तम समुद्री द्वीपों की रुई से मिल में तैयार किये गये सूत का नम्बर

१० है इससे अधिक नहीं। यह व्यावहारिक सीमा है। अच्छी से अच्छी रुई से १० नम्बर का सूत काता जा सकता है। परन्तु समुद्री द्वीपों की थोड़ी सी बढ़िया किस्म की रुई से या फ्लोरिडा और जार्जिया की समुद्री द्वीपों की रुई से या सर्वोत्तम मिस्री रुई से १ या ७ नम्बर का ऐंठन या १२ नम्बर का बाना प्राप्त किया जा सकता है (टाड विश्व की रुई की फसलें "The World's Cotton Crops, १९२३)

केवल ढाका में ही नहीं परन्तु भारत के दूसरे स्थानों में स्थानीय कपास से बहुत ऊंचे नम्बर के सूत काते जाते थे यद्यपि ढाका का स्थान सर्वोच्च था।

मध्य प्रान्त और बरार के रुई विभाग की कार्रवाइयों के १८९७ के प्रतिवेदन में (इंडिया आफिस) २१ पृष्ठ पर अधोलिखित दिलचस्प वर्णन है

> नागपुर, जबलपुर और अकोला की प्रदर्शनियों में दर्शकों को यह विश्वास दिलाना कठिन था कि वहां पर प्रदर्शित सूत स्थानीय निर्माण का था और उसे उसी विभाग में प्रदर्शित बड़े और पुराने दिखाई देने वाले चर्खे की सहायता से हाथ द्वारा काता गया था। अकोला में प्रदर्शित एक कपड़े का टुकड़ा इतना बढ़िया बना हुआ था कि मेरी गणना के अनुसार इस प्रकार के १ पौंड सूत से ११७ मील तक की दूरी नापी जा सकती थी।

एक पौंड में ११७ मील के हिसाब से यह सूत २४०-२५ नम्बर का है और प्रतिवेदन की पाद-टिप्पणी में इसकी व्याख्या की गयी है, जहां दूसरी सूचना का भी संग्रह है

> यह हमारे रिकार्ड में है कि ४ ० नम्बर तक का सूत काता जा चुका है। धागा का नमूना, जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है, अंग्रेजी मापदण्ड के अनुसार २४४ नम्बर का होगा और यह पैरों से बनाया है। नागपुर और उमरेर में १४ नम्बर का सूत सामान्यतया बढ़िया धोतियों के लिये प्रयोग किया जाता है।

वे चर्खे कहां हैं? वे रुइयां और वे धोतियां कहां हैं? ढाका की मलमल की तरह मशीन के आक्रमण ने इन सबको समाप्त कर दिया है। तथ्य तो यह है कि १८९७ के प्रतिवेदन में निर्दिष्ट नागपुर प्रदर्शनी का आयोजन ब्रिटिश मिलों के कपड़ों को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से किया गया था। उस समय मध्य प्रान्त की जरूरत का लगभग सारा कपड़ा प्रान्त में ही तैयार किया जाता था और मिल की प्रतियोगिता अभी उग्र रूप में प्रारंभ नहीं हुई थी।

सितम्बर १८९४ में जमुरपोट्टा (भण्डारा) के साप्ताहिक बाजार में विभिन्न पेशियों के व्यापारियों की संख्या के सर्वेक्षण से पता चलता है कि वहां पर कपड़े की ५२१ दुकानें थीं जिनमें से केवल ५ दुकानों पर ही अंग्रेजी कपड़ा बिक रहा था

| | | |
|---|---|---|
| १ | स्थानीय कारीगरों द्वारा बने हुए मंहगे माल, धोतियां और पगड़ियां बेचने वाली दुकानें | ३५ |
| २ | अंग्रेजी कपड़ा बेचने वाली दुकानें | ५ |
| ३ | कोष्टी बढ़िया कपड़ा बुनने वाले स्थानीय जुलाहे | ११ |
| ४ | रंग-रेज, छींट वाला और रंगीन कपड़ा बेचने वाले | २६ |
| ५ | महिलाओं के लिए रंगीन कपड़ा बेचने वाले सालेवार | ९ |
| ६ | अपने हाथ का बना हुआ कपड़ा बेचने वाले धेर | ३५ |
| | योग | ५२१ |

इनमें से ४८ नियमित व्यापारी थे जो बाजार में अपनी गाड़ियां और अपने माल का बड़ा भारी स्टाक लेकर बाजार में आते थे और एक-दो दिन वहां रहते थे। बाकी गरीब लोगों के लोग थे जो कि कपड़ों के छोटे-छोटे बण्डल अपनी पीठ पर लाद कर आते थे और जिनकी बिक्री बहुत थोड़ी थी।

"मंहगी पगड़ियों और धोतियों के बेचने वाले" "कोष्टी" "रंगरेज" "सालेवार" और "धेर" वहां हैं जो चान्दा जिले के चिमूर परगने की चमूरकोटा के साप्ताहिक बाजार में आया करते थे।

ग्रामउद्योग पत्रिका ११-१०-४

## कताई अन्तिम दुर्ग

निम्नलिखित उद्धरण हम हरिजन के पृष्ठों से ले रहे हैं

अभी हाल तक अपने दरवाजे पर आये हुए भेड़िये के विरुद्ध शाश्वत संघर्ष में, कताई गरीबों का अंतिम दुर्ग था और यह उन्हें उनकी रोज की रोटी देता था जब कि अन्य सब साधन विफल हो जाते थे। यह केवल हिन्दुस्तान के बारे में ही सच नहीं है, अपितु अरब और पश्चिमी एशिया के दूसरे देशों के बारे में भी सच है जैसा कि अरबी की प्रसिद्ध अलिफ लैला (६४८वीं रात्रि) की एक भक्त इजराईल निवासी की सुन्दर कहानी से पता चलेगा। यह अनुवाद सर रिचर्ड बर्टन का है जिसे हमने कुछ आधुनिक रूप दे दिया है।

"एक भक्त इजराईली का परिवार रुई काता करता था और वह हर रोज सूत बेच कर ताजी कपास खरीद करता और उसे जो कुछ मुनाफा होता उससे अपने परिवार की गुजर-बसर करता था। एक प्रातःकाल वह बाहर गया और उसने प्रतिदिन के अभ्यासानुसार अपने दिन भर का सूत बेचा ही था कि उसे

अपनी जात-बिरादरी का एक आदमी मिल गया जिसने उससे कहा कि वह बड़ा जरूरतमन्द है और उसे पैसों की जरूरत है। उसने उसे अपने सूत बेचकर कमाये हुए पैसे दे दिये और वह खाली हाथ घर लौट आया। घर आकर उसके परिवार वालों ने पूछा कि रुई और भोज्य पदार्थ कहाँ है। इस पर उसने कहा कि रास्ते में उसे एक जरूरतमन्द आदमी मिल गया, जिसे उसने वे सारे पैसे जो उसने सूत बेचकर कमाये थे दे दिये। उसके परिवार वालों ने इसपर कहा "हम अपना निर्वाह कैसे करेंगे? हमारे पास तो खाने के लिए कुछ भी नहीं है।" (हरिजन, जनवरी ११ १९३५ में बी. बी. डी. द्वारा लिखित)

## मिल का कपड़ा बनाम खादी

बहुत से लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि खद्दर और स्वदेशी की प्रदर्शनियों में मिल के कपड़े को क्यों सम्मिलित नहीं करना चाहिए कांग्रेस के पदाधिकारियों को मिल का कपड़ा, जो कि स्वदेशी है पहिनने की इजाजत क्यों नहीं होनी चाहिए। पूंजीपतियों द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त मिल के कपड़े को अपने विज्ञापन के लिए प्रदर्शनियों की आवश्यकता नहीं है। कांग्रेस संगठनों में किसी भी स्थान के लिए निर्वाचित होने के लिए खद्दर पहिनने की शर्त इसलिए रखी गई है, क्योंकि इससे गरीबों को भोजन मिलता है और धन का प्रवाह शहर या कस्बे से गांव की ओर होता है।

परन्तु कांग्रेस के उन जिम्मेदार अधिकारियों को जो मिल का कपड़ा प्रयोग करने के अभ्यस्त रहे हैं कुछ थोड़ी-सी इस मामले में ढील दे दी गयी है। बहुत से लोग मिल के कपड़ों के प्रयोग में जो आर्थिक और नैतिक भाव अन्तर्निहित हैं उन्हें नहीं समझते। लोग पूछते हैं "क्या यह स्वदेशी नहीं है? हाँ यह स्वदेशी है। परन्तु सब वस्तुएँ जो स्वदेशी हैं, उनसे गरीबों को मदद नहीं मिलती। भारतीय पूंजीपति के पंजों से बचाने के लिए हमें ग्रामोद्योगों का नव-निर्माण करना होगा।

मिलों के स्वामी तो बड़े-बड़े पूंजीपति हैं और इन मिलों में काम करने के लिए मजदूर गांवों से शहरों की ओर भाग जाते हैं। जब आप इन शहरों में रहने वाले मजदूरों की दशाओं की तुलना उनके ग्रामों की दशाओं से करेंगे तो आपके सामने अत्यन्त हृदयद्रावक और दुखदायी विरोध स्वतः स्पष्ट हो जायेगा।

मिल के अन्तर्गत मजदूर, क्योंकि वे सब यन्त्र ही हैं 'मस्तिष्क' नहीं 'हृदय' तो बहुत ही कम कोई सृजनात्मक कार्य नहीं करते। उनकी सृजनात्मक शक्ति तो मृतप्राय हो चुकी होती है। वे शुरू से लेकर अन्त तक किसी वस्तु को नहीं बनाते। वे मशीन की देख-भाल करते हैं धागा जोड़ते हैं पेन्टों की गिनती करते हैं किसी खास यन्त्र को पानी देते हैं

या उसे तेल देते हैं, या उसे घुमाते और ऐंठते हैं और इस प्रकार सारे दिन भर का काम खत्म हो जाता है। दिन की समाप्ति पर वे अपनी पगारों की ओर आस लगाये बैठते हैं उस काम की ओर नहीं जिसका उन्होंने सृजन किया है। उन्होंने कच्चे माल के रूप में निर्जीव वस्तुओं को जीवन-रूप नहीं दिया और न ही उन्हें पूर्वतः निर्मित वस्तु का रूप प्रदान किया है।

इस काम की तुलना एक मूर्तिकार के काम से करें जो एक भद्दे पत्थर के टुकड़े को तराश कर उसमें से एक सुन्दर मूर्ति का निर्माण करता है। या जुलाहे के उदाहरण को लें जो दिन भर में एक कपड़े का टुकड़ा बुनता है। वह जुलाहा इस टुकड़े को अपने पास रख सकता है इसका मनचाहा प्रयोग कर सकता है इसे बेच सकता है इसे रेहन रख सकता है या इसे अपने लड़के की शादी के लिए सुरक्षित रख सकता है। परन्तु मिल का मजदूर सारा दिन काम करता है और अपनी मजदूरी का तीन-चौथाई नहीं तो आधा हिस्सा अस्वाभाविक अवस्थाओं में काम करने के कारण अपने को तरोताजा करने के लिए मद्यपयोरी में खर्च कर देता है जिसका परिणाम शारीरिक और मानसिक दृष्टि से उसके लिए अत्यन्त घातक होता है। मानव आत्मा को जो चीज प्रफुल्लित और आनन्दमय बनाती है वह मजदूरी के रूप में प्राप्त धन की मात्रा नहीं है अपितु श्रम का आनन्द है। मिलों में काम करने वाले मजदूरों को वह आनन्द कहां ?

नैतिक पक्ष की ओर हम देखते हैं कि मर्द अपने परिवार की औरतों से जुदा होकर दूसरे परिवारों की औरतों के संपर्क में आते हैं। मिलों में काम करने वाला परिवार एक सुगठित इकाई नहीं है जो एक सृजनात्मक कार्य में लगा हो, परन्तु वह तो एक लगभग बिखरा परिवार है। माताओं को गोद के बच्चे भी इसका अपवाद नहीं हैं। मिलों में तो कठोर अनुशासन के आधीन सबको एक ही डंडे से हांका जाता है जबकि गृहउद्योग में घर की पवित्रता बनी रहती है और पैदा की हुई संपत्ति का स्वामित्व भी सुरक्षित रहता है।

लोग मिल के कपड़े के मसृणपन की बातें करते हैं परन्तु यह नहीं देखते कि जिस मसृणपन की वे इतनी परवाह करते हैं वही तो उनके गरीब पड़ोसियों के शायद उनकी अपनी माताओं और बहिनों के विनाश का कारण है। खेती के बाद हमारे देश का दूसरा व्यापक धंधा जुलाहे का है क्योंकि भोजन के बाद वस्त्र ही हमारे जीवन की सर्वाधिक अनिवार्य आवश्यकता है। जब आप भोग्य पदार्थों और वस्त्रों का दूसरे देशों से आयात करते हैं तो इसका अभिप्राय है कि आप अपने देश के दो मुख्य उद्योग-धंधों का विनाश कर रहे हैं। इसीलिए हम चाहते हैं कि लोग अपने देश के ही भोग्य पदार्थों का उपभोग करें और अपने देशवासियों के हाथ का कता और हाथ का बना हुआ कपड़ा धारण करें। कुछ लोग कहते हैं "अगर हाथ का कता और बना कपड़ा, पर्याप्ततया बुद्धिपूर्ण है तो मिल के बने कपड़े का प्रयोग भी बुद्धिपूर्ण है।" परन्तु हम ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि आपको केवल मिल के

मजदूर को ही जिन्दा नहीं रखता है अपितु गांव की गरीब विधवा को उस गरीब बुढ़ी मां को जिसका लड़का गुजर चुका है और उस बहिन को जिसके भाई ने उसे छोड़ दिया है, भूखों मरने से बचाता है।

दूसरी तरफ आप जरा मिल मालिकों और मिल एजेन्टों, उनकी विशाल संपत्ति उनके कमीशन और डिवीडेन्ड उनके बंगलों और हवेलियों उनकी मोटरों और घोड़ों पहाड़ी स्थानों पर उनकी यात्राओं और उनके महाद्वीप भ्रमणों उनके ऐश्वर्य-विलास और फिजूलखर्चियों पर दृष्टिपात कीजिये। क्या ये लोग अपना व्यापार चलाने के लिए आपकी सहायता के पात्र हैं और वह भी भूखों और नंगों के हितों की बलि देकर?

## खादी पर श्री गुलजारीलाल नन्दा के विचार

इसमें कोई संदेह नहीं कि खादी का कपड़ा मिल के कपड़े के मुकाबले में महंगा होता है, और शहरों के अच्छे खाते-पीते संपन्न लोगों को खादी की ऊंची कीमतों के कारण कपड़े पर अधिक खर्च करना पड़ेगा परन्तु इससे ग्रामवासियों की क्रय-शक्ति बढ़ जायेगी, और मिल के कपड़े के मूल्य में ब्याज मुनाफे आदि के रूप में जो करोड़ों रुपया सम्मिलित होता है उसकी भी बचत हो जायेगी। जहां तक ग्रामवासियों द्वारा मिल के कपड़े के स्थान पर खादी के प्रयोग का सम्बन्ध है गांव वालों के कपड़े के बिल में अवश्य वृद्धि होगी परन्तु खादी के निर्माण द्वारा उन्हें जो अतिरिक्त मजदूरी मिलेगी, उससे इस वृद्धि के संतुलित होने के बाद भी कुछ धनराशि बच रहेगी। वस्तुतः गांव वालों की अवस्था में यह परिवर्तन जहां तक कपड़े का सम्बन्ध है, उन्हें आत्म-निर्भरता की ओर ले जायेगा। मिल के कपड़े से खादी की ओर परिवर्तन के कारण, क्रय शक्ति के पुनर्वितरण से समाज भोग-विलास और मनोरंजन की वस्तुओं पर कम खर्च करेगा और स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता की वृद्धि के लिए आवश्यक सेवाओं और पदार्थों पर खर्च में वृद्धि हो जायेगी। कपड़े की ऊंची कीमतें होने के कारण उसकी खपत भी कुछ घट जायेगी किन्तु इससे हमारे देश में कपड़े का जो व्यर्थ प्रयोग होता है उसपर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। विदेशी कपड़े पर भी यह तर्क इसी तरह लागू होता है। विदेशी कपड़े की खरीद से विदेशी कारीगरों को मजदूरी मिलती है जो कि भारत के भूखे ग्रामवासियों की बलिवेदी पर ऐशोआराम की जिन्दगी बसर करते हैं।

शहर के कारीगर के वेतन का बहुत बड़ा भाग किराये, ब्याज और मुनाफे के रूप में फिर पैसे वालों के पास वापस लौट जाता है जबकि गांव में खर्च किया हुआ रुपया बहुत से प्रारम्भिक उत्पादकों को सहायता पहुंचाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए एक प्रबल शक्ति के रूप में खादी की स्थापना करते हुए नन्दा महोदय आगे चलकर कहते हैं —

> अगर मिल के कपड़े के कारण बेकार रहने वाले हिन्दुस्तान के सारे कारीगर यन्त्र द्वारा उत्पादन में लग जायें तो एक वर्ष में हिन्दुस्तान इतना कपड़ा पैदा कर सकता है जो सारी दुनिया का कई वर्षों तक तन ढकने को पर्याप्त है। अगर हिन्दुस्तान किसी तरीके से अपना फालतू कपड़ा शेष दुनिया पर थोपने में कामयाब हो जाये तो दूसरे देशों के लाखों मजदूर रोजी और रोटी से वंचित हो जायेंगे। यन्त्र द्वारा उत्पादन से किसी एक राष्ट्र के व्यक्तियों और वर्गों के जीवन ही खतरे में नहीं पड़ जाते अपितु इससे तो अनेक राष्ट्रों की प्रभुसत्ता स्वतन्त्रता सुरक्षा और एकता खतरे में पड़ जाती है।

नन्दा महोदय की सांस्कृतिक युक्ति भी नीचे उद्धृत की जाती है —

> गृहोद्योगों में निर्मित वस्तुओं में कारीगर का अपना व्यक्तित्व झलकता है। दूर के बाजारों के लिए निर्मित मशीनी वस्तुओं के कारण उत्पादक और उपभोक्ता में कोई मानवीय संबंध या पारस्परिक कृतज्ञता का भाव नहीं रहता और परिणामतः निर्जीव पदार्थों के भण्डार लग जाते हैं।

नन्दा महोदय पूछते हैं कि क्या महंगी खादी बेकारी के भत्ते से भी बुरी है। बेकारी के भत्ते देने के लिए किसी सरकारी विभाग की स्थापना करने में बड़ी-बड़ी तनख्वाहों और अनुत्पादक कार्यों में ही राजस्व का बहुत बड़ा हिस्सा चला जायेगा और सबसे बुरी बात तो यह है कि बेकारों को फिर भी किसी उपयोगी कार्य पर नहीं लगाया जा सकेगा।

क्या खादी से प्राप्त होने वाली आय नगण्य है? गृहोद्योगों की प्रणाली के अन्तर्गत समस्त परिवार की आय निश्चित रूप से फैक्ट्री प्रणाली के अन्तर्गत समस्त परिवार की आय से अधिक होती है।

क्या गृहोद्योगों की प्रणाली से उत्पादन का पर्याप्त स्तर सम्भव है? श्री नन्दा इसका उत्तर देते हुए कहते हैं, क्योंकि मिल उद्योग में लगे हुए कारीगर आधी कीमत पर, हाथ के कारीगरों से ५ गुना अधिक उत्पादन कर सकते हैं इससे किसी को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि देश के धन में भी १ गुना वृद्धि होती है। ५ में से केवल १ कारीगर को मिल में काम मिलता है और बाकी ४९ ने तो धन का अर्जन करना बन्द कर दिया है।

> महात्मा गांधी ने लखनऊ प्रदर्शनी के अवसर पर कहा था कि ये प्रदर्शनियां अब सिनेमा सी नहीं रहीं। मैं आपको बता दूं कि हमने इस प्रदर्शनी से उस हर चीज का बहिष्कार कर दिया है जिसका कोई शैक्षणिक मूल्य नहीं है। हमने प्रदर्शनी को एक पवित्र तीर्थस्थान बनाने का प्रयत्न किया है, जोकि आपके कानों और आंखों के लिए आनन्ददायी हो और आपकी इंद्रियों को पवित्र करने के

लिए आध्यात्मिक शिक्षा से परिपूर्ण हो। मैं तुम्हें बताता हूँ कि ऐसा हमने क्यों किया है। क्या आप उड़ीसा और उसके नर-कंकालों से परिचित हैं? हां तो उस नर-कंकालों के भूखे और गरीब देश से वे लोग आये हैं जिन्होंने हड्डियों सींगों और चांदी के अद्भुत कलात्मक पदार्थ बनाये हैं। आइये और इन चीजों को देखिये। बिलकुल निर्मित रूप में नहीं अपितु बनते हुए देखिये और देखिये कि इन नर-कंकालों की आत्मा ने निर्जीव सींगों और धातुओं में जीवन डाला है। एक गरीब कुम्हार ने आश्चर्यजनक मिट्टी के बर्तन बनाए हैं। जिन चीजों के बारे में मैं ख्याल करता था कि वे कुछ आनों की होंगी, वे चन्द पैसों की हैं और फिर भी वे अद्भुत कला-कृतियां हैं। उस दिन एक बहिन ने हाथी दांत की बनी एक छोटी सी कृष्ण की मूर्ति खरीदी। वह भगवान् कृष्ण की उपासना करने की अभ्यस्त नहीं थी परन्तु उसने अब मुझे बताया है कि उसने उस सुन्दर छोटी-सी मूर्ति की आराधना करनी प्रारम्भ कर दी है।

यह प्रदर्शनी एक बड़ा प्रदर्शन-मात्र न होकर छोटा-सा अजायबघरों का देश है। परन्तु हमारी रुचियां इतनी विकृत हो गयी हैं कि हमारी आंखों के सामने प्रकट होने वाले करिश्मे हमें धूल और मिट्टी नज़र आते हैं और विदेशों से आने वाली तुच्छ वस्तुओं में हमें कलात्मकता दिखाई देती है। सुदूर यूरोप के चश्मे के पानी में जिसके साथ न समझ में आने वाला कोई जादू-भरा नाम जुड़ा है हमें बड़ी करामात नज़र आती है जबकि पवित्र गंगा का पानी जो कि अत्यन्त शुद्ध और शोधक है, हमारी नज़रों में एक दुर्गन्धयुक्त सरोवर के पानी से अधिक महत्त्व नहीं रखता।

## डी बलेरा का आर्थिक दर्शन

जून १९३३ में विश्व आर्थिक सम्मेलन से कुछ सप्ताह पूर्व पैरिस में अमेरिकन राजदूत द्वारा अपने सम्मान में आयोजित भोज के अवसर पर श्री डी बलेरा ने स्पष्ट शब्दों में अपने आर्थिक दर्शन की व्याख्या की थी। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि विश्व का सबसे बड़ा अभिशाप स्वतन्त्र व्यापार है और वस्तुतः सारा ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कुत्सित है जब तक कि इसके अतिरिक्त उत्पादन की सीमा निश्चित न कर दी जाये।

स्वतन्त्र व्यापार के नाम पर इंग्लैण्ड ने आयरिश उद्योग का नाश कर दिया है और आयरलैण्ड को केवल एक खाद्य भंडार के रूप में परिवर्तित कर दिया है। आयरलैण्ड की नीति अपने उद्योगप्रधान पड़ोसी पर निर्भर न रहने की होनी चाहिए, क्योंकि इसी वजह से आयरलैण्ड अधोगति को प्राप्त हुआ है।

श्री डी वलेरा का तर्क बड़ा प्रबल है। आज से १    साल पहले सारस्टेट आयरलैंड के क्षेत्र में ६७    एकड़ भूमि पर गेहूँ की खेती होती थी। इस खेती में प्रत्येक जिले का अपना भाग होता था। इस प्रकार न केवल आयरलैण्ड अपनी आवश्यकताओं के लिए जरूरी गेहूँ पैदा करता था अपितु बहुगेहूँ का बड़े परिमाण में दूसरे देशों को निर्यात भी करता था। सन् १८४७ में अनाज के कानूनों के हटाने और स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त का आयरलैण्ड पर प्रयोग करने के उपरान्त आयरलैण्ड के बाजार अमरिका के सस्ते गेहूँ से भर गये। आयरलैण्ड के गेहूँ के खेत क्षेत्रों में परिवर्तित हो गये सारे-के-सारे परिवार बेदखल किये गए और खेत चरागाहों में बदल दिये गए। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९११ में कृषियोग्य जमीन का क्षेत्रफल घटते-घटते २१    एकड़ रह गया और सन् १९१५ में जाकर प्रबल आन्दोलन तथा प्रेरक साधनों की सहायता से यह क्षेत्रफल १७    एकड़ तक जा पहुँचा। गहूँ के स्थान पर विस्तृत रूप में दूसरे अनाजों का प्रयोग नहीं किया गया। कृषि के क्षेत्रफल के विस्तार का कारण यह भी है कि पशुओं के चारे के आयात पर नियन्त्रण लगा दिया गया। मक्की के मालिकों को आदेश दिया गया कि वे अपने द्वारा बनाये गए मक्की के भोज्य पदार्थों में अपने देश में उत्पन्न हुए गेहूँ का एक निश्चित अनुपात मिलायें। भोज्यपदार्थों के रूप में मक्की का आयात सर्वथा निषिद्ध कर दिया गया और अनाज के रूप में मक्की के आयात पर भी लाइसेंस व्यवस्था के आधीन प्रतिबन्ध लगा दिये गए। ऐसा दावा किया जाता है कि इस नीति से अपने देश में १    एकड़ भूमि पर पैदा हुए अनाज की खपत बढ़ गई।

## ग्राम-कल्याण पर सर एसम पिम के विचार

इंग्लैण्ड के भारतीय ग्राम कल्याण संघ की ओर से सर ऐलन पिम द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका में हमें ग्राम-संगठन के सामाजिक और आर्थिक पक्षों के बारे में कुछ उपयोगी सूचना प्राप्त होती है। भूमि पर जनसंख्या के अत्यधिक बोझ और साख के स्थान के कारण ग्रामीण समस्याएँ और अधिक जटिल हो जाती हैं।

> भारत में हमारे सामने ये एक महान् समस्या उपस्थित करते हैं हमारे कृषि-प्रधान देश में, प्रति वर्गमील में २४८ जनसंख्या का घनत्व बहुत ऊँचा है। भारत में भूमि के औसतन कृषि-क्षेत्र बहुत छोटे हैं और सर एलन पिम के कथनानुसार छोटे कृषि-क्षेत्रों से परिवार का जीवन-स्तर तभी कायम रह सकता है, जबकि खेती विभिन्न प्रकार की हो बाजार नजदीक हों सहकारी मार्केटिंग की प्रणाली हो, और खाली समय में घर में काम की व्यवस्था हो। जापान में जहाँ कि कृषि-क्षेत्र इतने छोटे हैं कि कुल २१ प्रतिशत किसानों के पास २॥ एकड़ से अधिक भूमि है तब प्रकार के कृषि-संगठन विद्यमान हैं कोई चीज बेकार

नहीं जाती खेतों का छोटा विभाजन समाप्त हो गया है और रेशम के कीड़े पालना जैसे उद्योग बहुत से व्यक्तियों को काम मुहैय्या करते हैं। सर ऐलन पिम की दृष्टि में भारत के लिए आशा की एकमात्र किरण ग्राम्य बेकारी को कम करने की दिशा में महात्मा गांधी का चर्खा आन्दोलन है जो कि हमारी जरूरतों को वास्तव में पूरा कर सकता है। चीन में प्रति परिवार का औसतन कृषि-क्षेत्र एक एकड़ है जबकि हिन्दुस्तान में यह प्रति परिवार पांच एकड़ है।

## क्या खादी सस्ती है ?

श्री प्यारेलाल ने एक दिलचस्प वादविवाद का विस्तार से वर्णन किया है। यह "क्या खादी मिल के कपड़े के मुकाबले में सस्ती है ?" विषय पर गांधीजी का प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों की एक मण्डली के साथ हुआ था। प्रसंगवश उन्होंने गृहोद्योगों पर भी विचार-विमर्श किया। अर्थशास्त्री मित्रों का यह दृष्टिकोण था कि खादी और गृहोद्योग भारत की वर्तमान स्थिति में उसके बेकारों को औद्योगिक सहायता देने की दृष्टि से ठीक हैं और इसलिए इनका समर्थन भी करना चाहिए। परन्तु राष्ट्रीय आयोजन में उनको केन्द्रीय स्थान नहीं दिया जा सकता। उनकी दृष्टि में यह सर्वथा अयुक्तियुक्त है कि उन्हें खादी और गृहोद्योगों को जिन्हें वे 'बिना बचत वाले उद्योग' समझते हैं इसलिए सहायता दी जाय ताकि वे यन्त्र द्वारा निर्मित वस्तुओं का मुकाबला कर सकें और परिणामत: अन्य उद्योगों का नाश तथा देश की उत्पादन-क्षमता का ह्रास हो। गांधीजी का विचार था कि गृहोद्योगों के बलिदान पर समाज द्वारा अनेक प्रकार से फैक्ट्रियों में निर्मित वस्तुओं को सहायता पहुँचायी जा रही है। उदाहरण के लिए फैक्टरी प्रणाली अपनी सफलता के लिए सस्ते रेल परिवहन विशेष म्यूनिसिपल सुविधाओं कई सहवर्ती मूल उद्योगों का सहयोग और विशेषज्ञ तथा दक्ष श्रमिकों की शिक्षा के उच्च स्तर पर निर्भर थी। इस सब पर बहुत अधिक खर्च आता है, परन्तु समाज को इसकी परवाह नहीं है क्योंकि जीवन को सुखमय बनाने वाली जो चीजें इस व्यवस्था से प्राप्त होती हैं जैसे शीघ्र यात्रा मोटर कारें, सिनेमा रेडियो बिजली और हजारों दूसरी चीजें जिन्हें स्टुअर्ट ने 'सभ्यता के खिलौने' कहा है—उन्हें हमारे सामाजिक मार्ग का पथ प्रदर्शक बुद्धि संपन्न नागरिक छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। दूसरी ओर, गृहोद्योग अपनी सफलता के लिए अर्थशास्त्र की एक विभिन्न प्रणाली पर निर्भर करते हैं। अगर एक ग्राम-सभ्यता प्रेमी समाज इन सब चीजों को प्रदान कर सकता तो दुनिया की कोई ताकत गृहोद्योगों का मुकाबला नहीं कर सकती थी। परन्तु जब समाज को ग्राम द्वारा मुहैय्या की जाने वाली सादे आनन्द और संतोष के देने वाली वस्तुओं से ही सन्तुष्ट होना पड़ता और इसे उस यूटोपिया के स्वप्न

का परित्याग करना पड़ता जिसमें सब ग्राम आधुनिक सुविधा-सम्पन्न होते। गृहोद्योगों के उत्पादन की तुलना में फैक्ट्री उत्पादन का तथाकथित सस्ता वाला स्वरूप कोई आन्तरिक गुण नहीं है, परन्तु यह तो ऊपर से थोपा हुआ गुण है जो समाज द्वारा स्वीकृत या स्वीकार किये जाने योग्य मूल्यों के मापदण्ड पर निर्भर करता है। किसी व्यवसाय या उत्पादन-विधि की यही अपरिवर्तनीय परीक्षा—कि यह अल्पव्ययी है या बहुव्ययी—करने का एकमात्र उपाय यह देखना है कि जीवन की प्रबल मांगों का यह किस प्रकार उत्तर देता है और उत्पादक के लिए इसके निर्माण के क्या अर्थ हैं।

## ऐमन एण्ड इस्टन का दृष्टिकोण

श्री ऐमन एण्ड ईस्टन ने रसेल सेज फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित "हैण्डीक्राफ्ट्स आफ सदर्न हाईलैण्ड्स" में गृहोद्योगों के विषय पर प्रकाश डाला है। इस पुस्तक की एक प्रति उन्होंने गांधीजी को भेजी थी। रसेल सेज फाउण्डेशन की स्थापना सन् १९ ९ ई में श्री रसेल सेज द्वारा अमरीकी लोगों की सामाजिक दशाओं के सुधार के उद्देश्य से की गई थी। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए फाउण्डेशन का एक कर्मचारी-मंडल है जो दूसरे कर्तव्यों के साथ-साथ सामान्य निर्देशन के आधीन सामाजिक दशाओं का अध्ययन करता है और इसके लिए गई सूचना उसका विश्लेषण और निर्वचन सुधार के क्रियात्मक उपायों के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं। समय-समय पर फाउण्डेशन द्वारा इन अध्ययनों के परिणाम पुस्तक या पैम्फलेट रूप में प्रकाशित किये जाते हैं।

## चर्खा 'मारो राय रंगीलो'

कोई समय था जब चर्खा हमारे देश की सर्वाधिक प्रिय वस्तु थी। आज से ५ साल पहले एक बूढ़ी विधवा जो चर्खे द्वारा अपनी रोजी कमाती थी इसे "मारो राय रंगीलो" कहा करती थी। मिल के कपड़ों की चकाचौंध में "मेरा सुन्दर स्वामी" को भुला दिया गया। गांधीजी ने चर्खे को उसकी प्राचीन स्थिति और गौरव प्रदान कराने का प्रयत्न किया। आज खादी राष्ट्रीयता पवित्रता और ग्राम-पुनर्निर्माण का प्रतीक है।

## क्या खद्दर आर्थिक दृष्टि से ठीक है ?

अक्सर यह सवाल पूछा जाता है कि क्या खद्दर आर्थिक दृष्टि से ठीक है। वस्तुतः आरम्भ में ही यह प्रश्न एक गलत रूप में रखा जाता है। खुले बाजार में एक अधिक संगठित उद्योग हमेशा इस योग्य होगा कि वह कम संगठित उद्योग को बाजार से निकाल बाहर करे, खासकर उस हालत में जबकि पहले को राज्य द्वारा आर्थिक सहायता दी जाती है उसके विस्तार के लिए असीम पूंजी है और इसलिए वह स्वनिर्मित वस्तुओं की अस्थायी हानि पर भी बच सकता है। भारत में अंग्रेजों के धीरे-धीरे प्रवेश के बाद ग्रामोद्योग

और हस्तनिर्मित वस्तुओं का स्थान यन्त्रनिर्मित वस्तुओं ने लेना शुरू किया। इस व्यवस्था से गरीब और अधिक गरीब हो गये तथा अमीर और अधिक अमीर हो गये। फिर भी गांधी जी यह कहने का साहस करते हैं "लाखों ग्रामवासियों के लिए जब तक काम की व्यवस्था नहीं हो जाती और १६ साल से अधिक आयु के प्रत्येक सशक्त स्त्री-पुरुष के लिए उसके खेत कुटीर या फैक्टरी में काम की व्यवस्था द्वारा उसके लिए पर्याप्त वेतन की व्यवस्था नहीं हो जाती और जब तक हम गांवों के स्थान पर इतने नगरों का निर्माण नहीं कर लेते, जिससे ग्रामवासियों को भी सुनियमित जीवन की सब सुविधायें प्राप्त हो सकें, तब तक इन ग्रामवासियों की आर्थिक मुक्ति का एकमात्र उपाय खादी ही है। गांधीजी आगे चलकर कहते हैं "हमारे सामने समस्या तो यह है कि उन लाखों ग्रामवासियों के लिए, जिनकी संकल्प-शक्ति का ह्रास हो रहा है जिनकी विचार-शक्ति कुण्ठित हो गयी है और जो जीने की कला से अपरिचित हैं किस प्रकार काम और वेतन का प्रबन्ध किया जाये। खादी से उन्हें काम मिलता है औजार मिलते हैं और अपनी निर्मित वस्तुओं के लिए एक तैयार बाजार मिलता है। जहां कल निराशा थी वहां आज आशा का संचार होता है। खादी से करोड़ों आदमियों को रोजगार मिलता है।

## खद्दर और भावना

खद्दरधारियों को यह समझ लेना चाहिए कि खादी का अर्थशास्त्र प्रतिद्वंद्विता पर आधारित साधारण अर्थशास्त्र से भिन्न है, जो देशभक्ति भावना और मानवता की भावना से रहित है। खादी के बढ़े हुए मूल्य के रूप में खद्दरधारी खद्दर के उत्पादकों को अवश्य कुछ आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं। यह शिकायत ठीक है कि मुख्यतः गरीब मध्यमवर्ग ही खद्दर उद्योग को सहायता पहुँचाता है। परन्तु उन्हें यह संतोष है कि यह धनराशि एक दूसरे रूप में बाजार में वापस लौट आती है। आवश्यक शर्त तो यह है कि बिकी की धनराशि वस्तुएं बेचने वालों के पास किसी दूसरे रूप में वापस पहुँच जानी चाहिए और इससे अन्य उद्योग व्यापार का विकास होना चाहिए जो कि उस स्थान की समृद्धि में सहायक हो। अकाल और बीमारी के विरुद्ध यही एकमात्र बीमा है।

खादी को अहिंसा के आधार और उसकी प्रतिमा के रूप में चित्रित किया गया है। एक सच्चा खद्दरधारी कभी भी झूठ नहीं बोलेगा ईर्ष्या-द्वेष नहीं करेगा धोखा नहीं देगा और अपवित्र आचरण नहीं करेगा। कांग्रेस का ग्राम-अधिवेशन तो ५ रुपये में संपन्न हो जाना चाहिए। परन्तु विट्ठल नगर का निर्माण लाख लाख रुपये से किया गया था। गांधीजी ने यह शिकायत की थी कि उन्हें फैजपुर और हरिपुरा के कांग्रेस अधिवेशनों में पैदल नहीं ले जाया गया और न ही उन्हें वहां पैदल चलने दिया गया। क्योंकि

कांग्रेस की प्रदर्शनी का स्थान हम सबके लिए पवित्र तीर्थस्थान है, हमारी काशी और हमारा मक्का है जहां हम देशसेवा और राष्ट्रनिर्माण के पुनीत व्रत की दीक्षा के लिए आते हैं। आप यहां गरीब किसानों पर भार रूप बनने के लिए नहीं आए, परन्तु आप तो यह सीखने आये हैं कि किस प्रकार उनके दैनिक श्रम में भाग लेकर, स्वयं मंदी का काम करके, अपने वस्त्र स्वयं धोकर और अपना अनाज स्वयं पीस कर, आप उनका भार हल्का कर सकते हैं। नेता इसलिए *नेता हैं क्यों कि वे जनता के प्रमुख सेवक हैं; उन्हें जनता पर भाररूप नहीं बनना है।* यदि कांग्रेस का स्थान एक तीर्थस्थान है तो हम सब एक हैं और सबको विश्वनियन्ता जगन्नाथ का प्रसाद ग्रहण करना है।

जो लोग यह सोचते हैं कि शारीरिक काम से मनुष्य की बौद्धिक कार्य करने की क्षमता जाती रहती है उन्हें भी आर. बी. ग्रैग की विचारधारा का अध्ययन करना चाहिए। उनके लिए खादी अहिंसक कार्यक्रम का एक भाग है। वे तो इस जैविक सिद्धान्त पर बल देते हैं कि "मनुष्य के हाथ के कार्य का उसके मस्तिष्क के विकास में बड़ा भाग है। हम आपको यहां स्मरण दिला दें कि कैनन रौप्पर्ड जार्ज लैन्सबरी लार्ड पान्सनबरी और दूसरे शांतिवादियों ने जो सन् ३६ में यूरोप की भयंकर स्थिति का सामना करने के लिए एक शांति आन्दोलन का संगठन कर रहे थे भी आर बी ग्रैग की सेवाओं से काम उठाया था। मानसिक श्रम और अहिंसक प्रतिविधि ये दो विषय परस्पर सम्बन्धित हैं। मनोवैज्ञानिक मानसिक बीमारियों में शारीरिक श्रम की सलाह देते हैं और शारीरिक श्रम बुनने और कढ़ाई के काम मिट्टी के बर्तन बनाने और टोकरियां बनाने के रूप में होता है और ऐसा कहा जाता है कि *काम जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं* जीवन में दिलचस्पी पैदा करते हैं और प्रफुल्लता आत्मनिर्भरता तथा मानसिक स्वतंत्रता की भावना उद्बुद्ध करते हैं।

## चौथा अध्याय

# अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना सन् १९३४ में बम्बई कांग्रेस के अवसर पर की गयी थी और इसके बाद की वार्षिक रिपोर्टों से इसके कार्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इन रिपोर्टों में केवल कुटीर उद्योगों और ग्रामोद्योगों का ही वर्णन नहीं है, अपितु इनमें स्वच्छता और ग्रामवासियों के स्वास्थ्य भोजन में सुधार और मृतप्राय उद्योगों के विकास जैसी समस्याओं पर भी विचार-विमर्श किया गया है। संस्था ने बिना पूंजी के ही कार्यारम्भ किया और इसे प्रथम वर्ष ही ४५, रुपये के लगभग अनुदान दान में मिली। स्वच्छता के विषय में संघ ने अपना कार्य कस्बों और गांवों की गलियों के दुरुपयोग के विरुद्ध जिहाद के रूप में किया केवल गलियां ही नहीं अपितु खुले स्थानों और नदी तटवर्ती स्थानों को लोग शौचस्थान के रूप में प्रयोग करते हैं, और इस सदियों पुरानी आदत को बदलने का यत्न कर रहा है। मनुष्य का मल सर्वोत्तम खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है परन्तु पूर्व इसके कि हम लोगों को इस साधारण सी बात को स्वीकार करने के लिए प्रेरित कर सकें हमें पक्षपातों और मिथ्या विश्वासों का सामना करना पड़ेगा। लोग तो इतने अज्ञानी हैं कि पशुओं की खाद के रूप में उनके घर के पृष्ठ भाग में जो सोना है, और जिसे वे निर्दयतापूर्वक ईंधन के रूप में जला देते हैं उसके महत्त्व को भी वे नहीं जानते। बंगाल के कुछ भागों में मनुष्य के मल के उत्कृष्ट खाद-मूल्य को सिद्ध करने के लिए कई परीक्षण और प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। लम्बे अरसे से मनुष्य के मल को खाद के रूप में प्रयोग न करने का कारण यह है कि यह काम नीच जाति के लोगों का व्यवसाय समझा जाता है और इसका इलाज यह है कि ऊंची जाति के लोग भंगी के काम को इज्जत का काम समझें तभी राष्ट्र इसे अपनायेगा। सड़कों की सफाई कांटों, झाड़ियों और झाड़-झंखाड़ को साफ करने का कार्य संघ के केन्द्रों में क्रियात्मक रूप से सब जगह किया गया है। शहर के लोगों के लिए गांवों में काम करना एक फैशन सा हो गया है साल में एक दिन निश्चित करके उच्चाधिकारी जिसमें जिला के अध्यक्ष भी सम्मिलित हैं गलियों की सफाई का प्रदर्शन करते हैं। पंजाब के कुछ गांवों में गांव वालों ने दूर दूर तक की गलियों की सफाई का निश्चय किया है।

## गांधीजी की शिक्षाएं

मानव शौच व्यवस्था के बारे में गांधीजी की शिक्षाएं यहां उद्धृत की जाती हैं क्योंकि वे इस विषय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साहित्य का भाग हैं।

आज मुझे आपके सामने इस कार्य और जीवन के आदर्शों के विषय में कुछ कहना है, जिसे आपने अपने सम्मुख रक्खा है और जिसके लिए आपने कृतसंकल्प और कटिबद्ध होना है। आप यहां जीवन धन्धे के प्रचलित अर्थों में अपना भावी जीवन और भविष्य बनाने के लिए नहीं आए। आजकल मनुष्य की कीमत रुपये आने पाई में आंकी जाती है और मनुष्य की शिक्षा भी एक सौदेबाजी और व्यापार की वस्तु बन गयी है। अगर आपके सामने शिक्षा का यही मापदण्ड और जीवन का यही ध्येय है तो आपको निराश होना पड़ेगा। अपने अध्ययन की समाप्ति पर आप १ रुपये के नाममात्र के वेतन पर अवैतनिक कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं और इसी पर ही अपना कार्यकाल समाप्त कर सकते हैं। आपको इसकी तुलना किसी बड़ी फर्म के मैनेजर या उच्च अधिकारी के वेतन से नहीं करनी चाहिए। हमें वर्तमान मापदंडों को बदलना होगा। हम आपको किसी समृद्धिशाली भौतिक संपदासंपन्न भविष्य का आश्वासन नहीं दे सकते तथ्य तो यह है कि हम इस प्रकार की महत्वाकांक्षाओं को आपके हृदयों से निकालना चाहते हैं। आप से ऐसी आशा की जाती है कि आप अपने भोजन पर १ रुपया मासिक व्यय करेंगे। एक आई. सी. एस अफसर का भोजन का बिल भले ही ६ रुपये का हो परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि वह भौतिक, बौद्धिक या नैतिक दृष्टि से आपसे उत्कृष्ट है। वह इतने महंगे और शान-शौकत के खर्च के होते हुए भी इन सब दृष्टियों से आप से हीन हो सकता है। आप इस संस्था में इसलिए आये हैं क्योंकि मेरे विचार में आप धातु के रूप में अपने गुणों को नहीं आंकते। आप तो केवल निर्वाहमात्र धनराशि पर स्वदेश की सेवा के लिए सहर्ष सन्नद्ध रहेंगे। एक इस्तान स्टाक एक्सचेंज से हजारों रुपये कमा सकता है, परन्तु यह धनराशि हमारे कार्यों के लिए सर्वथा व्यर्थ हो सकती है। ऐसे इन्सान हमारी परिस्थितियों और वातावरण में आकर प्रसन्नता अनुभव नहीं करेंगे और हम भी उनकी स्थितियों से प्रसन्न नहीं होंगे। हमें स्वदेश सेवा के लिए आदर्श व्यक्ति चाहिएं। वे इसकी चिन्ता नहीं करेंगे कि उन्हें किस प्रकार का भोजन मिलता है और जिन ग्रामवासियों की वे सेवा करते हैं वे उन्हें क्या कुछ सुविधाएं पहुंचाते हैं ? वे अपनी जरूरतों के लिए भगवान् पर विश्वास करेंगे और जिन परीक्षाओं और विपत्तियों में से उन्हें गुजरना पड़ेगा उनमें भी वे हर्षित होंगे। हमारे देश में तो ऐसा अनिवार्य रूप से होना चाहिए क्योंकि हमें तो लाखों गांवों का विचार करना है। हम वैतनिक कर्मचारी वर्ग नहीं रख सकते जो नियमित वेतन वृद्धियों, प्राविडेन्ट फंड और पेंशनों की ओर आस लगाये

बैठा हो। ग्रामवासियों की निःस्वार्थ सेवा अपना संतोष आप है। आप में से कुछ यह पूछने के लिए भी उत्सुक होंगे कि क्या ग्रामवासियों के लिए भी यही मापदण्ड है। नहीं कदापि नहीं। मापदंड तो हम सेवकों के लिए है गांव वालों के लिए नहीं जो हमारे स्वामी हैं। हमने इतने वर्ष उनका शोषण किया है और अब हम ऐच्छिक गरीबी का व्रत धारण करना चाहते हैं ताकि हमारे स्वामियों का भाग्य आज की अपेक्षा बेहतर हो। हमें उन्हें इस योग्य बनाना है कि आज वे जो कुछ अर्जन कर रहे हैं उससे अधिक अर्जन कर सकें। यही ग्रामोद्योग संघ का उद्देश्य है। यह तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि जिन सेवकों का वर्णन मैंने ऊपर किया है वे हमें अधिक संख्या में उपलब्ध न हों। आप भी ऐसे योग्य सेवक बनें।

## यन्त्र क्रिया में हिंसा है

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ ने यह सिद्ध करने के बहुत प्रयत्न किये हैं कि जिस प्रकार रचनात्मक कार्यक्रम क्रिया में अहिंसक होता है उसी प्रकार यंत्र उद्योग क्रिया में हिंसक होते हैं। हिंसा तो केन्द्रीकृत उद्योग का सार है क्योंकि इस आर्थिक संगठन में ही हिंसा अन्तर्निहित है जिसके द्वारा यह उत्पादन संभव है इसको प्रश्रय मिलता है और इसका विकास होता है। उपभोग के लिए नहीं अपितु निर्यात के लिए बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन निस्सन्देह बाजारों की खोज पर आधारित है और बाजारों का नियंत्रण राजनीतिक प्रभुत्व पर आश्रित है जिसके लिए सैनिक उत्कर्ष आवश्यक होता है। दूसरे शब्दों में केन्द्रीकरण की ओर जाने की प्रवृत्ति रखने वाले राष्ट्र के आर्थिक और राजनीतिक जीवन में निर्यात की दृष्टि से उत्पादन पूर्णतः हिंसा पर आश्रित होता है। ऐसे संगठन में आवश्यक रूप से समाविष्ट होने वाला प्रतियोगिता का तत्व स्वतः हिंसा का कारण है। समय वस्तुतः धन है क्योंकि जितना अधिक उत्पादन होगा उतने ही ऊपर के खर्चे कम होंगे और इसीलिए वस्तुएं सस्ती होंगी और परिणामतः वस्तुओं का प्रचलन बहुत अधिक होगा। फिर उत्पादक बाजार तक जितनी जल्दी संभव हो, उतनी जल्दी पहुँच सकता है इसलिए आर्थिक गति की आवश्यकता के कारण वस्तुओं का उत्पादन उपभोग के लिए नहीं अपितु मांग को लक्ष्य में रखते हुए किया जाता है। इसलिए कृत्रिम रूप से मांग को पैदा करना होगा और ऐसा केवल हिंसा के जरिये किया जा सकता है। इसमें हम उस प्रक्रिया की ओर पहुंचते हैं जिसे हम कोमल और सुन्दर शब्दों में पिछड़े राष्ट्रों को सभ्य बनाने के नाम से गौरवान्वित कर सकते हैं और परिणामतः राजनीतिक दृष्टि से निर्धारित बाजारों की ओर आवश्यक रूप से श्रमिकों को थोड़ा वेतन देने होंगे और यह श्रमिकों के शोषण की प्रक्रिया ही है जिस पर साम्राज्यवाद और पूंजीवाद पनपते हैं।

सन् १९३९ के आस-पास कांग्रेस और भारत सरकार ने ग्रामोद्योग के विकास को प्रोत्साहित किया और सरकार द्वारा तेलघानियाँ और हाथ के बने कागज पर, खादी प्रतिष्ठान के बने कागज की ओर विशेष रूप से निर्देश करते हुए, बड़ी विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। संघ ने कागज बनाने तेल निकालने कृषि ताड़-गुड़ बनाने चावल साफ करने और आटा पीसने के कार्य में अनेकों विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया। संघ के पथ-प्रदर्शन में *मध्यप्रदेश में बहुत से केन्द्र खोले गए और बम्बई, उड़ीसा तथा मद्रास में* तेल घानी ताड़-गुड़-निर्माण मधुमक्खी पालन और कागज बनाने के ग्रामोद्योगों का विस्तार किया गया। दिसम्बर सन् १९३८ में गांधीजी द्वारा औपचारिक रूप से उद्योग भवन की स्थापना की गयी थी। इसके अतिरिक्त मगन संग्रहालय के नाम से एक म्यूजियम की स्थापना की गयी जो कि विभिन्न ग्रामोद्योगों के कार्य के विषय में और ग्रामोद्योग संघ तथा स्पिनर्स एसोसिएशन के संयुक्त नियंत्रण में सफल किये जाने वाले कार्यों के विषय में हमें पूर्ण सूचना प्रदान करता है और स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजनाओं के अन्तर्गत प्रगतिशील भारत की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। सफाई के कार्य की गति यद्यपि बड़ी धीमी है फिर भी गांवों की सफाई, मक्खियों तालाबों और कुओं की सफाई जारी है। घानियों में भी बड़ा सुधार किया गया है ताकि बीजों से अधिकाधिक तेल निकाला जा सके। गुड़ बनाना भी अधिक लोकप्रिय हो रहा है और खांड के स्थान पर गुड़ के प्रयोग के कारण गुड़ की सफाई की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। मधुमक्खी पालन भी बहुत लोकप्रिय हुआ है और लोग इसमें बड़ी दिलचस्पी लेने लग हैं। इसकी लोकप्रियता सारे देश में प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। कागज-निर्माण केन्द्रों की संख्या भी प्रति वर्ष बढ़ रही है। मन की महंगाई के कारण कागज विलक्षण खर्चीला बनता है, और यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे देश के जिन केन्द्रों में सर्वश्रेष्ठ कागज का निर्माण होता है वहाँ इस उद्योग का वाणिज्यिक आधार पर *संगठन सम्भव नहीं हुआ है। साबुन निर्माण के बारे में बड़े परिवर्तन हुए हैं।* साबरमती कार्यालय ने बाहर से मँगाए कास्टिक सोडे का पूर्ण बहिष्कार कर दिया है और वहाँ महुए के तेल तथा सज्जी मिट्टी से साबुन तैयार किया जाता है।

चमड़े के परिरक्षण के विषय में भी बहुत प्रगति हुई है। चमड़े को साफ करके उसकी ऊपरी त्वचा को हटा कर उसके गोल टुकड़े करके उन्हें धूप में सुखाने रख देते हैं और फिर मिट्टी के बर्तनों में उन्हें इकट्ठा करके रख देते हैं। जब इन टुकड़ों के प्रयोग की आवश्यकता होती है तब इन्हें जल में भिगो देते हैं। परिरक्षित चमड़े और ताजे चमड़े के गुणों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि दोनों प्रकार के चमड़ों का एक-सा विश्लेषण है और पहले प्रकार के परिरक्षित चमड़े में भोज्य तत्त्व अधिक पाये जाते हैं। लौह तत्त्व की अधिकता का कारण परिरक्षण के समय लौह के संपर्क में आना है।

चावल का छिलका दूर करने के लिए चक्कियाँ बड़ी लोकप्रिय हुई हैं। महाराष्ट्र

में एक ऐसी चक्की निर्माण की गयी है जो एक घंटे में एक मन के करीब चावल साफ कर देती है और यह सस्ती भी है।

गुड़-निर्माण के विषय में ताड़ के रस में से चूना निकालने के लिए, मद्रास सरकार के औद्योगिक रसायनज्ञ द्वारा एक पत्थर के छान-पात्र की सिफारिश की गई है और यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

कागज-निर्माण में फटे पुराने चीथड़े, पटसन, केले का डंठल, जूट और बांस जैसे कच्चे माल का प्रयोग किया गया है। बोया घास और मरक का रेशा भी इसके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। रद्दी कागज को अलग करने के तरीके भी बड़े फलदायी सिद्ध हुए हैं और लुगदी बनाने, धुलाने और मोम की प्रक्रियाओं का अत्यन्त ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया गया है।

## अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ के अनुसंधान

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ के विस्तृत अनुसंधान क्षेत्र का पता उसके अनुसंधान की अत्यन्त उत्कृष्ट वैज्ञानिक पद्धति से चलता है जो उसके अखिल भारतीय परिपत्रों के अध्ययन से ज्ञात होती है। गुड़ की हुई गन्ने की खांड की अपेक्षा गुड़ का अधिक महत्त्व है क्योंकि गुड़ के मूल्यवान खनिज-तत्त्व उससे पृथक नहीं होते। यह भी एक तथ्य है कि पकाए हुए फल या सीरे में परिरक्षित फल कभी भी अपनी प्राकृतिक अवस्था में विद्यमान कच्चे या पके फलों का स्थान नहीं ले सकते। शहद का सर्वोत्तम उपलब्ध स्थानापन्न गुड़ है परन्तु यह एक दूसरे प्रकार की मिठाई है जिसे हजम करना कठिन है और शरीर की आवश्यकताओं के भी यह उतना अनुकूल नहीं है। जब उपचार के रूप में क्षार का प्रयोग आवश्यक होता है तो सोडा-बाई-कार्बोनेट का बड़ी जरूरत के समय प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु यह प्राकृतिक फलों, सब्जियों और शुद्ध मसालों में पाये जाने वाले क्षारीय लवणों का स्थान कदापि नहीं ले सकता। अपनी प्राकृतिक अवस्था में मक्खन उदासीन होता है न यह अम्लीय होता है और न यह क्षारीय। उबले हुए दूध में अम्ल-निर्माण की प्रवृत्ति होती है। दूध को उबालना उसको सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन है। दही में अम्ल का आधिक्य होता है। सन्तुलित अवस्था के लिए यह आवश्यक है कि अम्ल बनाने वाले पदार्थों के एक भाग के साथ क्षार बनाने वाले पदार्थों के चार भाग मिलाये जायें। जमे हुए दूध के चूर्ण के साथ जो दही जमायी जाती है वह साधारण दही की अपेक्षा अच्छी होती है क्योंकि यह साधारण सन्तुलन में दूध छोड़ती है। घी अपने आप में अम्ल नहीं है परन्तु जब यह गर्म भोज्य द्रव्यों के पकाने में प्रयोग किया जाता है तो कुछ क्षारीय गुणों का समावेश हो जाता है इसलिए ये शुद्ध रूप में प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार तैयार किया हुआ भोजन यद्यपि मामूली रूप में अम्लीय नहीं होता उसके प्रभाव अम्ल-उत्पादक होते हैं। हरिजन के पृष्ठों में

या मैनकेक ने प्रश्नकर्त्ताओं के लाभ के लिए ये उपयोगी सूचनायें उत्तरों के रूप में प्रदान की हैं।

बहुधा हम पश्चिमी स्कूलों में प्रशिक्षित अर्थशास्त्रियों को और कालेजों के प्रोफेसरों को लोगों को अपना जीवन-स्तर उन्नत करने के निमित्त प्रेरणा देते हुए सुनते हैं। वे यह अनुभव नहीं करते कि जीवन-स्तर को उन्नत करने का अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तुओं के बाजार का विस्तार और यदि ये वस्तुएँ फैशन की वस्तुएँ होती हैं, प्रायः ऐसा होता है कि हमारे देश के कस्बों और शहरों से धन का प्रवाह विदेशों की ओर होता है। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ का उद्देश्य देश की संपत्ति को विदेशों में जाने से रोकना है ताकि आस-पास के क्षेत्रों में व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहन प्राप्त हो और स्थानीय उत्पादन की बढ़ोतरी हो। श्री कुमारप्पा के शब्दों में देश का धन उसी ग्राम क्षेत्र में रहना चाहिए जहां से जनता को अपनी सेवाओं के बदले में अपनी श्रमशक्ति के लिए वेतन मिलता है और जरूरत की वस्तुएँ भी प्राप्त होती हैं। बाहर के देशों से अधिक संख्या में उपभोक्ता वस्तुओं के आयात का अभिप्राय है दूसरे देशों को कच्चे माल का निर्यात करना। इसका अर्थ है श्रमशक्ति का अधिक परिमाण में दूसरे देशों को स्थानान्तरण और अपने देश में दुःख-दैन्य एवं बेकारी का विस्तार। श्री कुमारप्पा के करुणाजनक शब्दों में कहें तो "भूखे आदमी की आवश्यकताओं को बढ़ाने का अभिप्राय है उसके भूख के कष्ट को और अधिक बढ़ाना। जीवन-स्तर उन्नत करने से हमारा क्या अभिप्राय है? हम जापानी चटाई, पर्शियन गलीचा, आस्ट्रियन बैंटरी, अमेरिकन स्टोव, बरमिंघम का कांसी पीतल वाला सामान, चीनी प्याले और प्लेटें, जर्मन चमचे और कांटा छुरी, चैकोस्लोवाकिया की बनी तीन जोड़ों वाली मेजें, लंकाशायर का मेजपोश, आस्ट्रिया की कुर्सियां, एफ० एच० आयर के मोजे और हैट, लन्दन की विक्लिर्टन की शर्टें और डच पीकम बिस्कुट, आस्ट्रेलियन दूध, जावा की खांड, फ्रांसीसी कॉफी और बाहरी अचार-मुरब्बे के पीछे भागते हैं। जीवन-स्तर को उन्नत करने का यही अभिप्राय है। इसके अर्थ हैं अपने देश का पैसा बाहर भेजना। यह सच है कि हमारे देश के लाखों लोग भूखों मर रहे हैं और उनके निम्नतम स्तर को हमें उन्नत करना है परन्तु जब आप इस सम्बन्ध में मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग के विषय में विचार करते हैं तब आप ऐसे उपायों के बारे में विचार करते हैं जो कि लाखों भूखों और नंगों को पूर्ण नाश की ओर ले जाने वाले हैं।

## आर्थिक विजय

बड़े-बिरले लोग हिन्दुस्तान की आर्थिक दृष्टि से विजय को स्वीकार नहीं करते। हमारे देश की ब्रिटिश विजय का स्वरूप केवल राजनीतिक ही नहीं था अपितु सामाजिक, आर्थिक नैतिक और सांस्कृतिक भी था। भारत में ब्रिटिश शासन की प्रारम्भिक उत्पत्ति ईस्ट

इंडिया कम्पनी सर्वप्रथम ज्वायन्ट स्टाक कम्पनी थी जिसका अत्यधिक विस्तार हुआ और जिसने अंग्रेजों को समृद्धिशाली बनाया। इसका प्रारम्भ डचों द्वारा बहुत बड़े परिमाण में कमाए गए मुनाफों से हुआ जिन्होंने एक पौंड काली मिर्च का दाम ३ शिलिंग से एकदम ६ और ८ शिलिंग तक कर दिया था।

प्लासी के जमाने में प्रभूत धनराशि इंग्लैण्ड ले जायी गयी और ऐसा कहा जाता है कि अकेले बंगाल से ईस्ट इंडिया कम्पनी और इसके सेवकों ने १७५७ से लेकर १७६६ के बीच ६ लाख पौण्ड से अधिक रुपया रिश्वतों के रूप में लिया। सन् १७६७ में इस लूट में ब्रिटिश सरकार ने भी प्रत्यक्ष भाग लिया जब उसने कम्पनी को प्रति वर्ष ४ लाख पौंड इंग्लैण्ड के खजाने में जमा कराने पर मजबूर किया। आर्थिक इतिहासज्ञ इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति का कारण औपनिवेशिक साम्राज्य के एकाधिकारी नियन्त्रण पर मुख्यतः आधारित व्यापार की द्रुत गति से वृद्धि और भारत के प्रत्यक्ष शोषण को बताते हैं। सन् १८१३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापार के एकाधिकार की समाप्ति भारत के आर्थिक शोषण में एक सीमा-चिह्न था। सन् १८ १ में प्रथम बार लंकाशायर का कपड़ा हमारे देश में आना शुरू हुआ और १८ ३ में ६ लाख रुपये के मूल्य का आयात किया जाने वाला सूती माल आगे चल कर दो करोड़ रुपये तक जा पहुँचा। इसने भारत के हाथ करघा उद्योग का पूर्ण विनाश कर डाला। १८३५ में ला बैंटिंग ने कहा "भुखमरी की हालत को पहुँचे हुए गरीब भारतीय जुलाहों की बदकिस्मती का क्या ठिकाना ? और इसका एकमात्र कारण क्या है ? इंग्लैण्ड की बनी हुई सस्ती वस्तुओं की बहुतायत। इनमें से अधिकांश भूख से मर गये दूसरों ने दूसरे व्यवसाय मुख्यतः कृषि के व्यवसाय अपना लिये। अपने सौंदर्य और कलात्मक श्रेष्ठता के लिए विश्वविख्यात ढाका की मलमल के विनाश का भी यही कारण था।[१] भारतीय वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र ढाका की आबादी १८१५ से १८३७ के बीच १५ से २ रह गयी। इस प्रकार हमारा देश जो औद्योगिक और कृषि की दृष्टि से बड़ा समृद्ध था पूर्णतः एक कृषिप्रधान देश हो गया जो कि ब्रिटेन को खाद्य पदार्थ और कच्चा माल भेजता था और ब्रिटेन से निर्मित वस्तुओं का आयात करता था जिसका निर्माण वह पहले स्वयं कर रहा था।

भारतीय जहाजरानी की कथा भी इतनी ही करुणाजनक है। मौरोल्ड टायकर "भारत का इतिहास" में कहते हैं —

> भारत में भारतीयों द्वारा बने जहाज जब लन्दन की बन्दरगाह में पहुँचे तो जहाज उद्योग के एकाधिकारियों में खलबली फैल गयी। खतरे की घंटी बजाने में लन्दन के जहाज निर्माताओं ने नेतृत्व किया। उन्होंने यह घोषणा की कि उनका

१ ढाका की मलमल की अच्छी और करुणाजनक कहानी अन्यत्र दी गयी है।

व्यापार खतरे में है और इंग्लैण्ड के जहाजरानी उद्योग में लगे हुए पुरुषों के परिवार निश्चित ही भूखों मरने की दशा में हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों की १७ जनवरी १८ १ की रिपोर्ट से जिसमें उन्होंने भारत और इंग्लैण्ड के बीच व्यापार के निमित्त भारत में बने हुए जहाजों के प्रयोग करने का विरोध किया था निम्नलिखित तर्क उद्धरणीय है।

> कोई भी ब्रिटेन निवासी यह नहीं चाहेगा कि उनके बहादुर देशवासी जिन पर उनका देश गर्व कर सकता है बिना रोजी और रोटी के रहें जब कि पूर्व के निवासी हमारी अपनी बन्दरगाहों में ऐसे जहाज लेकर आते हैं, जिनके स्वामी अंग्रेज हैं। इसलिए आर्थिक, नैतिक, व्यापारिक और राजनीतिक दृष्टि से विचार करने पर, ब्रिटिश जहाजरानी व्यापार में भारतीय नाविकों के प्रवेश के प्रत्यक्ष परिणामों पर हमें जबर्दस्त आक्षेप है और हम ऐसे जहाजों को जिन पर भारतीय नाविक कार्य कर रहे हैं विशेष रियायत देने के विरुद्ध हैं।

एक ब्रिटिश इतिहासकार का कथन है "भारतवर्ष साम्राज्य का व्यापारिक केन्द्र और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध देश है हमारा देश ऐसी ऊँचाइयों से रसातल में पहुँचा है। रचनात्मक कार्यक्रम राष्ट्र-पुनर्निर्माण का कार्यक्रम है और हमें इसका विस्तार से अध्ययन करना चाहिए।

## रचनात्मक कार्यक्रम और अहिंसा

सन् १९३९ में वृन्दावन में गांधी सेवा संघ के एक वार्षिक सम्मेलन में भाषण करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था —

> परन्तु यह मुझे उस महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर ले जाता है, जो आपने पूछा है— 'अहिंसा और रचनात्मक कार्यक्रम में क्या संबंध है ? वे परस्पर इतने घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध क्यों हैं ? मेरे विचार में यह प्रायः स्पष्ट है कि अहिंसा के बिना हिन्दू-मुस्लिम एकता मद्यनिषेध और अस्पृश्यता-निवारण असम्भव है। केवल एक चर्खा बच जाता है। यह किस प्रकार अहिंसा का प्रतीक बनता है ? जैसे कि मैंने पहले समझाया है असली चीज तो भावना है जिससे आप चर्खे को समझते हैं, और वे गुण हैं जो आप इस पर आरोपित करते हैं। यह कोई कुर्सन की बोली तो नहीं है जिसमें कुछ निश्चित गुण अन्तर्निहित हैं। चर्खे में ऐसा कोई अन्तर्निहित गुण नहीं है। गम्भीरी मन्त्र का उदाहरण लें। यह एक अ-हिन्दू के लिए वैसा प्रभाव नहीं रखता जैसा यह मेरे लिये रखता है। इसी तरह कलमे की मेरे ऊपर वही प्रतिक्रिया नहीं होती जो मुसलमानों पर होती है। इसी प्रकार स्वयं चर्खे में ऐसी कोई चीज नहीं है जो हमें अहिंसा सिखा

सकती है या स्वराज्य ला सकती है। इसका स्पष्ट मूल्य तो गरीब की सेवा है परन्तु इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं कि यह अहिंसा का प्रतीक हो या स्वराज्य के लिए एक अनिवार्य शर्त हो। परन्तु सन् १ से मैंने चर्खे का स्वराज्य और अहिंसा के साथ संबंध जोड़ा है। फिर हमारे सामने आत्म-शुद्धि का कार्यक्रम है जिसके साथ फिर चर्खा घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। मोटा घर में कता हुआ सूत जीवन की सादगी और इसलिए शुद्धि को परिलक्षित करता है।

चर्खे के बिना हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना और अस्पृश्यता-निवारण के बिना यह अवस्था नहीं हो सकती। यह अवस्था हमारे स्व-आरोपित नियमों के हार्दिक पालन की पूर्व-कल्पना करती है और इनके बिना तो यह एक निर्जीव परिहास होगा। राजकोट की परीक्षणशाला में मैं दृढ़ विश्वास के साथ इसी परिणाम पर पहुँचा हूं, अगर एक आदमी भी सारी शर्तों को पूरा करता है तो वह स्वराज्य प्राप्त करने का अधिकारी है। मैं अभी उस आदर्श सत्याग्रही बनने की स्थिति से बहुत दूर हूं। मैंने यही चीज उस समय कही थी जब हम रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह संग्राम का संगठन करने के लिए एकत्रित हुए थे। जब सत्याग्रह शुरू हुआ तो हम मुट्ठी भर आदमी थे परन्तु हमने उन मुट्ठी भर आदमियों से ही एक बड़ा भारी संगठन बना लिया। मैं एक अपूर्ण सत्याग्रही हूं, इसलिए मैं आपका सहयोग चाहता हूं। संगठन करने और आपका सहयोग पाने की प्रक्रिया में मैं स्वयं बढ़ता हूं क्योंकि मेरा आत्म-निरीक्षण कभी बन्द नहीं होता। जब मैं अपनी परीक्षा करता हूं मैं यही देखता हूं कि मैं बढ़ रहा हूं और मेरा विकास हो रहा है। ट्रान्सवाल में सत्याग्रह का जन्म हुआ परन्तु कुछ हजार लोगों ने ही इसे वहां अपनाया परन्तु यहां इसे लाखों लोगों ने अपनाया है। कौन यह जानता था कि ६ अप्रैल, १९१९ को मद्रास से किये गये मेरे आवाहन के प्रत्युत्तर में लाखों आदमी एक साथ उठ खड़े होंगे। परन्तु अन्तिम सफलता के लिए रचनात्मक कार्यक्रम अनिवार्य है। वस्तुतः, आज तो मैं ऐसा सोचता हूं कि हम राष्ट्र के प्रति सच्चे और वफादार नहीं होंगे अगर हमने अहिंसा के प्रतीक के रूप में चर्खे के कार्यक्रम को पूर्ण न किया, भले ही इसमें कितना समय लगे।

## मध्यप्रदेश की औद्योगिक सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट

मध्य प्रदेश शासन द्वारा १५ दिसम्बर सन् १८ को नियुक्त औद्योगिक सर्वेक्षण समिति ने सन् १९ की गर्मियों में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसका सारांश हम पाठकों

के लाभ के लिए नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं। इस रिपोर्ट में राष्ट्रीय आयोजना—हमारे कार्य क्षेत्र में प्राप्य कच्चे माल की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति की आर्थिक गतिविधि की आयोजना—पर बल दिया गया था। रिपोर्ट का सारांश इस प्रकार है

## १ राज्य के कार्य

प्रत्येक सामाजिक संगठन उदाहरणतः एक राष्ट्र या प्रान्त जैसी राजनीतिक इकाई के लिए दूरस्थ एवं समीपस्थ दृष्टिबिन्दुओं के उचित अनुकूलन की आवश्यकता है। सामान्यतः एक व्यक्ति के हित सीमित होते हैं। जहां ये हित समाज के सामान्य कल्याण के विरुद्ध जायें इन हितों का संतुलन करना एक संगठित समाज का कर्तव्य है ताकि सामाजिक इकाई का किसी प्रकार की कोई हानि न पहुंचे। इसी प्रकार जब हम यह देखें कि ग्राम की आर्थिक इकाइयों के हितों और शहरी औद्योगिक इकाइयों के हितों में परस्पर संघर्ष है तो उस समय सारे समाज के आर्थिक कल्याण के लिए अनुकूलन आवश्यक होता है। क्योंकि राज्य को यह कार्य सौंपा गया है इसलिए राज्य के प्रशासन अधिकारियों का सर्वसाधारण की भलाई के लिए हस्तक्षेप करना न्यायसंगत होगा। दुर्बलों के हितों की अवश्य रक्षा की जानी चाहिए और राज्य ने कुछ ऐसे कार्य भी सम्पादित करने हैं जिन्हें एक नागरिक व्यक्तिगत रूप में सम्पन्न नहीं कर सकता जैसे उदाहरण के लिये विपणन सुविधाओं का संगठन और लोगों की आवश्यकताओं का अध्ययन। इन दोनों के लिए समय और धन की जरूरत होती है जो व्यक्ति के साधनों और क्षमता से परे है।

## २ टैक्स और व्यय

राज्य अपने कार्य जनता पर टैक्स लगाकर पूरे करता है। अगर राज्य जनता के लिए है तो स्पष्टतः यह परिणाम निकलता है कि टैक्स ऐसे नहीं लगाने चाहिए जो आर्थिक दृष्टि से लोगों को नुकसान पहुंचाने वाले हों। प्रशासन का यह एक बड़ा कर्तव्य हो जाता है कि वह यह देखे कि राज्य के व्यय धन के वितरण में इस प्रकार सहायक हों जिससे संपूर्ण रूप से राष्ट्र के धन में वृद्धि हो। अगर टैक्स गरीबों से लिये जाते हैं और खर्च से संपन्न आदमी समृद्ध होते हैं तो राष्ट्रीय कार्यों के मानवीय मूल्य को जो स्थान मिलना चाहिए, वह नहीं दिया जाता। यह खास तौर से भारत जैसे गरीब देश पर लागू होता है जहां हमें अधिक से अधिक बचत करनी है। बचत से यह अभिप्राय कदापि नहीं कि राज्य द्वारा गरीबी पाले वाली वस्तुएं सस्ती मूल्य में गरीबी बाये क्योंकि सरकार को अपने खर्चों पर केवल धन के दृष्टिबिन्दु से ही विचार नहीं करना है। अपने देश की बनी हुई स्थानीय वस्तुओं या विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक महत्व देना चाहिए क्योंकि इस प्रकार धन

अपने देश में ही रहेगा और कीमतें नागरिकों की क्रयशक्ति क्षमता को प्रभावित नहीं करेंगी। धन का वितरण होगा और स्थानीय व्यापार एवं कला-कौशल को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु इसके विपरीत अगर विदेशी वस्तुएं खरीदी जायेंगी तो धन-शक्ति समुद्र-पार विदेशों में स्थानान्तरित हो जायेगी जिससे विनिमय के निर्बाध प्रवाह में बाधा उपस्थित होगी। जब तक आयात और निर्यात किये जाने वाले माल पर पूंजी विनिमय नियंत्रण और जहाज भाड़ा आदि के कृत्रिम बन्धन विद्यमान हैं तब तक स्वतन्त्र बाजार में वस्तुओं के स्वतन्त्र प्रवाह से उत्पन्न होने वाली पारस्परिक सद्भावना की हम अपेक्षा नहीं कर सकते।

यह जानने के लिए सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है कि किस प्रकार राज्य के खर्चे जनता के उत्पादन-प्रयत्नों में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ? जो सरकार सरक्षेपण को अपना मापदण्ड निर्धारित करती है और विदेशी वस्तुएं खरीदती है वह अपने क्षेत्राधिकार में बेकारी पैदा करने की दोषी है क्योंकि उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से लोगों को काम मिलता है। जब वस्तुएं विदेशों से मंगायी जाती हैं तो ऐसी वस्तुओं की मांग से जो काम मिल सकता है उससे अपना देश वंचित रह जाता है। इसलिए कोई राज्य अपने खर्चे के तरीके से बेकारी या कार्य-नियोजन की अवस्थाएं उत्पन्न कर सकता है। बाहर से आयात किया हुआ पदार्थ कितना ही सस्ता हो वह कार्य-नियोजन की दृष्टि से बहुत खर्चीला है और जो राज्य इसे खरीदता है वह स्पष्टतः अपनी जनता की सेवा नहीं कर रहा।

## ३ पूंजी और श्रम-धन

हमारा अर्थशास्त्र पश्चिम के अर्थशास्त्र से बहुत भिन्न है। उसके संगठन इस कल्पना पर आधारित हैं कि वहां पूंजी का प्राचुर्य है। औद्योगिक क्रांति के बाद से उत्पादित वस्तुओं के श्रम और लागत के खर्च को घटाने और विनियोगियों के मुनाफों को बढ़ाने के प्रयत्न किये गये।

हमारे देश के किसी गांव का निरीक्षण करने आप चले जाइये आपको पता चलेगा कि हमारे देश में पूंजी कम और श्रम बहुत अधिक है। इसलिए, हमारे वास्ते समृद्धि की कोई भी व्यवस्था इस तथ्य पर आधारित होगी कि हमारे यहां श्रम की बहुतायत है इस पर नहीं कि पूंजी कितनी प्राप्त है। मूल उद्योगों और सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के विषय में और प्राकृतिक साधनों के उपयोग में जहां कि बड़ी पूंजी अभीष्ट है राज्य को जनता की तरफ से इन महान् कार्यों का श्रीगणेश करना चाहिए। एक अवस्था में जो मापदण्ड प्रयुक्त किया जाता है वह दूसरी अवस्था में नहीं किया जा सकता। हमारे अपने देश की अवस्था में हमें यह देखना होगा कि वस्तुओं के उत्पादन के लिये साधन-सामग्री सस्ती से सस्ती हो। जहां किसी वस्तु में श्रम की लागत का प्रतिशत ऊंचा होता है वह इस ओर निर्देश करता है कि धन का वितरण उस वस्तु के उत्पादन में ही हुआ है।

हम जो चाहते हैं वह यह है क्योंकि सरकार जो धन लेती है वह उसे जनता की वार्षिक आय से प्राप्त होता है इसलिए सरकार को खर्च भी इस प्रकार करना चाहिए कि वह पुनः जनता के पास वापस लौट जाय।

उदाहरण के लिये सारे भारत में यहां तक कि ग्रामीण और जंगल के क्षेत्रों में भी रेलवे लाइन के किनारे-किनारे जो तार के खम्भे लगे हैं वे सब फौलाद के हैं जब कि हमारे देश में इमारती लकड़ी का प्राचुर्य है। अमरीका और इंग्लैंड जैसे धनी देशों में भी ये खम्भे लकड़ी के बने होते हैं। इसके समर्थन में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि फौलाद के खम्भे चिरस्थायी होते हैं और लकड़ी को खम्भों के दीमक लग जाने का भय है और वे जल्दी खराब हो जाते हैं। किसी भी राज्य या सार्वजनिक सेवा संस्था को खर्चे के विषय में ऐसा तर्क प्रस्तुत नहीं करना चाहिए क्योंकि यह राष्ट्र-हित-विरोधी है। अगर इमारती लकड़ी का प्रयोग किया जायगा तो बहुत से लोगों को रोजगार मिल सकेगा। लकड़ी के खम्भे अगर कम टिकाऊ होंगे तो इससे भी होंगे और यदि इन खम्भों को बार-बार बदलना पड़ेगा तो टैक्स द्वारा प्राप्त धनराशि में से इस पर खर्च किये गये रुपये का देश में बार-बार परिभ्रमण होगा। साधारणतः राज्य को लोगों से इकट्ठे किये हुए राजस्व को अपने पास पूंजी रूप में सुरक्षित नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे अनावश्यक रूप से धन का प्रचलन अवरुद्ध हो जाता है और ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जिससे देश में आर्थिक विपन्नता उत्पन्न हो जाती है। टैक्स देने वाले लोग बड़ी मुश्किल से प्रारंभिक आवश्यकता की चीजें जुटा पाते हैं। ऐसे लोगों से धन-संग्रह करके इसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखना एक गलत आर्थिक नीति है। उचित तो यही है कि इस धनराशि का उपयोग किया जाय।

इस नीति का दूसरा लाभ यह है कि यदि आस्तियां जल्दी ही समाप्त हो जाती हैं, तो सरकार को धन के लिये फिर जनता के पास जाना पड़ेगा और जनता के सामने अपने कार्य-कलाप को अधिक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना पड़ेगा। एक प्रजातांत्रिक संस्था के सार्वजनिक खर्चे पर यह एक आवश्यक अवरोध है इससे फिजूलखर्ची की प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगता है।

समिति का सुझाव यह है कि प्रति वर्ष हर गांव में एक विवरण प्रकाशित करना चाहिए जो यह प्रदर्शित करे कि उस गांव से सरकार ने कितनी आय इकट्ठी की है और सरकार उस संबंधित गांव पर कितना खर्च करेगी। यह विवरण गांव के स्कूल डाकघर और अस्पताल जैसे प्रमुख स्थानों पर लटका देना चाहिए।

हमारी आर्थिक व्यवस्था का एक और पहलू भी है जिसे हम बहुत कम समझते हैं। भारत में जैसा कि हमने पहले बताया है उद्योगों का आधार पूंजी की अपेक्षा श्रम पर अधिक होना चाहिए। हम अपने कुटीर और ग्रामोद्योगों को इस योग्य बना सकते हैं कि वे केन्द्रीकरण की प्रणाली के अन्तर्गत निर्मित विदेशी वस्तुओं का मुकाबला कर सकें। गांवों

में रहने वाले गरीब जरूरतमन्द लोगों के घर गारे और फूस के बने होते हैं जबकि ठाकुरों और मालगुजारों के घर पक्की ईंटों सीमेंट और टाइलों के बने होते हैं। यह केवल गरीबी का चिन्ह नहीं है अपितु हमारी आर्थिक व्यवस्था का भाग है और शताब्दियों से परिस्थितियों और पर्यावरण के प्रति हमारी अनुकूलता की ओर निर्देश करता है। अगर एक पक्के मकान की मरम्मत की जरूरत पड़े तो बाहर से राज को बुलाना पड़ेगा और उसकी मजदूरी देनी पड़ेगी जबकि झोंपड़ी में रहने वाला अपनी झोंपड़ी की बिना किसी खर्चे के स्वयं मरम्मत कर लेगा और उसकी दीवारों को स्वयं लीप पोत लेगा। ईंट के पक्के मकानों को बनाये रखने के लिये धन की जरूरत होती है इसलिए प्रायः उनकी मरम्मत ठीक से नहीं हो पाती जबकि हरिजन अपने घरों को सुव्यवस्थित और साफ-सुथरा रख सकते हैं क्योंकि उनका श्रम ही उनका धन है।

## ४ धन और वस्तु-विनिमय का अर्थशास्त्र

इस संबंध में हम यह भी बता दें कि हमारे देश में वस्तुओं के रूप में आर्थिक अदायगी की प्रणाली प्रचलित करना भी कई दृष्टियों से उचित है। धन के प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया जाता है। इसकी जरूरत तो पश्चिम के आर्थिक संगठन के कारण पड़ी है, जहां उद्योगों के लिए प्रारंभिक आवश्यकता की वस्तुएं भी बहुत दूर-दूर से आती हैं। हम कच्चे माल के लिए जितनी अधिक दूर जाते हैं धन की व्यवस्था भी उतनी अधिक करनी पड़ती है। धन कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो किसी प्रारंभिक आवश्यकता को संतुष्ट करता है और इंसान केवल धन के सहारे ही जिन्दा नहीं रह सकता। यह दूसरों के जीवनों का नियंत्रित करने की मनुष्य की शक्ति का प्रतिनिधि है। धन का स्वामी एक ऐसे आधार पर स्थित है जो कि विनिमययोग्यवस्तुओं के स्वामी के आधार से भिन्न है। इस अवस्था में वस्तु-विनिमय संभव नहीं है जबकि एक आदमी की सौदा करने की शक्ति अधिक मजबूत है। स्वयं स्वर्ण का मूल्य नहीं घटता अपितु बहुत सारी वस्तुएं जिनके लिए इसका विनिमय किया जाता है उनका समय के साथ और आन्तरिक रूप से मूल्य घट जाता है। इसलिए यदि हम गांवों में विस्तृत आधार पर धन की अर्थ-प्रणाली का स्थापन करते हैं तो हम गरीब को धनी की दया पर छोड़ देते हैं। इसलिए हमारे देश में तो इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था का प्रचलन होना चाहिए जिससे गांव वाले विश्व-बाजार पर तो कम निर्भर रहें और अपनी उत्पादक शक्तियां पर अधिक।

## ५ वस्तु-विनिमय और सरकारी धनराशि

इस संबंध में अधिकतर प्रवृत्ति यह रही है कि सरकारी कार्यों के लिए जनता से ली जाने वाली श्रम-शक्ति के मानवीय मूल्य को कम किया जाय। जो लोग जिन्दगी की जरूरियात को भी पूरा नहीं कर पाते उन्हें सरकारी प्रशासन में भारी खर्चे को वहन करना पड़ता

है। जब कभी समिति के सदस्य गांव वालों के अतिथि हुए वे मिट्टी के फर्श पर या बरामदों में या पशुओं के पास खुले स्थानों में बहुत ही अस्वास्थ्यप्रद अवस्थाओं में सोए। ग्राम वासियों की अतिथि-सत्कार की भावना के अभाव के कारण ऐसा नहीं था—क्योंकि गरीबों के दिल बड़े खुले होते हैं—परन्तु उन के पास इतना धन नहीं था। एक फालतू चारपाई भी नहीं मिल पाती थी। सरकारी धनराशि अधिकांशतः इन लोगों से इकट्ठी की जाती है और वह इस प्रकार खर्च की जाती है जिसका इन लोगों से कोई संबंध नहीं होता जिनसे हम राजस्व इकट्ठा करते हैं। कहां तो वैभव-विलास से युक्त विधानसभाओं के विश्राम कक्ष और कहां गरीबों की ये झोंपड़ियां! बड़े बड़े विशाल प्रासादों का निर्माण ही मानवीय मूल्यों में देश की राष्ट्रीय संपत्ति के ह्रास का कारण है।

अगर कुछ सीमा तक राजस्व वस्तुओं के रूप में इकट्ठा किया जाय तो यद्यपि संग्रह के खर्च अधिक हो सकते हैं परन्तु सीमान्त उपयोगिता का सुरक्षण विशेषतः मानवीय मूल्यों के रूप में प्रशासनिक कठिनाइयों को न्यायसंगत ठहराता है। हम पूर्ण वस्तु-विनिमय की प्रणाली की सिफारिश नहीं करते परन्तु हम ऐसा अनुभव करते हैं कि कुछ सीमा तक अगर वस्तुओं में अदायगी की योजना समुचित रीति से बनाई जाय और कार्यान्वित की जाय तो इससे बहुत हद तक जनता के कष्ट दूर हो सकेंगे।

## ६ कच्चा माल उत्पादन और मुनाफ़ा

दूसरा आधारभूत विचार जिसकी हम उपेक्षा कर रहे हैं यह है कि किसी पदार्थ पर उसकी उपभोग्य स्थिति के समीप जो श्रम लगाया जाता है उससे अधिक लाभ होता है अपेक्षाकृत उस श्रम के जो कि कच्चे माल की स्थिति के समीप लगाया जाता है क्योंकि यहां व्यय-वहन की योग्यता का सिद्धान्त कार्य करता है। एक उपभोग्य वस्तु को अगर हम १ रुपये में बेचें तो हम आसानी से उस पर ५ रुपये का लाभ कमा सकते हैं जबकि वे कच्चे माल जिनसे यह पदार्थ बन कर तैयार हुआ है १ रुपये की लागत के हों और उनमें यद्यपि उसी अनुपात में ८ आने का लाभ हो परन्तु ५ रुपये का लाभ उनमें कभी नहीं होगा। इसलिए पदार्थ की उपभोग्य स्थिति के निकट काम करने वाले कारीगर को अपने परिश्रम का अधिक पुरस्कार मिलेगा अपेक्षाकृत उस कारीगर के जो कि कच्चे माल की स्थिति पर कार्य कर रहा है। एक सीमित क्षेत्र में इन दोनों स्थितियों में कार्य करने वाले लोग होंगे और इसलिए समग्र रूप से समाज को कोई हानि नहीं होगी। परन्तु हमारा वर्तमान संगठन ऐसा है कि व्यक्तियों की एक श्रेणी उपभोग्य पदार्थों पर कार्य कर रही है और दूसरी कच्चे माल के उत्पादन पर। ये दोनों न केवल एक-दूसरे से हज़ारों मील दूर हैं अपितु इनमें सब प्रकार के कृत्रिम बन्धन विद्यमान हैं। पहली श्रेणी तो लाभ में रहती है और दूसरी श्रेणी को हमेशा ही कम अदायगी के रूप में नुकसान उठाना पड़ता है।

प्रकार के टैक्स लगाये गये हैं और इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि ऐसे प्रतिबन्धों से उत्पादन को कितनी हानि पहुंचेगी। कच्चे माल की स्थिति के निकट जितना अधिक टैक्स लगाया जायगा उतना अधिक उत्पादन में बाधा उपस्थित होगी। न केवल सरकारी टैक्स उद्योगों को नुकसान पहुंचा रहे हैं अपितु स्थानीय संस्थाओं के टैक्स के कारण भी जनता पर टैक्सों का असह्य बोझ हो गया है। चेतावनी के तौर पर हम यह निवेदन कर दें कि अब टैक्सों का बोझ ऐसी सीमा तक पहुंच गया है कि अगर गलती के सुधार के तात्कालिक प्रयत्न न किये गये तो शीघ्र ही संकट उठ खड़े होने की संभावना है।

बड़े गांवों की नगरपालिकाओं का आर्थिक संगठन भी वैज्ञानिक नहीं है। उनका मुख्य उद्देश्य तो राजस्व का संग्रह होता है। अविवेकपूर्ण टैक्सों से बहुत से उद्योगों का विनाश हो गया है। यही चीज बड़े जिले के नगरों पर लागू होती है। गांव वाले अज्ञानी हैं और वे यह नहीं जानते कि वे किन उद्देश्यों के लिये टैक्स अदा करते हैं और कई बार तो अज्ञान के कारण निर्धारित से भी अधिक टैक्स दे देते हैं। सरकार का यह कर्तव्य है कि वह कर प्रणाली का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करे और यह देखे कि इन टैक्सों से ग्रामोद्योगों को यदि वे कोई सहायता नहीं पहुंचा सकते तो कम से कम कोई हानि तो न हो।

टैक्सों की प्रवृत्ति कच्चे माल की कीमतों को बढ़ाने की रही है। टैक्स जिस अवस्था में और जिस स्थान पर लगाये जाते हैं वे गलत हैं।

संक्षेप में समिति की रिपोर्ट का सारांश इस प्रकार है। रिपोर्ट में हमारे देश के अर्थशास्त्र और पश्चिम के अर्थशास्त्र में स्पष्ट भेदक रेखा खींची गयी है। पश्चिम में पूंजी का प्राचुर्य है और एकमात्र लक्ष्य उत्पादित पदार्थों की श्रम लागत को कम करना और विनियोजकों के मुनाफों को बढ़ाना है। परन्तु हमारे देश में पूंजी कम है और श्रम का प्राचुर्य है। भारत सरकार को यह स्वीकार करना होगा कि उसे जनता की वार्षिक आय से धन प्राप्त होता है इसलिए यह धनराशि भी जनोपयोगी कामों पर व्यय की जानी चाहिए। जब अमरीका इंग्लैंड स्वीडन और नार्वे में लकड़ी के तार के खम्भे प्रयोग किये जाते हैं तो हिन्दुस्तान में वे क्यों नहीं किये जा सकते। लकड़ी जल्दी खराब हो जाती है यह कोई युक्ति नहीं है क्योंकि लकड़ी तो हमारे जंगलों में बहुत होती है। कच्चे मकान बनाने में भी आर्थिक पक्ष है। अगर पक्के मकान की मरम्मत करानी पड़े तो इसमें कच्चे मकान की अपेक्षा अधिक खर्च पड़ता है। यही वजह है कि गांव वालों का धन नुकसान होता है। गांव वालों के बारे मिट्टी के मकान तथाकथित ईंट के मकानों से ज्यादा साफ-सुथरे होते हैं। धन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो किसी प्रारम्भिक आवश्यकता की पूर्ति करे और मनुष्य केवल धन के सहारे ही जिन्दा नहीं रह सकता। यह एक ऐसी वस्तु है जो बाहर से हमारे देश में आयी गयी है। कौन नहीं जानता कि एक स्थान पर इसका आधिक्य हो जाता है और दूसरे स्थान पर कमी। मूल्य और विनिमय के एकाधिकार के कारण बाजार में धन की विभिन्नताएं

और कीमतों में उतार-चढ़ाव पाए जाते हैं। इन अवस्थाओं से वस्तुतः बाजार की शक्ति मग्न होती है। इसलिए गांधी अर्थ-व्यवस्था का एक उद्देश्य धन के स्थान पर वस्तु-विनिमय की प्रणाली को प्रतिष्ठित करना है। अगर हम धन के अर्थशास्त्र का प्रयोग करायें तो उसका अभिप्राय होगा गरीबों का धनियों की दया पर छोड़ देना। एक आधारभूत चीज जिसकी हम उपेक्षा कर रहे हैं यह है कि उपभोग्य निर्यात के निकट वस्तु पर कमाने वाले धन से अधिक अर्जित लाभ होता है अपेक्षाकृत उस धन के जो कि कच्चे माल की स्थिति से निकट कमाया जाता है। परिणाम यह होता है कि निर्यात के निकट वस्तु पर कार्य करने वाले श्रमिक हमेशा लाभ में रहते हैं और कच्चे माल की स्थिति के निकट वस्तु पर कार्य करने वाले श्रमिकों को हमेशा कम पैसे मिलते हैं। कच्चे मालों के निर्यात से बेकारी बढ़ती और गरीबी फैलती है। फैक्ट्रियों के लिए वाणिज्यिक फसलें उगाने वाला श्रमिक फैक्ट्री के मजदूर से बदतर हालत में रहता है। कृषि विभाग ने विशुद्ध खाद्य फसलों का औद्योगिक फसलों की अपेक्षा वाणिज्यिक फसलों की ओर अधिक ध्यान दिया है। ताड़ के गुड़ की सर्वथा उपेक्षा कर दी गयी है। गन्ने की गहन खेती की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि यह मिलों के लिए एक अच्छा कच्चा माल है। कार्यक्षमता की ओर सरकार का ध्यान अधिक है परन्तु इस तथ्य को सर्वथा विस्मृत कर दिया जाता है कि कुछ सीमाओं के बाद कार्यक्षमता भी भारी खर्चों के कारण हानिप्रद हो जाती है। अपनी समस्त लाल-फीताशाही के साथ प्रशासनिक क्षमता जड़ता की स्थिति तक पहुंच चुकी है और सृजनात्मक कार्य शक्ति का बिल्कुल ह्रास हो गया है।

अगर ग्रामों में पुनर्जीवन का संचार करना है तो हमें उन्हें उनके आजीविका के साधनों को पुनः प्राप्त कराना होगा। ग्रामवासियों से सारे टैक्स नकद इकट्ठे न करके उनका कुछ अंश अनाज के रूप में इकट्ठा करना होगा।

ग्रामवासियों को नई विचारधाराओं से परिचित नहीं कराया जाता। उन्हें नये औजार नहीं दिये जाते। पदाधिकारियों और ग्राम-नेताओं में घनिष्ठ संपर्क नहीं होता। केवल मौखिक भाषणों के तीरों से जनता को जाग्रत नहीं किया जा सकता अपितु गुड़ से लेकर अन्य तक लघु उद्योगों के वास्तविक क्रियाकलाप को ग्रामीणों के सामने रख कर और यह प्रदर्शित करके कि किस प्रकार इन उद्योगों से उन्हें काम मिल सकता है और भूखे इंसानों को आजीविका के साधन प्राप्त हो सकते हैं हम जनता-जनार्दन का कल्याण संपन्न कर सकते हैं। राजस्व का अधिकांश भाग पदाधिकारियों पर खर्च किया जा रहा है। उन गांवों में क्या रचनात्मक कार्य संभव है जहां सड़कें नहीं हैं अस्पताल नहीं हैं पशु चिकित्सा के साधन नहीं हैं डाक सेवा का प्रबंध नहीं है शिक्षा की सुविधाएं नहीं हैं फसल की बीमारियों से संरक्षण के उपाय नहीं हैं और पानी का प्रबन्ध नहीं है। रेडियो इसका इलाज नहीं है। ग्रामोद्योगों द्वारा ही भूखे ग्रामीणों को भोजन दिया जा सकता है। समिति

की सम्मति में निम्नलिखित उद्याम ग्रामोद्योग हैं जिनकी ओर सरकार का ध्यान रहना चाहिए "चावल साफ करना आटा पीसना तेल निकालना गुड़ बनाना खाण्ड बनाना मधुमक्खी पालन मिट्टी के बर्तन बनाना घीय का काम साबुनसाजी रूई का चुनना धुनना साफ करना कातना बुनना धोना और रंगना ऊन का कातना ऊन का बुनना भेड़ पालना बढ़ईगीरी लोहार का काम रेशम के कीड़े पालना चटाई बुनना रस्से बनाना चमड़ा कमाना मरे हुए पशुओं का सदुपयोग करना मत्स्य पालन मुर्गी पालन डेरी का काम जूते बनाना पीतल और धातुओं का काम खिलौने बनाना सुनार का काम कागज बनाना लाख उद्योग घास व माचिस की तीलियां बनाना और बीड़ी बनाना।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि उपर्युक्त समिति के सुझावों के अनुरूप देश की प्रशासनिक एवं अर्थ-व्यवस्था का संचालन किया जाय और देशवासियों को प्राच्य संस्कृति के सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्शों से अनुप्राणित किया जाय तो हमारा देश सुख और समृद्धि के सर्वोच्च पथ पर अग्रसर हो सकता है।

पाँचवाँ अध्याय

## शैक्षणिक पुनर्निर्माण

### राष्ट्रीय शिक्षा

विश्व के आधुनिक घटना-चक्र का स्वरूप अद्वितीय है और इसकी गति अत्यन्त क्षिप्र एवं क्रांतिकारी है। जिस प्रकार हम मांसपेशियों की वृद्धि को लक्षित करने में असमर्थ हैं और यद्यपि हम अपने बच्चों को प्रतिदिन प्रतिक्षण देखते हैं फिर भी हम उनकी मुखाकृतियों में होने वाले परिवर्तन को नहीं देख पाते उसी प्रकार हम आदर्शों में सामाजिक संरचना में नागरिक संस्थाओं में और हमारी दूसरी चीजों में—जिसे हम एक शब्द में 'प्रगति' का नाम दे सकते हैं—पिछले पचास सालों में हमारी आँखों के सामने घटित होने वाले क्षिप्र एवं समग्र परिवर्तन की पूरी झाँकी नहीं ले पाते। तथ्य तो यह है अगर हम एक प्रचलित मुहावरे को उद्धृत करते हुए कहें कि हम वृक्षों में वन को भूल जाते हैं।

गांधीजी द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्रकट किए गये विचार कोई नये नहीं हैं जिस प्रकार कि एक आश्चर्यचकित विश्व के सामने अर्थशास्त्र आचार शास्त्र या राजनीति के क्षेत्र में प्रकट किये गये उनके विचारों में जैसा कि उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से उन्हें देखा है, कोई नवीनता नहीं है। जब आप किसी बीमारी का इलाज करते हैं आपको उन सिद्धान्तों का निर्धारण करना पड़ता है जिन पर आपका उपचार आधारित होना चाहिए। जो आदमी बीमारी के प्रत्येक लक्षण के लिए अलग से नुसखा तजवीज करता है, वह अत्यन्त भयंकर रूप में नीम हकीम की उपाधि धारण करने जा रहा है। परन्तु जो लक्षण देख कर रोग का निश्चय करता है और कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर उपचार की व्यवस्था करता है, वह निश्चय ही उन्नति की ओर अग्रसर होगा। वह कौन सी बीमारी है जिससे हमारा देश पीड़ित है? क्या यह ग्राम का नगर द्वारा अनेक उद्योग धन्धों का कल-कारखानों द्वारा स्वदेशी का विदेशी वस्तुओं द्वारा भारतीय संस्कृति का विदेशी कल्चर द्वारा आत्म-पूर्णता का बाजारों और कच्चे मालों की खोज द्वारा संतुष्ट राष्ट्रवाद का लोलुप साम्राज्यवाद द्वारा न्याय का कानून द्वारा सभ्यता का मुकदमेबाजी की अनिश्चितताओं द्वारा सचाई का कचहरियों के छल-फरेब द्वारा कर्तव्यों का अधिकारों [illegible] समता का द्वेष द्वारा संयम का मादक द्रव्यों द्वारा सहयोग का प्रतियोगिता द्वारा, [illegible] मता का पारस्परिक मार-काट और रक्तरंजित प्र[illegible] ये सब तो बीमारी के लक्षण हैं। बीमारी तो [illegible] विषय है। इसलिए गांधीवाद का संपूर्ण [illegible] गया है कि सिफ़ाई या

विनाशक कार्यक्रम का उल्टा है। अगर हम संक्षेप में महात्माजी के कार्यक्रम का वर्णन करें तो यह क्रिया रूप में परिणत अहिंसा से न कुछ अधिक है और न कुछ कम। कहीं तो यह बेसिक शिक्षा की प्राणमयी योजना का रूप धारण करता है कहीं खद्दर द्वारा आर्थिक उत्थान की पुनरुज्जीवित योजनाओं का और कहीं अस्पृश्यता-निवारण द्वारा राष्ट्रीय एकता के प्रयत्न का। ये सब क्रिया-रूप में अहिंसा है क्योंकि विदेशी वस्तुओं के प्रयोग से हमारे लाखों ग्रामवासी भाइयों का भूखों मरना पड़ता है समस्त सामाजिक असमानताओं के कारण हमारे हरिजन भाइयों की आत्म-सम्मान की भावना को ठेस पहुँचती है और वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के कारण राष्ट्र के नवयुवकों का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान नहीं हो पाता।

## बच्चा और राष्ट्र

शिक्षा वह विज्ञान और कला है जो राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप बच्चे के विकास में सहायक होती है और देश के नवयुवकों को समाज-यन्त्र के उपयुक्त भाग बनाती है। प्रत्येक पैदा होने वाला बच्चा माँ-बाप की सम्पत्ति या परिवार का ही आधार नहीं है अपितु वह तो समस्त राष्ट्र की संपत्ति है और इसका प्रशिक्षण भी राष्ट्रीय आवश्यकताओं एवं आदर्शों के अनुरूप होना चाहिए। ये आदर्श क्या हैं ? वे पूर्व और पश्चिम में एक जैसे नहीं हैं। पश्चिम में ये आदर्श शक्ति के लिए हैं उन उद्योगों के विकास के लिये हैं जिनके लिए एक ओर तो कच्चे माल की जरूरत होती है और दूसरी ओर तैयार माल के बेचने के लिए बाजारों की। अपनी औद्योगिक क्षमता के संरक्षण और विस्तार के लिये स्वाभाविकतः उन्हें राजनैतिक प्रभुत्व की आवश्यकता होती है। यह सब शांति के समय में होता है या जब दूसरे राष्ट्र अत्यन्त शांति और नम्रतापूर्वक अपने पड़ोसियों के आक्रमणों के शिकार बन जाते हैं। जब वे ऐसा नहीं करते तब लड़ाई छिड़ जाती है जिसके लिये शांति काल में ही तैयारियाँ जारी रहती हैं। शासक दलों के नवयुवकों को शासन्याधिकार की कला में प्रशिक्षित किया जाता है जब कि शासित देश के नवयुवकों को नतमस्तक होकर अपने विदेशी शासकों के आज्ञापालन और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की शिक्षा दी जाती है। यहाँ पर शासकों और शासितों के मध्य शिक्षा उद्योग साम्प्रदायिक सद्भावना एवं आत्म-मुक्तता के आधार पर आत्म-संरक्षण के विषय में संघर्ष छिड़ जाता है। शासक और शासित राष्ट्रों के अनिवार्य रूप से विरोधी आदर्श होते हैं। गांधीजी ने शिक्षा के क्षेत्र में बेसिक शिक्षा की जिस प्रणाली को अपनाया और जो प्रथम दर्शन में बड़ी विचित्र सी लगती थी कोई नई चीज नहीं थी। दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्रों में शिक्षा-शास्त्रियों ने डाल्टन प्रणाली या परियोजना विधि के नाम से इसे अपनाया है। ब्रिटेन में जहाँ कि ग्राम और कुटीर उद्योगों को इतनी प्रधानता नहीं दी जाती वहाँ बड़े-कारखाने और फैक्ट्रियाँ

युवकों के प्रशिक्षण के वास्तविक विद्यालय हैं और कुछ प्रतिशत नवयुवक ही विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं। हमारे लिये कल-कारखानों की सभ्यता जो कि युगों से प्रचलित कुटीरोद्योगों को पराक्रान्त कर देती है हमारे उन ग्रामों के लिए सर्वनाश का कारण होगी जिनमें देश की आबादी का ८ प्रतिशत भाग निवास करता है। इसलिए हमारी बेसिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो देश के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावनाओं का संचार कर सके उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष में सहायक हो।

पादरी के लिए सब आत्माएं एक जैसी महान् हो सकती हैं
न्यायाधीश के लिये सब अधिकार सब पर समान रूप से लागू हो सकते हैं
परन्तु एक प्रोफेसर के लिये सब विद्यार्थी एक जैसे बुद्धिमान एवं प्रतिभासंपन्न नहीं हो सकते
विश्वविद्यालय में कम से कम आप ऐसा नहीं कह सकते कि एक विद्यार्थी उतना ही अच्छा है जितना कि दूसरा जैसे कि हम धर्मशास्त्र या न्यायशास्त्र में सबको समान समझते हैं।
आप यहां साधारण बुद्धि के व्यक्तियों को पसन्द नहीं करते अपितु आप तो अत्यन्त दक्ष और प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों को चाहते हैं जो अपने साथियों के लिए मिसाल कायम कर सकें।

वॉल डेवी के शब्दों में "धनी और आराम-परस्त लोगों को श्रमिकों से कभी भी श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए।

गांधीजी का यह दावा है कि शिक्षा का एक सामाजिक उद्देश्य होना चाहिए, आवश्यक यह केवल वैयक्तिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति का साधन है।

विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा केवल साम्राज्यवाद की दासी है जो कि भारी उद्योगों के लिए वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को प्रशिक्षण देती है और गृहोद्योगों या वर्ग के लिये कुछ भी नहीं करती। इसलिए ग्रामों की सहायता के लिये वर्धा योजना का प्रारंभ किया गया था।

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक और भाग अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड के नाम से प्रारंभ किया गया जो कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ संबद्ध आल इंडिया स्पिनर्स एसोसियेशन और आल इंडिया हरिजन बोर्ड के समकक्ष है। इस प्रकार कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का लक्ष्य आल इंडिया स्पिनर्स एसोसियेशन द्वारा राष्ट्र के औद्योगिक जीवन का हरिजन बोर्ड द्वारा आध्यात्मिक एवं नैतिक जीवन का और राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड द्वारा राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का नव-निर्माण करना है।

राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड के आदर्शों एवं योजनाओं की प्रशंसा भारत सरकार के प्रसिद्ध

शिक्षा-विशेषज्ञ श्री सारजेंट मद्रास के डी पी आई श्री स्टैथम तथा अन्य विख्यात शिक्षाधिकारियों और शिक्षा-शास्त्रियों द्वारा की गयी थी। बोर्ड की रिपोर्टों में जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है उसने हमारी राष्ट्रीय संस्कृति को समृद्ध बनाया है और केवल शैक्षणिक संसार की ही नहीं अपितु भारत की भी महान् सेवा की है जिसकी व्यवस्थित भावी प्रगति राष्ट्र के आदर्शों के अनुरूप देश के नवयुवकों के सफल प्रशिक्षण में है।

## जीवन का विश्वविद्यालय

उन्मुक्त वातावरण में घटना-चक्र की पाठ्यशाला में मानवीय वार्तालाप के श्रेणी-कक्ष में कुछ चुनी हुई अच्छी पुस्तकों के साथ और सबसे बढ़ कर उच्च एवं भद्र भावना के साथ किये गये सीधे-सादे काम व अनुशासन में भारत के जन-समुदाय को उस बुद्धिमत्ता विवेकपूर्ण साहस और आत्म-स्वामित्व के भाव को जाग्रत करना है जिसके कारण मनुष्य बादशाहों के बीच में भी सिर ऊंचा करके खड़े होने का साहस कर सकता है। अब भी समय है कि हम अपने आधुनिक विश्वविद्यालयों की संकीर्ण बौद्धिक विचारधाराओं और इस शिक्षा-प्रणाली की बुतपरस्ती से अपने को स्वतंत्र कर लें। उन्हें यह अनुभव करा दें कि अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए साधन भी अच्छे जुटाने चाहिएं। पुस्तकीय पाण्डित्य तो सद्-असद् का विवेक करने वाली बुद्धि का दास है चरित्र ही हमारी संस्कृति का सच्चा मोती है और प्रत्येक प्रकार की औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा का एकमात्र ध्येय ऐसे मनुष्यों का निर्माण करना है जो स्पष्ट रूप से देख सकते हैं विशुद्ध रूप से कल्पना कर सकते हैं उत्तम रीति से सोच सकते हैं भद्र भाव से संकल्प कर सकते हैं शीघ्रता से योजना बना सकते हैं और स्वदेश की सेवा के लिए ईमानदारी से कार्य कर सकते हैं। एक राष्ट्र जो इस विश्वास को कायम रखता है और इसके अनुकूल अपने जीवन को ढालता है, वह निश्चय ही विचार की विभिन्न धाराओं में आने वाले परिवर्तनों और संघर्षों में अपने युग की जनता के प्रेम और वैराभक्ति का पात्र बना रहेगा और आने वाली पीढ़ी को इस हिन्दुस्तान का उज्ज्वल भविष्य और गौरवमय इतिहास सौंपेगा जिसने पत तेरह हजार साल से विश्व के सुसंस्कृत राष्ट्रों में अपना मस्तक गर्व से ऊंचा रखा है। शिक्षा का यह बांधीवादी आदर्श है यह एक ऐसा आदर्श है जिससे भारतीय जनता को अनुप्राणित करना है यह एक ऐसा आदर्श है जिसे विश्वास की भट्टी में तपाया गया है और जीवन-संघर्ष में जिसे रूप प्रदान किया गया है यह एक ऐसी दिव्य दृष्टि है जिसका जनता को अनुसरण करना है। हम उस तुच्छ मापदण्ड से तंग आ चुके हैं जो मनुष्य की महत्ता उसकी डिग्रियों उसकी संपत्ति और ऐश्वर्य से आंकता है। मनुष्य की सच्ची परख तो यह है क्या उसने केवल अपने स्वार्थ के लिये श्रम किया है या सर्वसाधारण के कल्याण के लिए अपना जीवन होम

कर दिया है। उसकी शिक्षा का उसके लिए क्या अभिप्राय है? क्या वह इसके द्वारा अपने सहयोगियों से कोई व्यक्तिगत लाभ उठाना चाहता है या वह इसे उनकी सेवा करने का एक वैयक्तिक अवसर समझता है।

हमें राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या का अध्ययन इसके आर्थिक और राष्ट्रीय संस्कृति के साथ संबंध के रूप में करना है। पहले हम आर्थिक पक्ष को लेते हैं।

## १ आर्थिक पक्ष

प्रत्येक पीढ़ी और युग में हमें किसी न किसी विवाद के दर्शन होते हैं जिसका स्वरूप बड़ा भयंकर होता है और जो लोगों को दो विभिन्न मतभेद रखने वाले दलों में विभक्त कर देता है। वैयक्तिक और स्वेच्छाचारी शासन का युग था मध्यकाल और सामन्तवाद का युग आया फिर राष्ट्रवाद का युग आया। इन विभिन्न कालों में मनुष्यों की विविध गतिविधियों के कारण विभिन्न विचारधाराएं इस रूप में जन्म लेती हैं कि जनता को केवल अपने उपभोग के लिये पैदा करना चाहिए या दूसरे देशों में निर्यात के लिए, व्यापार का उद्देश्य सेवा होना चाहिए या मुनाफा कमाना उद्योग से कला को पृथक् करना चाहिए या नहीं मानव कला के लिये सहायक है या बाधक कला के लिए ज्ञान और पाण्डित्य का होना आवश्यक है या नहीं पूजा की तरह शिक्षा भी व्यक्तिगत हो या सामूहिक, शिक्षा-प्रणाली स्वतन्त्र हो या केन्द्र के कठोर अनुशासन एवं नियन्त्रण में परीक्षा-प्रणाली अनिवार्य है या एक ऐसा अभिशाप है, जिससे नहीं बचा जा सकता राज्य की सेवाओं में भरती डिग्रियों और परीक्षाओं में सफलता पर आधारित होनी चाहिए या सामान्य बुद्धि एवं चरित्र पर, हमारा जीवन राज्य के कानून और सार्वजनिक सम्मति के पथ-प्रदर्शन में अधिक सुखी हो सकता है या अन्तरात्मा की आवाज एवं स्फुरणा के आधीन—ये वे साधारण नियम हैं जिन पर स्त्री-पुरुष अवकाश के समय में विचार करते हैं और जो राजनीतिज्ञों, शिक्षाशास्त्रियों समाज-सुधारकों अर्थशास्त्रियों और वैज्ञानिकों के लिए समस्या का विषय बने हुए हैं। हमें भी इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार करना है और इनमें से एक विषय यह है कि अपनी शिक्षा-प्रणाली का किस प्रकार पुनर्संगठन किया जाय।

## साक्षरता और संस्कृति

इस प्रश्न का उत्तर देने में हमें अपने मन से इस सर्वसामान्य धारणा को एकदम निकाल देना चाहिए कि 'अनपढ़' लोग अशिक्षित होते हैं या 'पढ़े लिखे लोग' सुसंस्कृत होते हैं। हमें अपने देश में यह विचित्र बात देखने को मिलती है कि कई बड़े-बड़े पण्डित और उतने अशिक्षित वे मौखिक रूप से भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है केवल अक्षर-ज्ञान संयोग से ही नहीं। संस्कृति के लिए सुशिक्षित होना आवश्यक नहीं है। इस रीति से भारतीय ज्ञान युगों तक सुरक्षित रहा है। केवल पाण्डित्य ही नहीं अपितु संस्कृति भी सारे

देश में पिता से पुत्र को उत्तराधिकार में देने की प्रक्रिया द्वारा चलती है। प्रत्येक घर एक पाठशाला है, प्रत्येक पिता एक शिक्षक है। प्रत्येक झोंपड़ी कर्मशाला है। प्रत्येक दिन का काम शिक्षण है। प्रत्येक प्रक्रिया एक परीक्षा है। प्रत्येक उत्पादन एक डिग्री है और प्रत्येक कारीगर जीवन के विश्व-विद्यालय में मानवीय दक्षता या वार्तालाप के श्रेणी-कक्ष में और कुछ चुने हुए ज्ञान और कला के पण्डितों के सहवास में एक स्नातक है।

हमारे जैसे देश में भी एक नीरस पाठ्यक्रम सब प्रकार की प्रवृत्तियों के लिये सब प्रकार की अभिरुचियों के लिए, सब प्रकार के बौद्धिक स्तरों के लिए, समाज के सब वर्गों के लिए और देश के सब भागों के लिए, सभ्यता के सब दरजों के लिए तथा जीवन की सब आवश्यकताओं के लिए एक-सा निर्धारित किया गया है। यह शिक्षा नहीं है अपितु दम्भ-नियंत्रण है संस्कृति नहीं है अपितु तोता-रटन्त है परीक्षा नहीं है अपितु जुआ है। और इसके बाद ! सब तरफ शून्य ही शून्य दिखाई देता है सब जगह एक बड़ी खाई नजर आती है नीचे अतल गड्ढ और ऊपर शून्य ही शून्य। हमने इस रास्ते पर चलते हुए १ साल गुजार दिये हैं जबकि हमारे देश में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी थी और हम अब कितनी देर इस जीर्ण-शीर्ण एकपक्षीय शिक्षा-प्रणाली के पीछे भागते फिरेंगे ?

## जीवन और शिक्षा

हम जीवन में जिस क्षण से पैदा हुए हैं प्रतिदिन कुछ सीखते हैं। हमने पहली चीज जो बिना प्रयत्न के सीखी है वह सांस लेना है तब बिना मतलब के मुस्कराना है फिर भोजन के लिये चिल्लाना है फिर पंगूरे में लटकना और अन्त में बैठना और खड़े होना चलना और दौड़ना गिरना और उठना कूदना और खेलना है। तीन साल का बच्चा केवल तुतलाता ही नहीं अपितु लंबे-लंबे वाक्य भी बोलता है। पांच साल का बच्चा तर्क करता और आपको उलझन में डाल देता है। सात साल का बच्चा वैज्ञानिक घटनाओं पर आपसे सवाल-जवाब करता है और आपको चुप्पी साधनी पड़ती है। दस साल का बच्चा सोचता और कार्यारम्भ करता है। चौदह साल का बच्चा काम करता और उत्पादन करता है अठारह साल का कारीगर फर्नीचर और जरूरत की चीजें बनाता है कलात्मक वस्तुओं के डिजाइन बनाता और उनका निर्माण करता है घरों को सजाता और सुन्दर पुष्पावली के चित्र बनाता है, तस्वीरें खींचता सुन्दर वस्त्र बुनता आभूषण बनाता अपने चारों ओर के स्थानों को सुन्दर बनाना भोजन बनाता बीमारों की सेवा करता घर बनाता औजार बनाता बर्तन बनाना बाग-बगीचे बनाता पशुओं का पालन करता हल चलाता बीज बोता निराई करता और फसल काटता है।

## व्यावसायिक अनुराग

ओह ! इन हमारे पेशों, कलाओं, कारीगरियों और व्यवसायों को कौन सिखाता है ?

कौन सफलता और असफलता की घोषणा करता है ? कौन दण्ड और पुरस्कार देता है। पर, मां-बाप मिस्त्री फोरमैन, जुलाहा और संघ ने ही भारतीय संस्कृति की ख्याति को उसके विभिन्न रूपों में कायम रखा है। इसलिए आजकल पाठशालाओं और गोष्ठियों की ऐसी प्रणाली की आवश्यकता है जो कला और कारीगरी के प्रति निर्माण और उत्पादन के प्रति सौंदर्य और समरूपता के प्रति अनुराग उत्पन्न करती है इस अनुराग से ही वह शक्ति विकसित होती है जो कला और उपयोगिता का सुन्दर सम्मिश्रण करती है। इस प्रकार संपूर्ण सामाजिक संरचना का एक विशाल सहकारी समाज बनाया गया था वस्तुतः यह सहकारी संगठनों का एक संघ था जिसकी प्राथमिक इकाई प्रत्येक संयुक्त परिवार होता था। इस प्रकार हमारा देश आत्मपूर्ण था और प्रत्येक ग्राम भी लगभग आत्मपूर्ण था। बेकारी की समस्या के निराकरण का यही एकमात्र साधन था। जिस प्रकार दिन के बाद रात आती है उसी प्रकार पश्चिम की दैत्याकार आधुनिक मशीनों के बड़े पैमाने के उत्पादन के साथ बेकारी आती है।

शिक्षा के पुनर्संगठन में ही भारत का उज्ज्वल भविष्य निहित है। हम अपने तरुणों को किस लिए शिक्षित करेंगे ? क्या उन्हें प्रतियोगी उत्पादन के युग के लिए शिक्षित करेंगे ? नहीं आत्मपूर्णता के लिए। अगर ऐसा है तो देश के तरुणों को दिये जाने वाले प्रशिक्षण में कुटीरोद्योगों के प्रति विशेष पक्षपात एवं अनुराग होना चाहिए, जिससे देश के सुदूर भागों में जिलों तहसीलों और गांवों में आत्मपूर्णता आए। वर्धा योजना में इसी प्रकार की शिक्षा का ध्येय है।

## नयी व्यवस्था

खद्दर अर्थशास्त्र में एक नयी दिशा की ओर संकेत करता है। अर्थशास्त्र और शिक्षा एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया करते हैं। इसलिए जब खद्दर और ग्रामोद्योगों को प्रश्रय दिया जायेगा तो शिक्षा की प्रणाली में भी तदनुरूप परिवर्तन होंगे। अंग्रेजों की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के स्थान पर हमें शीघ्र ही वर्धा शिक्षा योजना लागू करनी है क्योंकि पुराने आर्थिक ढांचे का स्थान नया आर्थिक ढांचा ले रहा है इसलिए पुरानी अर्थ-व्यवस्था के बदलने पर तत्संबद्ध शिक्षा-प्रणाली में भी परिवर्तन अपरिहार्य होगा। इस बारे में किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये। हम इस समय एक समग्र परिवर्तन की स्थिति में हैं और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नयी व्यवस्था का प्रारम्भ और स्थापना हमने करनी है। राष्ट्र-पुनर्निर्माण के कार्य को अपने हाथ में लेने पर, हमें धारा के प्रतिकूल तैरना होगा और वह दिन दूर नहीं है जब वर्धा-योजना पर आधारित स्कूलों को केवल परीक्षण एवं प्रदर्शन के केन्द्रों के रूप में ही नहीं लिया जायेगा अपितु उन्हें राष्ट्र-पुनर्निर्माण के महान् कार्यक्रम में वास्तविक मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया जायेगा और यह कार्यक्रम आप इसे चाहे आर्थिक कहें या शैक्षणिक एक एवं अविभाज्य है।

## २ सांस्कृतिक पक्ष

आज भी परीक्षाओं के लिए उतना ही पागलपन है जितना कि पहले था। आज भी विशुद्ध साहित्य सम्बन्धी शिक्षा के प्रति उतना ही पक्षपात है, जितना पहले था। परन्तु यह शिक्षा हमें कहीं का नहीं रखती और यह तरुणों को केवल बेकारी की ओर ले जाती है और लोग इसके पीछे अन्ध-भक्ति के कारण मतवाले हैं तथा शिक्षकों शिष्यों और मां-बाप को इसने आकर्षित कर रखा है। स्वेच्छा से और बड़ी-बड़ी धनराशियां व्यय करके हम बेकारी पैदा करते हैं और फिर हंगामा मचाते हैं कि देश बेकारी से पीड़ित है। आज भी देश के तरुणों का झुकाव विश्वविद्यालय-शिक्षा की ओर है। परन्तु उन्हें तो उद्योग व्यापार और कलाकौशल से प्रेम होना चाहिये जिससे वे सम्मानपूर्वक अपनी आजीविका अर्जित कर सकें। हमें अपने राष्ट्र के नवयुवकों में अपनी भारतीय संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। उद्योग और कला-कौशल के प्रति विशेष अनुराग पैदा करना चाहिए जिससे देश की समृद्धि बढ़े। अंग्रेजों ने भारत को राजनीतिक दृष्टि से ही परतंत्र नहीं बनाया अपितु वाणिज्यिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दासता के बन्धनों में भी जकड़ दिया था और उनका स्वार्थ भी इसी में था कि वे भारतीय तरुणों को ब्रिटिश-पक्षपाती सांचे में ढालें। इसलिए हमारे देश में अंग्रेजी का प्रचार बड़े जोरों से हुआ और इसलिये लोग डिग्रियों पदों उपाधियों और पेंशनों के पीछे भागते फिरते हैं। एक विदेशी भाषा बोलने में गर्व अनुभव करते हैं। पर पत्र भी अंग्रेजी में लिखते हैं और विवाह के निमंत्रण-पत्र भी अंग्रेजी में भेजते हैं। अपनी भाषा के प्रति इतना मोह, कचहरियों, कौंसिलों और कालिजों में इसका प्रयोग सरकारी आज्ञाओं, नियमों और विज्ञप्तियों का अंग्रेजी में निकाला जाना सब श्रेणियों और वर्गों के लोगों का परस्पर अंग्रेजी में संभाषण हमारी संस्कृति की परीक्षा के लिए एक जबरदस्त चुनौती है। हमारे लिए अपने मित्रों से यह अनुरोध करना बड़ा कठिन है कि वे कचहरियों कालिजों विधान सभाओं में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करें। हम इस बात की पैरवी करते रहे हैं कि कचहरियों की कार्रवाई उस भाषा में होनी चाहिए जिसे वादी और प्रतिवादी दोनों समझ सकें और इस प्रकार न्याय-व्यवस्था उत्तम रीति से संचालित हो। क्या यह विचित्र-सा नहीं लगता कि इन उद्देश्यों के लिए एक विदेशी भाषा का प्रयोग किया जावे ?

### कला के बखान

जहां तक भाषा का सम्बन्ध है हमारी यह दयनीय स्थिति है। संस्कृति के विषय में तो स्थिति इससे भी बुरी है। हमें इस विश्वास में प्रशिक्षित किया गया है कि इस देश में कोई चित्र नहीं है यहां कभी कला थी ही नहीं और प्रकाश की किरणें तो पश्चिम से आती हैं पूर्व से नहीं। वस्तुओं को उनके यथार्थरूप में प्रस्तुत करने की उत्कंठा के कारण आध्यात्मिक

कला का ह्रास होता है। हमारे देश की भवननिर्माणकला में भी बड़ा भारी परिवर्तन हुआ है। जयपुर और उदयपुर, दिल्ली और आगरा, बीजापुर और औरंगाबाद, तंजौर और मदुरा के नगरों का सुन्दर निर्माण करने वाली प्राचीन शैलियाँ नष्ट हो गयी हैं और उनके बारे में लोग गम्भीरता से विचार नहीं करते। प्राचीन मन्दिर निर्माणकला मूर्तियों और चित्रों का अध्ययन नहीं किया जाता अपितु उनकी उपेक्षा की जाती है।

## भारतीय भवन निर्माण-कला

आप कहीं भी चले जाइए प्राचीन कला की शोभा और ख्याति आपको निश्चय ही मिलेगी। इस पर समय का या विदेशी के सुन्दर इमारतों को नष्ट करने के प्रयत्न का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हम कहाँ से शुरू करें? हम इन करिश्मों का अध्ययन कहाँ समाप्त करेंगे? हम यहाँ शताब्दियों के कठिन परिश्रम के बाद पत्थरों, ईंटों और रंगों के रूप में प्राचीन भारत के इन महान् स्मारकों का द्रुत सर्वेक्षण करते हैं। भुवनेश्वर मंडप और लिंगराज के मंदिरों की छतों के कठिनाई से दिखाई पड़ने वाले चित्रों से हम प्रारम्भ करते हैं और मदुरा के विशाल मंदिरों तथा तंजौर की अत्यन्त भव्य एवं कलापूर्ण मूर्तियों की ओर जाते हैं। वहाँ से फिर हलेबीड और बेलूर की ओर चलते हैं जहाँ पत्थर का महान् आश्चर्यजनक काम हुआ है। फिर कच्छ में सोने और चाँदी पर किये गये भोज के वंश के नाम को स्मरण करते हैं। तंजौर, मैसूर, बेलूर और हलेबीड के सुन्दर देश का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए हम आश्चर्यचकित होते हैं कि इनके निर्माण में कितना समय लगा होगा और कितनी धनराशि व्यय हुई होगी। सितारी में मंदिर की छत पर अनेकों सुन्दर चित्र अंकित हैं और यद्यपि चार-पाँच सौ साल गुजर गये हैं ये चित्र उसी प्रकार सुरक्षित हैं और चित्रों में विविध रंगों तथा वर्णों में राजाओं और संतों के जीवनों के अनेक रोमांचकारी दृश्य अंकित हैं। इसके अतिरिक्त सितारी में छतों से लटकते हुए आश्चर्यजनक विशाल स्तम्भ हैं जिनका आधार पृथ्वी पर नहीं है और जो चारों ओर पंक्ति करते हैं। तारापाती और पेनुगोंडा में अनगिनत मंदिर हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि किसी समय कला और भवन-निर्माण पर कितनी अपार संपदा व्यय हुई होगी और कितना श्रम किया गया होगा। डिजाइन की प्राचीनता के लिये, हाथ की सफाई के लिये, प्रत्येक प्रकार के विस्तार और सूक्ष्मता के प्रति असाध प्रेम के लिये, उच्च कोटि के विशुद्ध कौशल के लिए, शक्ति और अभिव्यक्ति के लिए, वैज्ञानिक उपयुक्तता को भवन-निर्माण के सौंदर्य के साथ सम्मिश्रित करने के लिए भारतीय कारीगर का बड़ी कठिनाई से दिखायी देने वाले मंदिरों के अंधेरे कोनों में सुन्दरतम चित्रों एवं मूर्तियों के निर्माण के लिए ये विविध मंदिर और भवन भारत में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। बेलूर और हलेबीड में मंडप के दरवाजे-खम्भों को एक शीशे लगाने से साफ करने पर हम प्रतिष्ठाता और पराक्रम की अत्यन्त विचित्र घटनाओं को देख सकते हैं

चारों ओर की वसुधा को देख सकते हैं और एक में पैठी हुई प्रतिच्छाया तथा परावर्तन की घटनाएं दूसरे से सर्वथा भिन्न होती हैं। लेपाक्षी के मंदिर में पूर्णतः कृष्णवर्ण वीरभद्र की सुन्दर मूर्ति को देखने के लिये हमें बिजली की बत्ती की सहायता लेनी पड़ती और फिर भी हम सारी मूर्ति को उसके भागों में ही देख सकते हैं क्योंकि वह एक सिरे से दूसरे सिरे तक २५ फुट लम्बी है। आगे पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए हम बीजापुर की ओर प्रयाण करते हैं जहां का गुम्बद गुम्बद और इसकी दीर्घा अत्यन्त विख्यात है। कानरेस के बदामी नामक स्थान पर और आंध्र में उण्डावल्ली के स्थान पर गुफाएं खोज निकाली गयी हैं। हम आश्चर्य में यह पूछते हैं कि बीजापुर के गुम्बद में जो कानाफूसी का गुण है उसको दृष्टि में रखते हुए गुम्बद बनाया गया था या वह आकस्मिक है जैसे कि हम बेलूर और हालीबेड के स्तम्भों के परावर्तन प्रभावों के बारे में पूछते हैं। एलोरा अजन्ता और एलीफेन्टा की गुफाओं के अद्भुत कला-सौंदर्य और मूर्तियों को देखकर कल्पना दंग रह जाती है। अजन्ता की सत्ताईस गुफाओं पर दृष्टिपात कीजिए, जिनके बनाने में सात शताब्दियां लगी और कल्पना कीजिये कि इन पर कितना श्रम और कितनी धनराशि लगी होगी। पूर्व गोदावरी में रमाणी के स्थान पर केवल जगन्मोहिनी की अद्वितीय मूर्ति भारत भर में अपना सानी नहीं रखती। यह तो प्रस्तर का अद्भुत कला-कौशल है। इसके निर्माण में अपार धन व्यय किया गया है। उस सेवा और श्रम की जरा कल्पना कीजिए जो इसके निर्माण में लगा। कलाकारों और कारीगरों ने योजनाओं और आकल्पों से टेण्डरों और ठेकों पर, किस्तों और समय की निश्चित अवधियों के प्रतिज्ञा-पत्र भर कर यह काम प्रारम्भ नहीं किया था। उन्होंने पत्थरों में मन्दिरों में और कला में अपनी आत्मा को उड़ेला और आत्म प्रसार के लिये उन्होंने ये महान् कार्य सम्पादित किये। प्राचीन काल में आत्म-साक्षात्कार और अलौकिक उल्लास के लिये ये काम किये जाते थे द्रव्योपार्जन के लालच से नहीं। उस समय ज्ञान और विद्या को बेचा नहीं जाता था। पुस्तकें व्यापार में सम्मिलित नहीं थी। महानता और पाण्डित्य की माप धन से नहीं होती थी। आगे उत्तर की ओर यात्रा करने पर हम अहमद नगर पहुंचते हैं जहां मस्जिद की हिलती हुई बुर्जियों को देखकर हैरत में पड़ जाते हैं। इनमें से दो बुर्जियां एक दूसरे से ४ फीट की दूरी पर हैं और प्रत्येक का व्यास ६ फीट है। अगर आप एक बुर्जी को जरा से हिलाएं तो दूसरी बुर्जी में भी सम्वेदना के रूप में कम्पन होने लगता है। इनमें से एक बुर्जी को गिराकर अंग्रेज इंजीनियरों ने उसे फिर से बनाना चाहा परन्तु वह प्रयास व्यर्थ हो गया। अहमदनगर में दूसरी भी अद्भुत चीजें हैं। यहां का बड़ा कुआं अपने में एक आश्चर्य है। मैसूर में श्रवण-बेलगोला पर गोमटेश्वर की ऊंची पत्थर की मूर्ति तो चमत्कार ही है। अब मैं हम आगरे के ताज जिसे "संगमरमर में स्वप्न" के नाम से वर्णित किया गया है और दिल्ली के कुतुबमीनार की ओर आते हैं। सुन्दर और उच्च कोटि के सम्पूर्ण ताज के निर्माण के मूल में जो सर्वांगीण सामञ्जस्य और नापतोल

## छठा अध्याय

# सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय की आधुनिक धारणा किसी देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती। सच्ची स्वाधीनता ऐसे अनुकूल वातावरण और स्थितियों के निर्माण में है जो जनता के जीवन-स्तर को ऊंचा उठा सकें और देश की राष्ट्रीय संपत्ति की अभिवृद्धि करें। केवल इस लक्ष्य की प्राप्ति ही पर्याप्त नहीं है। वैयक्तिक आयों की असमानताओं को कम करना और सेवा के अवसरों में वृद्धि करना भी आवश्यक है। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए महात्मा गांधी ने अनेक अवसरों पर राम राज्य को अपना आदर्श घोषित किया था और दूसरी ओर कांग्रेस ने हाल ही में इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये अपनाए जाने वाले साधनों की व्याख्या की है और ऐसी योजनाओं का निर्माण किया है जिनसे इन लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है।

इसलिए हमारे लिए यह सर्वथा युक्तियुक्त एवं दिलचस्पी का विषय होगा कि हम महात्मा गांधी द्वारा पुरस्थापित आदर्शों और पिछली दशाब्दी में कांग्रेस सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्यों का तुलनात्मक अध्ययन करें। महात्मागांधी ने अपने आदर्श राज्य को राम राज्य का नाम दिया था और उसका इस प्रकार वर्णन किया है

> "धार्मिक दृष्टि से राम राज्य का अर्थ है पृथ्वी पर भगवान् का राज्य; राजनीतिक दृष्टि से यह पूर्ण प्रजातन्त्र है जिसमें गरीबी और अमीरी रंग और धर्मसम्प्रदाय के आधार पर स्थापित असमानताओं का सर्वथा अन्त हो जाता है। राम राज्य में भूमि और राज्य जनता का होता है। न्याय शीघ्र पूर्ण और सस्ता होता है और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने तरीके से पूजा-प्रार्थना स्वतन्त्र विचाराभिव्यक्ति और प्रेस की स्वतन्त्रता होती है। नैतिक प्रतिबन्ध के स्वेच्छया आरोपित कानून के राज्य के कारण ही यह सब होता है।" उन्होंने आगे चल कर कहा—"मेरा स्वराज्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं है। मैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्मराज के, सत्य और अहिंसा के शासन को स्थापित हुआ देखना चाहता हूं। दासता की जंजीरों में जकड़े रहना मनुष्य के गौरव के विरुद्ध है।

> "मेरे लिए देशभक्ति वही है, जो कि मानवता। मेरी जीवन-योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। राज्यों का लक्ष्य निरपेक्ष स्वतन्त्रता नहीं है। यह तो ऐच्छिक परस्पराश्रितता है। मैं अहिंसा में विश्वास रखता हूं। मैं

मानव की, नहीं नहीं समस्त जीवित प्राणियों की एकता में विश्वास रखता हूं। मेरा ऐसा विश्वास है कि अगर एक व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से ऊंचा उठता है तो समस्त संसार को इससे लाभ पहुंचता है; और अगर एक व्यक्ति का नैतिक अधःपतन होता है तो उस सीमा तक सारे संसार का अधःपतन होता है।"

"मैं तो एक ऐसे भारत के निर्माण के लिए कार्यरत रहूंगा जिसमें गरीब से गरीब व्यक्ति भी यह अनुभव करे कि यह उसका अपना देश है, जिसके निर्माण में उसकी प्रभावशाली आवाज है, एक ऐसा भारत जिसमें जनता का कोई उच्च वर्ग और कोई नीच वर्ग नहीं होगा, ऐसा भारत जिसमें सब जातियां पारस्परिक एकता और सद्भावना के स्नेह-सूत्र में बंधी हुई मिल-जुल कर रहेंगी। ऐसे सुन्दर भारत में अस्पृश्यता, मद्यपान और नशीली वस्तुओं के सेवन के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। महिलाओं को भी वही अधिकार प्राप्त होंगे, जो पुरुषों को। मेरे स्वप्नों के भारत का यही रूप है।"

अब हम व्यावहारिक राजनीतिज्ञों के रूप में कांग्रेसी नेताओं द्वारा निर्धारित लक्ष्यों और उनकी भावनाओं की रूपरेखा पर विचार करते हैं। उन्होंने समाज के समाजवादी ढांचे की चर्चा की है और इस लक्ष्य की प्राप्ति उन उपायों तथा नीतियों द्वारा सम्भव है जो (क) आयों की असमानताओं में कमी और (ख) समाज के हित के लिए संपत्ति के अधिक समवितरण के प्रति क्रियाशील हैं।

आर्थिक विकास के लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम अधिकार-सम्पन्न वर्गों को अधिक से अधिक मिलने चाहिएं और सम्पत्ति आय तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण में अधिक से अधिक न्यूनता आनी चाहिये। समाज की रचना इस प्रकार की होनी चाहिये जिसमें छोटे आदमी को जिसे अब तक संगठित प्रयास के द्वारा संपन्न किये जाने वाले महान् कार्यों में भाग लेने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ था इस योग्य बनाया जाय कि वह अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठाने के लिए तथा देश की समृद्धि में वृद्धि के लिए अपना सर्वोत्तम योग-दान कर सके और इस प्रकार देश के सामाजिक तथा आर्थिक स्तर को ऊंचा उठा सके। एक समाजवादी प्रजातान्त्रिक समाज राज्य व्यक्ति और स्थानीय लोगों सबके लिए, उचित अनुपात में स्वतन्त्र मूल्य-निर्धारण के साथ साधन जुटाएगा और प्रत्येक के सामान्य ध्येयों एवं आदर्शों की प्राप्ति के लिये उनकी सेवाएं लेगा। एक सुन्दर समाज और एक सुविस्तृत अर्थ-व्यवस्था के निर्माण में प्रत्येक तत्व एक दूसरे का पूरक है। गांधी जी एक ऐसे वर्गहीन समाज के स्वप्नद्रष्टा थे जिसमें तुच्छातितुच्छ मनुष्य में भी यह विश्वास उत्पन्न हो कि वह पूर्ण समता के साथ ही बराबरी के दर्जे का नागरिक है नागरिकों के किसी भी दूसरे समूह की तरह उसका भी सम्पत्ति उत्पादन के साधनों पर एक जैसा अधिकार है। इसीलिए

कांग्रेस ने राष्ट्रीय आय में अभिवृद्धि करने और व्यक्तियों की आयों को अधिक उन्नत तथा अधिक सम करने की योजना बनाई है। गांधीजी एक नयी व्यवस्था के संस्थापक और उसके सर्वप्रथम सेवक थे। उन्होंने राष्ट्रीय दृष्टिक्षेत्र को विस्तार प्रदान किया था और राष्ट्रीय हृदय को अधिक विशाल बनाया था। मानवता के सेवकों में अग्रगण्य महात्मा ने इस प्राचीन उक्ति पर बल दिया था—

अयं निजः परो वेति
गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानान्तु,
वसुधैव कुटुम्बकम्॥

"साधारण व्यक्तियों के लिये तो यह अपना है और यह पराया। उदार-हृदय व्यक्ति तो समस्त विश्व को अपना परिवार ही समझते हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जो कुछ कहा और हमारी राष्ट्रीय सरकार ने ७२ करोड़ रुपये व्यय करके जिन लक्ष्यों को प्राप्त करने की योजना बनाई है उसकी तुलना करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि जबकि गांधी जी स्वराज्य के आदर्शों पर अधिक बल देते थे हमारी राष्ट्रीय सरकार उन साधनों तथा उपायों को खोजने में लगी है जिनके द्वारा उन आदर्शों की प्राप्ति संभव है। इसके साथ ही विश्व भ्रातृत्व के अस्पष्ट, आडम्बर-युक्त और आकर्षक भाषणों में ही वे अपने को नहीं भुला देते अपितु वे राष्ट्रवाद को विश्व-राष्ट्रीयता की ओर ले जाने वाली सीढ़ी समझते हैं और यह विश्व-राष्ट्रीयता या तो एक दूर की दैवी घटना के रूप में हो सकती है या फिर निकट भविष्य में कवि के स्वप्न की पूर्ति के रूप में।

## सातवां अध्याय

# राष्ट्रीय एकता

क्या यह सामाजिक न्याय भारतवर्ष के लिये बिलकुल नया है या कभी वास्तविक जीवन में इसे कार्यरूप में परिणत करने का कोई प्रयत्न किया गया था ? व्यक्तियों के जीवनों और जाति के दृष्टिकोण को विनियमित करने की दृष्टि से प्राचीन भारत में समाज को एक संगठित निकाय के रूप में समझा जाता था जिसका निर्माण एक सुगठित योजना के अनुसार हुआ है। व्यक्ति के जीवन का चार प्रसिद्ध आश्रमों में विभाजन इस दृष्टि से किया गया था जिससे वह समाज की अर्थ-व्यवस्था का सुचारु रूपेण संचालन कर सके और पहले ब्रह्मचर्य आश्रम में समुचित शिक्षा ग्रहण करके और तदुपरान्त विवाह द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके जीवन में अपने कर्त्तव्यों का सम्यक्तया पालन कर सके। इक्यावन वर्ष की आयु में अपनी समस्त स्वार्थपरायण वृत्तियों एवं भावनाओं का पूर्ण दमन करके पुरुष स्वयं अपने को और अपनी पत्नी को समाज की सेवा में अर्पित कर देता था परन्तु इस समय उन दोनों में पति-पत्नी का कोई सम्बन्ध नहीं होता था। इस प्रकार दस वर्षों तक समाज की सेवा करने के उपरान्त पति पत्नी एक दूसरे से पृथक होकर व्यक्तिगत रूप से राष्ट्र के सेवक बन जाते थे। ये दोना आश्रम वानप्रस्थ और संन्यास के नाम से विख्यात है। व्यक्ति के जीवन के चार भागों की तरह समाज भी स्वतः चार वर्गों में विभाजित है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य सम्पन्न करने होते है, जिनका एकमात्र उद्देश्य समस्त राष्ट्र का कल्याण होता है। वाणिज्य कृषि रक्षा और श्रम के विभिन्न कृत्यों को विभिन्न वर्ग संपादित करते है और यह वर्गों का कार्य-वितरण जो कि स्वतः निर्मित था और जिसने सहस्रों वर्षों तक संगठित जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति की अब प्रचलन में नहीं रहा। जब राष्ट्र की दृष्टि पूर्व के पवित्र आदर्शों से पराङ्मुख होकर पश्चिम के सांसारिक आदर्शों में निमग्न हुई, तब संयुक्त-परिवार-प्रथा और इसको विनियमित करने वाले नियमों की जो समाज को एक सहकारी समाज समझते थे एक बीमा निगम या श्रम संगठन समझते थे उपयोगिता सर्वथा समाप्त हो गयी। ये सांसारिक आदर्श समाज-कल्याण के मात्र उद्देश्यों से अनुप्राणित है, जिसमें धन तथा सुविधाओं की असमानताएं कम से कम हो जाती है और उत्पादन के साधन कुछ चुने हुए विशिष्ट व्यक्तियों के एकाधिकार में नहीं रहते। समय-प्रवाह में समानता और कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के वितरण के आदर्श प्रबल रूप से विलुप्त हो उठे और परिणामतः भारतों में असमानता उत्पन्नकारी तथा जमींदारी प्रथा पददलित तथा अस्पृश्य समझे जाने वाले वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक दासता के उग्र रूप

धारण कर लिया। जीवन के सामाजिक आर्थिक एवं आचारात्मक क्षेत्रों में महात्मा गांधी के प्रवेश ने कुलीन एवं सामन्तवादी वर्गों के एकाधिकारों का तथा सर्वसाधारण पददलित जनता के अधिकारों के अपहरण का पर्दाफाश किया। परन्तु इस असमानताओं ने अंग्रेज शासकों के मस्तिष्कों को प्रभावित नहीं किया उनके हृदयों को प्रभावित करना तो दूर रहा। इसके विरुद्ध उन्होंने धर्म और जाति के विद्यमान मतों को प्रश्रय दिया और वे 'फूट डालो तथा शासन करो' के विख्यात सिद्धांत का अनुसरण करते रहे। उन्होंने किस प्रकार जान बूझकर इन भेदों को बढ़ावा दिया इसका अब हम संक्षेप से परीक्षण करते हैं।

सन् १८८५ में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन की प्रेरणा और कई सरकारी अफसरों की सहायता से शासकों तथा शासितों में घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने की दृष्टि से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गयी थी परन्तु अंग्रेज अफसर सन् १८८८ में इलाहाबाद में हुए कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के समय से ही इसे एक विद्रोही संस्था समझने लगे थे। कांग्रेस के पहले २ वर्ष शासकों तथा शासितों के पारस्परिक दोषारोपण तथा एक दूसरे की नीयतों पर सन्देह में गुजरे। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल जैसे प्रान्त से जिसकी जनसंख्या ८ करोड़ थी और जहां राजनीतिक चेतना द्रुत गति से फैल रही थी राष्ट्रीय जागरण सारे देश में व्याप्त हो गया और शासकों के व्यवहार तथा धारणा पर बड़ा विक्षोभ प्रकट किया गया। अंग्रेज शासकों ने भी भारतीय राष्ट्रवाद की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई भावना को समझ लिया था और इस बीमारी का एकमात्र इलाज वे "फूट डालो और शासन करो" की नीति को समझते थे। इसे दृष्टि में रखते हुए अंग्रेजों ने मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग करने की सोची और सन् १९ ६ में हिज हाईनेस आगा खां के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल लार्ड मिन्टो से मिला। बाद में श्रीमती मिन्टो ने अपने पति के जीवन-चरित्र में इस शिष्टमंडल का एक आदेश कृत्य" के रूप में वर्णन किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों ने व्यवस्थापिका सभाओं में कुछ सुरक्षित स्थानों के लिए एक पृथक 'मतदाता सूची' के साथ-साथ पृथक निर्वाचन की मांग की और उनकी यह मांग स्वीकार भी कर ली गयी। कांग्रेस के पास उसके रास्ते में खोदी गई इस खाई में गिरने के और कोई चारा नहीं था और उसने सन् १९१६ में लखनऊ में न केवल पृथक निर्वाचक-मंडल के साथ पृथक् प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लिया अपितु एक निश्चित स्थानों के दिये जाने के सिद्धांत को भी स्वीकार कर लिया ताकि मुसलमानों को कम से कम १५ प्रतिशत स्थान तो मिलें ही सम्पूर्ण जनसंख्या में उनका अनुपात चाहे कुछ भी हो। पृथक निर्वाचन के साथ मुसलमानों की मांग और तीव्र हो उठी यह स्थानीय संस्थाओं तक जा पहुंची और सन् १९४५ में वायसराय की परिषद् में समान प्रतिनिधित्व मिलने के बावजूद भी मुसलमानों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग नहीं लिया। अन्त में भारत और पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन करना पड़ा।

इस सब महान् एकता के बावजूद भी ब्रिटिश शासन-काल से चली आ रही सामाजिक तथा आर्थिक असमानताएं इतने उग्र रूप में मौजूद थी कि उनके तात्कालिक निवारण के लिये कदम उठाने पड़े ।

नये राज्य-संगठन के अंतर्गत निरंकुश राजसत्ता के प्राचीन विचार के लिये कोई स्थान नहीं था पतित पुरोहितों के लिये तो और भी कम स्थान था जो कि राजाओं के बाद थोड़े समय के लिये सामाजिक अधिकारी के रूप में प्रभुत्व में आए थे परन्तु जो शीघ्र ही व्यर्थ एवं निष्प्रयोजन सिद्ध हुए। यह कांग्रेस सरकार का ही महान् कार्य है कि उस जीर्ण-शीर्ण राजसत्ता और पुरोहित-राज के स्थान पर एक ऐसा जीवित-जाग्रत सामाजिक नेतृत्व स्थापित किया है जिसके पीछे सार्वजनिक सम्मति तथा संसद् द्वारा देश की प्रगतिशील शक्तियों और पश्चिम के आक्रमण के बावजूद भी जीवित अनुदारवादी तत्वों के साथ परामर्श करके बनाए गए सामाजिक नियमों की शक्ति मौजूद है। आधुनिक विचारधारा, जिसमें राजनीति और अर्थशास्त्र परस्पर गुंथे हुए हैं भले ही धर्म को समाज से पृथक करे और धर्म तथा समाज इन दोनों को अर्थ एवं राजनीति के नवीन मिश्रण से जुदा कर दें परन्तु हमारे प्राचीन भारतीय सामाजिक ढांचे में ये चारों एक दूसरे को व्याप्त किए हुए थे। अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद भी भारतीय राष्ट्रवाद रूपी पुष्प की पंखुड़ियों में वह सौरभ विद्यमान है जो धाराधार गृहोद्योगों के रूप में फूट-फूट कर निकल रहा है। जब इस प्राचीन गृहोद्योगों के साथ आधुनिक यान्त्रिक उद्योगों का समन्वय स्थापित किया जायगा तो यह ऐसा होगा जैसे चन्दन के साथ कपूर का मेल। सामाजिक न्याय की मांग है कि उन को संरक्षण प्रदान किया जाय हमारे मत में जो कुछ अपना मधुर और स्थायी है, उसका संरक्षण किया जाय और अपने भूत को वर्तमान की जबर्दस्त यान्त्रिक शक्ति की समुचित स्थापना से शक्तिशाली बनाया जाय।

कार्य था परन्तु यह कभी भी सम्भव न हुआ होता अगर हरिजन युगों से चली आती इस निर्योग्यता से स्वतन्त्र न किये जाते। अब हरिजनोद्धार की समस्या का उचित समाधान हो गया है इसलिये हम ऐसा सोच सकते हैं कि स्वराज्य के भवन का निर्माण सुदृढ़ आधार शिला पर हुआ है।

इस महान् नैतिक सुधार का अभिप्राय है संपूर्ण राष्ट्र का नैतिक पुनर्जन्म। वस्तुतः यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दिलचस्पी का विषय है, यह साध्य-प्राप्ति नहीं है अपितु समय और उपाय के रूप में विस्तार और सार के रूप में वे साधन हैं जिन द्वारा इस साध्य की सिद्धि हुई है। अगर इस समस्या का समाधान कितने ही विशाल एवं व्यापक कानून द्वारा किया जाता तो इसका परिणाम समस्त राष्ट्र की भावना एवं आत्मा में कभी भी अन्तर्निविष्ट न हुआ होता। इस महान् सुधार की सिद्धि के तरीके ने ही इसे एक ऐतिहासिक घटना बना दिया है।

वर्षों में जो प्रगति हुई वह वस्तुतः महान् है। किसी को अस्पृश्य कहना अपराध है और यह कानून द्वारा दण्डनीय है। इस प्रकार दुकानों, होटलों, सार्वजनिक कोष से अनुदान प्राप्त करने वाले या सार्वजनिक धनराशि द्वारा स्थापित धार्मिक भवनों, पुस्तकालयों और वाचनालयों में किसी भी व्यक्ति को प्रवेश करने से नहीं रोका जा सकता और जो कोई इसमें बाधा डालता है वह राज्य द्वारा दण्डनीय है। परन्तु इस महान् सुधार का एक और भी पक्ष है और वह है मन के निर्माण के सम्बन्ध में प्राचीन काल से चली आई बुराई को दूर करना। भारत के कुछ भागों में अपेक्षाकृत हाल में अस्पृश्यों के घर शेष गांव से कुछ दूर बनाए जाते हैं और यह दूरी कभी-कभी एक मील तक की होती है। इसके साथ ही कुछ ऐसे कस्बे भी हैं जहां हरिजनों के घर सवर्णों के घरों के साथ लगे हुए हैं। हमारी सरकार सवर्णों के ग्राम भागों और अवर्णों की आबादियों के बीच के अन्तर को भरने के लिये सुविधाएं प्रदान कर सकती है जो कि युक्तियुक्त है और जिससे दोनों को लाभ पहुंचेगा। जब इसे कार्यरूप में परिणत किया जायगा तो दोनों जातियों के लोग ऐसी स्थितियों में रहेंगे जो उनमें मैत्री भावना उत्पन्न करेंगी। एक जाति के लोग अक्सर दूसरी जाति के लोगों के घरों में आने-जाने लगेंगे।

हरिजन और उनके सहानुभूतिशील मित्र हरिजनोद्धार की समस्या के भाग के रूप में आर्थिक समस्याओं के प्रश्न को उठाते हैं। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अगर हरिजनोद्धार की समस्या का कोई आर्थिक पक्ष है तो केवल हरिजन ही इस आर्थिक निर्योग्यता के शिकार नहीं हैं। हमारे देश के पट्टेदारों में से ८५ प्रतिशत लोग हर पट्टे पर केवल दस रुपए सरकार को टैक्स के रूप में देते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हरेक जोत में एक एकड़ उपजाऊ जमीन या तीन एकड़ सूखी जमीन है। ये आर्थिक समस्याएं हरिजनों तथा दूसरी अनेक जातियों में समान हैं और इन जातियों की कुल संख्या हरिजनों की संख्या से बहुत अधिक है। हरिजनोद्धार की समस्या नैतिक ही अधिक है। आर्थिक दृष्टि से ये दूसरी जातियों से और अधिक विशेषाधिकारों का दावा नहीं कर सकते। विशेषाधिकारों के रूप में हरिजनों को शिक्षा तथा सार्वजनिक सेवाओं के क्षेत्र में कुछ रियायतें प्राप्त हैं जो दूसरे वर्गों को उपलब्ध नहीं।

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति में हरिजन समस्या भी वस्तुतः एक बहुत बड़ी बाधा थी। भारत की दासता के बन्धनों के टूटने के बाद यह बाधा उसके रास्ते से हट गयी है। संपूर्ण देश कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता जब तक कि उसका एक भाग परतन्त्र हो, इसलिये वह दिन बड़ा सौभाग्यशाली था जब महात्माजी ने अपने राष्ट्रीय आन्दोलन के तीन मुख्य कार्यक्रमों में अस्पृश्यता-निवारण को भी सम्मिलित किया। अपनी पद-यात्रा में देश के गांव-गांव में घूमते हुए महात्माजी ने खद्दर और साम्प्रदायिक एकता के साथ-साथ हरिजनोद्धार की तीव्र आवश्यकता पर भी बहुत अधिक बल दिया था। भारत की स्वतन्त्रता एक महान

है, वह आपकी शिष्ट एवं साभिप्राय भर्त्सना की ओर ध्यान देगा और अगले प्रातःकाल आप से क्षमा मांगेगा यद्यपि यह निश्चित है कि वह अपनी शराब न पीने की प्रतिज्ञा पर बिलकुल दृढ़ नहीं रहता। हमारे देश की सर्वसाधारण जनता की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने पर हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि मद्य-पान के अभ्यस्त वर्गों में भी शराब पीने की इस बुरी आदत में न फंसने की दृढ़ धारणा परिलक्षित होती है।

इतनी लंबी प्रस्तावना का यह अभिप्राय है कि मद्य-निषेध के कार्यक्रम को जनप्रिय बनाने के लिये हमारे देश की अवस्थाएं सर्वथा अनुकूल एवं उत्कृष्ट हैं। अमरीका जैसे देशों में जहां पहले मद्य-निषेध प्रचलित किया गया और बाद में छोड़ दिया गया वहां इस सुधार के लिये आवश्यक वातावरण नहीं था यद्यपि सार्वजनिक सम्मति कानून बनाने के पक्ष में थी। पहले तो भारत में मद्य-निषेध विषयक कानून बनाने के विरुद्ध कोई विरोध नहीं होगा और यदि कुछ वर्गों के पुरुषों ने मद्य-पान का समर्थन किया तो महिलाएं तो सभी ही मद्यपान की बुराई के विरोध में होंगी। हमारे देश के निर्वाचकों की सूची में १९ करोड़ पुरुष और महिलाएं लगभग बराबर-बराबर संख्या में हैं और यदि बहुसंख्यक पुरुष मद्य-निषेध का समर्थन करेंगे समस्त महिला-निर्वाचक अत्यन्त प्रबल एवं दुर्धर्ष रूप में किसी भी रूप में मद्य-निषेध के कानून में ढिलाई करने का विरोध करेंगी। धार्मिक पृष्ठभूमि सामाजिक अवस्थाएं, सार्वजनिक सम्मति तथा पारिवारिक प्रभाव—ये सब मद्य-पान के विरुद्ध हैं। मद्य-निषेध के विरोधियों की ऐसा तर्क करने की प्रवृत्ति है कि मद्य-निषेध के कानूनों का सम्मान जनता उनका भंग करके ही करती है उनका पालन करके नहीं। भले ही ऐसा हो सुधारक के लिये तो इतना पर्याप्त है कि मद्य-पान की खुली स्वीकृति एवं समर्थन को जनता प्रोत्साहित नहीं करती। छद्मव्यापी पैमाने पर नाजायज शराब बनाई जाती है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मद्य-निषेध के कानून में ढील की जाय सार्वजनिक स्थानों में स्थित शराबखानों में शराब की खुले आम बिक्री को तो यह और भी कम न्याय्य ठहराता है। कानूनों का उल्लंघन किया जाता है इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि कानूनों का ही खात्मा कर दिया जाय। क्या समस्त पुलिस शक्ति हत्याओं के रोकने में सफल हुई है? अपराधी की छानबीन में असफलता के कारण खुफिया पुलिस और उसके छानबीन के तरीका की समाप्ति तो नहीं कर दी गई है। क्योंकि नाजायज तौर पर शराब बनाई जाती है इस आधार पर मद्य-निषेध के कानून की समाप्ति की मांग में कोई न्यायपरता दृष्टिगोचर नहीं होती। हम से यह बात छिपी नहीं है कि नाजायज शराब बनाना इस प्रकार संगठित है कि सारे देश में नीचे से लेकर ऊपर तक एक ऐसा पूर्ण संगठन मौजूद है जो बैरल। शराब को गांवों से शहरों और कस्बों में पहुंचाता है और यह सब काम पुलिस की जानकारी तथा सहयोग में सम्पन्न होता है। क्या हम इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि कई शहरों में सर्वोच्च अधिकारी को जुआ घरों के स्वामियों द्वारा प्रतिदिन हजारों रुपया की भेंट चढ़ायी जाती

# नौवाँ अध्याय

## मद्य निषेध

सौभाग्य से हमारे देश में ऐसी जातियां बसती हैं जिनकी धार्मिक व्यवस्थाओं का निर्माण पूर्ण मद्य-निषेध के नैतिक आधार पर हुआ है चाहे बाद में भले ही धार्मिक व्यवस्थाओं का विकास भिन्न रूप में हुआ हो और यह कथन सत्य हो कि ईसाई मिशनरियों ने एक हाथ में बाइबिल और दूसरे हाथ में शराब की बोतल लेकर इस देश में प्रवेश किया था परन्तु अगर कोई यह साधारण सा प्रश्न पूछे कि भारत में विद्यमान हिन्दू, मुस्लिम सिख पारसी ईसाई और जैन आदि सब धर्मों में सर्वसामान्य तत्त्व क्या है तो इसका उत्तर होगा —मद्य-निषेध।

दुर्भाग्य से ब्रिटिश शासन-काल में लोग खुल्लम-खुल्ला शराब पीने लगे और कभी-कभी तो सभ्य समाज के अन्दर शराब पीना एक फ़ैशन समझा जाने लगा और शराब न पीना पिछड़ेपन की निशानी। मद्यपान की बुराइयां गिनाना अनावश्यक है। इसकी सब से पहली बुराई तो यह है कि इससे शक्ति का ह्रास होता है और मनुष्य की उचित तथा अनुचित में विवेक करने की शक्ति जाती रहती है। इस प्रकार जब शराब सार्वजनिक राजस्व प्राप्ति का एक साधन बन गई और इसका इस आधार पर समर्थन किया जाने लगा कि इससे उपलब्ध राजस्व से शिक्षण-संस्थाओं तथा चिकित्सालयों का संचालन किया जा सकता है तो यह हमारे सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन का एक अनिवार्य घटक बन गयी। गांधीजी ने शराब की दुकानों पर महिलाओं तथा पुरुषों द्वारा मद्य-बहिष्कार के लिये पिकेटिंग का आयोजन करके इस पर एक घातक प्रहार किया। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व विभिन्न धार्मिक जातियों में से केवल पारसी ही बहुत थोड़े परिमाण में मद्य-पान के अभ्यस्त थे। उनके यहां तो पानी के स्थान पर बीअर का प्रयोग किया जाता है। फिर भी समाज के धर्मपरायण कट्टर व्यक्ति नियम के रूप में मद्य-पान को प्रोत्साहन नहीं देते। इस प्रकार की परिस्थितियों में हमारे देश में मद्यपान की समस्या अमरीका या इंगलैंड में जनता की मद्यपान-विषयक समस्या से सर्वथा भिन्न थी। हमारे देश में भी ऐसा नहीं है कि सभी लोग मद्यपान की निन्दा करते हों और इसे हेय समझते हों। परन्तु यह स्पष्ट सत्य है कि यहां शराब पीने वालों की संख्या कम है और वे भी खुले आम शराब नहीं पीते। सार्वजनिक शराबखाने में जाने वाला व्यक्ति भी अपनी जान-पहचान के लोगों के बीच प्रतिष्ठापूर्ण सभ्य आचार व्यवहार के प्रति पूर्ण आदर प्रदर्शित करता है और वह खुले आम शराब पीने का साहस नहीं करता। आवारा शराबी जो रात को शराब के नशे में चूर होकर व्यर्थ का प्रलाप करता

## दसवां अध्याय

# पंचवर्षीय आयोजनाएं

कांग्रेस ने सन् १९३८ में हरिपुरा कांग्रेस के अवसर पर श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक आयोजना आयोग की स्थापना की थी। बाद में भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिये एक आयोजना आयोग की स्थापना की २३५६ करोड़ रुपये इस पर खर्च किए गए और परिणामतः हमारे देश की कुल आय २५५ करोड़ रुपए से बढ़कर २८ करोड़ रुपए हो गई अर्थात् राष्ट्रीय आय में १ प्रतिशत की वृद्धि हुई। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में सन् १९५५-५६ की २५ करोड़ रुपये वार्षिक आय को सन् १९६०-६१ में ११ करोड़ रुपये तक ऊंचा उठाने का प्रस्ताव किया गया है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की समाप्ति पर ऐसी आशा है कि राष्ट्रीय संपत्ति १ ८ करोड़ रुपए से बढ़कर ११४८ करोड़ रुपये हो जायगी। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की सफलताएं इस प्रकार थीं—

(१) राष्ट्रीय आय में १८ प्रतिशत वृद्धि।

(२) खाद्य पदार्थों में २ प्रतिशत वृद्धि।

(३) कृषियोग्य भूमि में ६ लाख एकड़ों की वृद्धि हुई जबकि छोटी सिंचाई योजनाओं द्वारा १ करोड़ एकड़ भूमि में उत्पादन की प्रत्यक्ष वृद्धि हुई।

(४) औद्योगिक विद्युत् शक्ति सन् १९५०-५१ में ६६,७५ लाख किलोवाट से बढ़कर सन् १९५५-५६ में ११ लाख किलोवाट हो गई।

(५) सीमेंट का उत्पादन २ लाख ७ हजार टन से बढ़कर ४ लाख ३ हजार टन हो गया।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना का आरम्भ अप्रैल १९५६ में हुआ। इस आयोजना पर ४८ करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान है। इस वांछित धनराशि को जनता पर नए टैक्स लगाकर, राष्ट्र से घाटे और बड़े ऋण लेकर तथा ७ करोड़ रुपए के लगभग विदेशी सहायता द्वारा जुटाने का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि २८ करोड़ रुपये की धनराशि निजी उद्यमों द्वारा लगायी जायगी।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में तीन नये इस्पात के कारखाने भिलाई दुर्गापुर और रूरकेला में तथा तीन खाद बनाने के कारखाने नोंवेली और सिन्दरी के खाद-कारखाने के उत्पादन में वृद्धि की जायगी।

उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में निम्न वृद्धि की जायगी

है। हत्या और आगजनी जैसे अपराधों के अपराधियों का पता नहीं चल पाता और न इन अपराधों की संख्या में कोई कमी दिखायी देती है। मद्यपान और वेश्यावृत्ति जैसे नैतिक अपराधों का पता लगाना और उन्हें नियन्त्रित करना कितना अधिक कठिन होगा? कानून को शिथिल करने के पक्ष में इस आधार पर दिया गया तर्क कि वर्तमान कानून अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ है इस बात का प्रमाण है कि उस बुराई को नियन्त्रित करने के निमित्त स्थापित संगठन को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाय। मद्य-निषेध का कानून एक स्थायी नैतिक उपाय है जो समाज को बार-बार यह स्मरण कराता है कि सत्य और पुण्य की शक्तियों को शक्तिशाली बनाया जाय और उन्हें तीव्र किया जाय ताकि बुराई और पाप को नियन्त्रित किया जा सके और एक दिन दुनिया के पर्दे पर से उसका नामोनिशां मिटा दिया जाय।

समूह के विद्यार्थियों की संख्या में २२.५ प्रतिशत की वृद्धि होगी अर्थात् १ लाख २ हजार। इसके लिये ५१ नये प्राइमरी स्कूल और १५ मिडिल स्कूल खोलने पड़ेंगे।

स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में डाक्टरों की संख्या में १८ प्रतिशत नर्सों की संख्या में ४१ प्रतिशत स्वास्थ्य सहायकों की संख्या में ७५ प्रतिशत और चिकित्सालय पर्यंकों की संख्या में २४ प्रतिशत वृद्धि होगी।

जनता का जीवन-स्तर उन्नत करने के लिये ऐसी कई आयोजनाओं के निर्माण की आवश्यकता होगी और जनता को अपनी शक्तों को देश-निर्माण के कार्य में लगाकर बलिदान के लिए सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये ताकि हमारा देश द्रुत गति से प्रगति-पथ पर आरूढ़ हो सके।

केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि ही पर्याप्त नहीं है। यह भी सम्भव है कि सारे राष्ट्र की आय में तो वृद्धि हो जाय परन्तु एक चौथाई जनता शेष तीन-चौथाई जनता की गाढ़े पसीने की कमाई पर मुफ्त्तर उड़ाती रहे। राष्ट्रीय आय में वृद्धि का सम-वितरण होना चाहिये और इससे राष्ट्र की आर्थिक शक्ति का विकास होना चाहिये। बढ़े हुए उत्पादन का अर्थ होना चाहिए विस्तृत वितरण न कि केन्द्रित वृद्धि। उद्योगों के शीघ्र विकास द्वारा उत्पादन में वृद्धि की जानी चाहिए और इससे रोजगार तथा अवसरों में विस्तार होना चाहिए। सबसे बढ़कर, उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ आयों और संपत्ति की असमानताएं कम होनी चाहिएं और आर्थिक शक्ति का अधिक सम-वितरण होना चाहिए। बढ़े हुए उत्पादन के लिये उद्योगों के शीघ्र विकास की आवश्यकता है और समाज-सेवाओं के लाभ जनसाधारण तक पहुंचने चाहिएं।

समस्त वृद्धि चाहे वह संपत्ति की हो या शक्ति की श्रमिकों के अधिक घोर परिश्रम और मस्तिष्क के समुचित उपयोग पर आधारित है। वस्तुतः मस्तिष्क की प्रगति के उपरान्त ही संपत्ति और शक्ति की वृद्धि होती है। राष्ट्र के प्रतिभाशाली बुद्धिमान व्यक्तियों को नये अन्वेषणों एवं आविष्कारों द्वारा राष्ट्र की उन्नति में प्रयत्नशील होना चाहिए। इस प्रकार की गतिविधियों के लिये अनुसन्धान संस्थाओं की आवश्यकता है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए हमारी राष्ट्रीय सरकार ने निम्न संस्थाओं की स्थापना की है —

१ भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला दिल्ली।
२ रसायन अनुसन्धान प्रयोगशाला पूना।
३ विद्युत्-रासायनिक प्रयोगशाला कराईकुडी।
४ चर्म व्यापार प्रयोगशाला मद्रास।
५. भोज्य द्रव्य प्रयोगशाला मैसूर।
६ केन्द्रीय औषधि अनुसन्धान प्रयोगशाला लखनऊ।
७ ईंधन अनुसन्धान प्रयोगशाला धनबाद।

(१) कपड़े का उत्पादन १८५  लाख गज से बढ़कर ८५  लाख गज हो जायगा।

(२) खाद का उत्पादन १७ लाख टन से बढ़कर २१ लाख टन किया जायगा।

(३) बाइसिकलें ५॥ लाख से बढ़कर १  लाख बनने लगेंगी।

(४) सिलाई की मशीनें ११  से बढ़कर २२  हो जायेंगी।

(५) बिजली के पंखे २७५  से बढ़कर ६  हो जायेंगे।

(६) खाद्य पदार्थों में २५ प्रतिशत की वृद्धि होगी अर्थात् ६५ लाख टन से बढ़कर ८७ लाख टन।

२१ लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि पर कृषि की जायगी अर्थात् ११ लाख टन अनाज की वृद्धि होगी जिसमें से १ लाख टन वाणिज्यिक फसलें होंगी।

(७) सीमेंट ४ लाख १ हजार टन से बढ़कर ११ लाख टन हो जायगा।

(८) अल्यूमिनियम का उत्पादन ७५  टन से बढ़कर २५  टन हो जायगा।

(९) दूसरी वस्तुएं हैं इस्पात का सामान मशीनी औजार, सीमेंट बनाने की मशीनरी और वस्त्र-निर्माण की मशीनें।

(१ ) भारी रसायन (क) गन्धकाम्ल (ख) सोडा ऐश (ग) कास्टिक सोडा।

इससे पता चलता है कि मूल और भारी उद्योगों के विकास पर बहुत बल दिया जा रहा है। इन वस्तुओं के उत्पादन का उद्देश्य अन्ततः उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन है यद्यपि यह आगे चलकर सम्भव होगा।

इस सबके बावजूद भी ऐसा भय है कि बेकारी की स्थिति अधिक या कम स्थिर रहेगी परन्तु यह पहले से खराब नहीं होगी। शिक्षितों की बेकारी की स्थिति में निम्न साधनों से सुधार की सम्भावना है—

(क) सिंचाई सुविधाएं।

(ख) भूमि-सुधार।

(ग) बागबानी की योजनाओं का विस्तार और विकास।

(घ) लघु और ग्रामोद्योग।

ऐसी आशा की जाती है कि प्रथम आयोजना के ५३३ करोड़ की अपेक्षा द्वितीय आयोजना में समाज सेवा के कार्यों पर ९४५ करोड़ की धनराशि के व्यय द्वारा शैक्षणिक एवं चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओं द्वारा कर्मचारियों तथा पिछड़े वर्गों समेत औद्योगिक श्रम के कल्याण-साधन द्वारा जनता का जीवन-स्तर उन्नत हो जायगा।

नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के परिणामस्वरूप ६ ११ आयु-समूह के विद्यार्थियों में ६३ प्रतिशत की वृद्धि होगी अर्थात् ७ लाख ७ हजार ११ १४ आयु

ग्यारहवाँ अध्याय

# समाजवादी ढाँचा

राष्ट्र के पुनर्निर्माण का उद्देश्य न तो ग्राम की प्राचीन आत्म-निर्भर अर्थ-व्यवस्था को फिर से लाना है और न यन्त्र-युग की आधुनिक अर्थ-व्यवस्था के लिये प्रयत्न करना है। सन् १९४८ में सरकार द्वारा घोषित अपनी औद्योगिक नीति में एक मिश्रित अर्थ व्यवस्था का प्रस्ताव किया गया था परन्तु उद्योगों के सुनियोजित विकास और उनके विनियमन का पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार का था। सार्वजनिक हित में किसी भी औद्योगिक व्यवसाय को हस्तगत करने का पूर्ण अधिकार होते हुए भी सरकार ने निजी उद्यम के लिये पर्याप्त एवं उपयुक्त क्षेत्र छोड़ा था। शस्त्र और गोला-बारूद, आणविक शक्ति, रेलों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध और परिवहन —ये सब केन्द्रीय सरकार के एकाधिकार के विषय रखे गये थे। इसके अतिरिक्त, कोयला, लोहा, इस्पात, वायुयान-निर्माण, जलयान-निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राम (रेडियो सेट को छोड़ कर) तथा खनिज तैलों के उत्पादन के लिये राज्य पूर्ण रूप से उत्तरदायी है। अब तक जिन संस्थाओं द्वारा इन उद्योगों का संचालन किया जा रहा है वे दस वर्षों तक अपना कार्य-कलाप जारी रखेंगे उनके बाद स्थिति का फिर से निरीक्षण किया जायगा। शेष औद्योगिक क्षेत्र निजी या सहकारी उपक्रम के लिये खुला था। पूर्वोक्त औद्योगिक नीति के सम्पूर्ण निरूपण को दृष्टि में रखते हुए सरकार ने उद्योगों को विनियमित और विकसित करने तथा निजी क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का निश्चय किया ताकि प्रबन्ध में सन्तोषजनक प्रगति हो सके और उसका समुचित स्तर स्थापित किया जा सके। इस उद्देश्य के लिये संविधान में संशोधन किया गया और उद्योग (विकास तथा विनियमन) अधिनियम १९५१ पास किया गया। इस नियम के अधीन सब वर्तमान तथा नये व्यवसायों की रजिस्ट्री आवश्यक है या उनके लिये लाइसेंस लेना जरूरी है और किसी विशेष उद्योग की परीक्षा करना या उसके प्रबन्ध में विशेष नियन्त्रण सरकार के विवेक पर आश्रित है।

उद्योग धन्धे, ग्रामोद्योग तथा प्राविधिक उत्पादनों के प्रतिनिधियों की एक केन्द्रीय सलाहकारी परिषद् का निर्माण किया गया ताकि वह उद्योगों के विकास तथा विनियमन से सम्बन्धित मामलों में सरकार को परामर्श दे सके। इसी तरह व्यक्तिगत उद्योगों या उनके समूहों के लिये विकास परिषदों की स्थापना की गयी। इस प्रकार देश के आयोजन का सर्वांगीण उद्देश्य बड़े तथा लघु उद्योगों का सर्वांगीण विकास और विभिन्न उद्योगों का समन्वित विस्तार निश्चित किया गया है।

८ सिरैमिक एवं कांच अनुसन्धान प्रयोगशाला कलकत्ता।

९ भवन-निर्माण अनुसन्धान प्रयोगशाला रुड़की।

१० सड़क अनुसन्धान प्रयोगशाला दिल्ली।

११ धातुशोधन अनुसन्धान प्रयोगशाला।

एंथ्रोपोलोजिकल तथा बोटानिकल सर्वे के विषय में अनुसन्धान करने के लिये हमारे देश में दूसरी संस्थाएं भी हैं।

इसके अतिरिक्त सरकार ने निम्न संस्थाओं की स्थापना की योजना भी बनाई है—

१ सेन्ट्रल मैकेनिकल इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट एवं इंडस्ट्रियल म्यूजियम कलकत्ता।

२ केन्द्रीय प्रयोगशालाएं, हैदराबाद।

३ चिकित्सा अनुसन्धान संस्था कलकत्ता।

४ राष्ट्रीय जीव-विद्या अनुसन्धान संस्था।

५ मरुभूमि अनुसन्धान संस्था।

६ भू-भौतिकी की केन्द्रीय संस्था।

७ विद्युत् एवं इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थाएं

(क) वैज्ञानिक अनुसन्धान।

(ख) गैस टरबाइन अनुसन्धान।

(ग) वायु-शक्ति।

(घ) लोह-उत्पादन।

(ङ) सुपरिचित देशी चिकित्सा-सम्बन्धी पौधों एवं प्राणिशास्त्रीय उत्पादन के विषय में अनुसन्धान।

विस्तार योजनाएं (क) केन्द्रीय वनस्पति-संग्रहालय (ख) समुद्री जीव-जन्तुओं का स्टेशन (ग) फ्रेश-वाटर बायोलाजिकल स्टेशन (घ) पशुओं की आबादी के अध्ययनार्थ स्टेशन।

विज्ञान मंदिर ग्राम्य वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं, कोचीन में समुद्र से सम्बन्धित अनुसन्धान।

५. मशीन टूल प्रोटोटाइप फैक्ट्रियाँ
६. विशाखापत्तनम में जल-यान निर्माण का कारखाना
७. डी डी टी फैक्ट्रियाँ
८. पैनिसिलिन फैक्ट्रियाँ
९. राष्ट्रीय यन्त्र
१० न्यूज़पेपर फैक्ट्रियाँ
११ इलैक्ट्रॉनिक्स
१२ हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्टरी
१३ भारी बिजली के सामान
१४ संक्लिष्ट तैल परियोजनाएँ
१५ तैल की खोज
१६ आणविक शक्ति परियोजना
१७ भिलाई रूरकेला और दुर्गापुर में इस्पात के कारखाने
१८ कोयला
१९ लिग्नाइट
२० चितरंजन में रेल के इंजिन बनाने का कारखाना।
२१ रेलगाड़ी के डिब्बे बनाने का कारखाना

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में देश में बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण की योजना बनायी गयी है। आयोजना-काल में औद्योगिक क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि एवं विकास की आशा की जाती है। आयोजना में सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों की इस प्रकार की रूप रेखा तैयार की गयी है जिसमें भौतिक प्रगति उच्च मानवीय मूल्यों के अनुरूप होगी जो एक सुव्यवस्थित एवं सुन्दर सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। भारत के समाजवादी ढाँचे के समाज की स्थापना के लक्ष्य की दिशा में यह एक महान् प्रयास है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना का निर्माण (क) राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि के लिए, (ख) आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास द्वारा शीघ्रगामी उद्योगीकरण के लिए (ग) नियोजन और अवसरों के महान् विस्तार के लिए तथा (घ) आयों एवं सम्पत्तियों की असमानताओं में कमी करने के लिए और धन तथा शक्ति के आर्थिक सम वितरण के लिए किया गया है।

जुलाई, १९४८ में औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गयी थी राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम अक्तूबर, १९५४ में स्थापित किया गया और उद्योगों के, विशेषतः मध्यम तथा लघु स्तर के उद्योगों के शीघ्रगामी विकास के लिये कई राज्य वित्त निगमों की स्थापना की गयी है। राष्ट्रीय औद्योगिक वित्त निगम एक निजी सीमित कम्पनी है जिसकी अधिकृत पूंजी १ करोड़ रुपये है जिसमें सरकार के १ लाख के हिस्से हैं। जिन महत्वपूर्ण उद्योगों को इस प्रकार सहायता पहुंचायी गयी है उनमें से कुछ निम्न हैं लोहा और इस्पात बिजली के पंखे बाईसिकिल हरीकेन लैम्प काटने के औजार, डीजल इंजिन बोल्ट और नट इलैक्ट्रो-प्लेटिंग इनैमिलिंग पेंच रेजर ब्लेड शीट ग्लास, स्पिरिट ग्लास मोल्ड प्लास्टिक का सामान, प्लाईवुड के चाय के डिब्बे कपड़े की मशीनरी लोहारी के औजार, ऐसबस्टोस सीमेंट की मशीनरी शीशे का सामान इस्पात उत्पादन के यन्त्र रंगों का विकास रबड़ उद्योग वायु-चालक बैरिंग इलैक्ट्रोड रेयोन उद्योग चाय उद्योग टैक्सटाइल मशीनरी तथा पावर अल्कोहल।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में उद्योगों के विस्तार में अच्छी वृद्धि हुई। आयोजना में उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किये गये और व्यक्तिगत क्षेत्र में औद्योगिक परियोजनाओं की वृद्धि हुई। निम्न उद्योगों का विस्तार किया गया पैट्रोल-शोधन लोहा और इस्पात रेल के डिब्बे अल्यूमीनियम रेयोन कपास और विद्युत् उत्पादन। औद्योगिक उत्पादन के देशनांक में जो कि आयोजना से पहले १ ५ था धीमे-धीमे वृद्धि हुई।

समाज के लिये समाजवादी ढांचे का लक्ष्य निर्धारित करने के उपरान्त औद्योगिक नीति का तदनुसार परिवर्तन एवं घोषणा आवश्यक हो गयी जो हमारे भावी विकास के ढांचे की ओर निर्देश करती थी।

नयी औद्योगिक नीति का प्रस्ताव प्रधान मंत्री महोदय ने १ अप्रैल १९५६ को द्वितीय आयोजना को प्रारंभ करते समय संसद् के सम्मुख रखा। प्रस्ताव में उद्योगों के विकास में राज्य के भाग एवं उत्तरदायित्व पर बल दिया गया है। नये प्रस्ताव के अनुसार, उद्योगों की दो सूचियां हैं जिनके विषय में राज्य के उत्तरदायित्व की परिभाषा की गयी है। 'अ' सूची में १७ उद्योग आते हैं जो कि पूर्णतः राज्य का उत्तरदायित्व है। 'ब' सूची के अन्तर्गत ऐसे उद्योग हैं जो धीरे धीरे राज्य के स्वामित्व में आ जायेंगे।

नीचे कुछ औद्योगिक परियोजनाएं दी गई हैं जो दोनों पंचवर्षीय आयोजनाओं के क्षेत्र में आती हैं

१ खाद के कारखाने
२ तार के कारखाने
३ टेलीफोन के कारखाने
४

५. मशीन टूल प्रोटोटाईप फैक्ट्रियां
६ विशाखापत्तनम में जलयान निर्माण का कारखाना
७ डी डी टी फैक्ट्रियां
८ पैनिसिलिन फैक्ट्रियां
९. राष्ट्रीय यन्त्र
१ न्यूजपेपर फैक्ट्रियां
११ इलैक्ट्रोनिक्स
१२ हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट फक्टरी
१३ भारी बिजली के सामान
१४ संश्लिष्ट तैल परियोजनाएं
१५. तैल की खोज
१६ आणविक शक्ति परियोजना
१७ भिलाई रूरकेला और दुर्गापुर में इस्पात के कारखाने
१८ कोयला
१९ लिगनाइट
२ चित्तरंजन में रैल के इंजिन बनाने का कारखाना।
२१ रैलगाड़ी के डिब्बे बनाने का कारखाना

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में देश में बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण की योजना बनायी गयी है। आयोजना-काल में औद्योगिक क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि एवं विकास की आशा की जाती है। आयोजना में सामाजिक एवं आर्थिक सबंधो की इस प्रकार की रूप रेखा तैयार की गयी है जिसमें भौतिक प्रगति उच्च मानवीय मूल्यों के अनुरूप होगी की एक सुव्यवस्थित एवं सुन्दर सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। भारत के समाजवादी ढांचे के समाज की स्थापना के लक्ष्य की दिशा में यह एक महान् प्रयास है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना का निर्माण (क) राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि के लिए, (ख) आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास द्वारा शीघ्रगामी उद्योगीकरण के लिए (ग) नियोजन और अवसरों के महान् विस्तार के लिए तथा (घ) आयों एवं सम्पत्तियों की असमानताओं में कमी करने के लिए और धन तथा शक्ति के आर्थिक सम वितरण के लिए किया गया है।

## बारहवाँ अध्याय

# स्वतन्त्रता के बाद की सफलतायें

जब कांग्रेस ने सितम्बर, १९४७ में शासन भार सम्भाला तो हमारे देश में अनाज कपड़े और मकानों की कमी थी तथा प्रारंभिक माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए सुविधाओं का नितान्त अभाव था। कुशल कारीगरों की प्राचीन दक्षता का बहुत ह्रास हो रहा था हाथ के कते सूत का निर्माण और इस सूत से हाथ के बुने कपड़े का निर्माण लगभग बन्द हो गया था और यह कार्य बहुत छोटे स्तर पर कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम के भाग के रूप मे कहीं-कहीं जारी था। गांधीजी के सत्याग्रह की आयोजना केवल विनाशक ही नहीं थी अपितु आर्थिक सामाजिक तथा आचारात्मक क्षेत्रों में २७ विषयों को लेकर निर्माणात्मक भी थी। पुनर्निर्माण की ऐसी व्यापक आयोजना के लिये वर्तमान अवस्थाओं तथा बहुमुखी राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की रूपरेखाओं का अध्ययन बहुत आवश्यक था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त कांग्रेस की सफलताओं को पूर्णतः समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम अगस्त १९४७ तक की स्थितियों का अध्ययन करें।

भारत गणराज्य का क्षेत्रफल १२६९,६४ वर्ग मील और जनसंख्या ३६ करोड़ के लगभग है। यह पृथ्वी की परिधि का १/४० भाग घेरे हुए है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक की दूरी २ मील है और रेलगाड़ी से इस दूरी को पार करने में ६ दिन तथा ६ घंटे लगती है। उत्तर में हमारे देश की सीमा ८२ मील लम्बी है और समुद्री तट २९ ० मील लम्बा माना गया है। विशाल हिमालय की दीवार, गंगा ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों की घाटियों से बना हुआ हिन्दुस्तान का विशाल मैदान और उत्तरी मैदान के दक्षिण में प्रायद्वीप की विशाल समस्थल भूमि से हमारे देश की भौगोलिक रचना हुई है। ऐवरैस्ट संसार की सबसे ऊंची चोटी है और इसके साथ-साथ हिमालय की ऊंची पर्वत-शृंखला सिन्ध तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के बीच में १५ मील लंबी चली गयी है। हिमालय के नीचे उत्तर की ओर सिन्ध दरिया बह रहा है जो समुद्र में गिरने से पहले १८ मील की दूरी पंजाब के प्रदेश में से होकर पार करता है १८ मील लम्बी ब्रह्मपुत्र नदी असम के क्षेत्रों को शस्य-श्यामल बनाती है। सिन्ध और गंगा का मैदान सबसे अधिक उपजाऊ भाग है। पश्चिमी समुद्र तट का अधिकांश भाग तथा मध्य भारत कम उपजाऊ है, और राजस्थान का क्षेत्र लगभग मरुस्थल है। दक्षिण में पश्चिमी और पूर्वी घाटों के बीच दक्षिण का चौरस पठार है। ऊटकमण्ड (ऊटक्स) में नीलगिरी पर्वत-शृंखला ८१ फुट ऊंची है और दोदाबेट्टा

की चोटी इससे भी १ फुट ऊंची है। इन पर्वत-शृंखलाओं के साथ विन्ध्य और सतपुड़ा की पर्वत-शृंखलाएं, पचमढ़ी की महादेव पर्वत-शृंखलाएं, उत्तर पश्चिम में मैकल एवं अरावली पर्वत-शृंखलाएं तथा उत्तर-पूर्व में गारो और खासी की पहाड़ियां देश के जलवायु तथा ऋतु-संबंधी अवस्थाओं पर बहुत प्रभाव डालती है। उत्तर में बहने वाली नदियों में पानी हिमालय की बर्फ के पिघलने से आता है और दक्षिण में महानदी गोदावरी कृष्णा तथा पमा आदि नदियों में बरसात का पानी आता है और व ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती है।

क्योंकि हमारा देश अयनवृत्त खंड में स्थित है इसलिए इसका जलवायु भी अयन वृत्त तथा मानसून प्रकार का है। जबकि देश के कुछ भागों में दो ऋतुएं होती है एक गर्मी की और दूसरी अधिक गरमी की दूसरे भागों में तीन ऋतुएं होती है गर्मी वर्षा और शीत ऋतु और कभी-कभी चार ऋतुएं होती है—बसन्त ग्रीष्म वर्षा और शीत ऋतु। ८५ प्रतिशत वर्षा दक्षिण-पश्चिमी मानसून हवाओं के कारण होती है जो कि प्राय सितम्बर के तीसरे हफ्ते में पंजाब की ओर से आती है इसके बाद उस क्षेत्र में मौसम साफ होने लगता है और ठंड पड़ने लगती है फिर पूर्व तथा दक्षिण में धीमे-धीमे मौसम सुहावना होने लगता है।

हमारे देश के खनिज स्रोत प्रचुर संख्या में और विभिन्न प्रकार के है—(१) कोयले की कच्ची धात जो कि संसार में सबसे अधिक बहुमूल्य समझी जाती है, बिहार, उड़ीसा मध्य प्रदेश मद्रास बम्बई और मैसूर में होती है (२) कोयला बिहार और पश्चिमी बंगाल में पाया जाता है जहां समस्त उत्पादन का ८२ प्रतिशत होता है कोयले के रक्षित भंडारों का २ लाख टन का अनुमान है (३) मैंगनीज सबसे अधिक और सर्वोत्कृष्ट प्रकार का मध्य प्रदेश में होता है (४) बाक्साइट देश के विभिन्न स्थानों में पाया जाता है (५) अभ्रक राजस्थान बिहार और मद्रास में मिलती है, जो विश्व-उत्पादन का ७ से ८ प्रतिशत तक निकालते है (६) टिटैनियम और थोरियम की कच्ची धातें इलमेनाईट और मोनाजाईट तथा लाईमस्टोन भी पर्याप्त मात्रा में मिलते है (७) देश में तांबा टिन सीसा जस्त निकल कोबल्ट गंधक और सबसे बढ़ कर पैट्रोलियम की कमी है। इन खनिजों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के गुलाबी रंग के संगमरमर के पत्थर, ग्रेनाइट, लाल-भूरा सैन्ड-स्टोन सफेद और धूसर रंग के संगमरमर तथा लाईमस्टोन भी हमारे देश में मिलते है। काला पीला और चितकबरे रंग का संगमरमर भी हमारे देश में मिलता है। पूर्वी और पश्चिमी घाटों में टीक का बाहुल्य है जिसे एबोनी और बांस के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में हमारे देश में कृषियोग्य भूमि ८११ लाख एकड़ है। इसमें से ९२० लाख एकड़ के बारे में कोई संख्याएं प्राप्त नहीं है। शेष ७१९ लाख एकड़ में से १२८० लाख एकड़ में जंगल है १११ लाख १ हजार एकड़ उपजाऊ भूमि है, १५ लाख

१ हजार एकड़ अनुपजाऊ और गैर-आबाद जमीन है जिस पर सन् ५१-५४ में खेती नहीं होती थी। सन् ५१-५४ में ७७.४ प्रतिशत भूमि पर गेहूं की खेती होती थी १४.४ प्रतिशत भूमि पर तिलहन गन्ना और कपास जैसी वाणिज्यिक फसलों की खेती होती थी तथा १ प्रतिशत भूमि पर मिर्च मसाले उगाए जाते थे।

खाद्य-पदार्थों में क्षेत्रफल तथा उत्पादन की दृष्टि से चावल का प्रथम स्थान है सन् ५१-५२ में ७१ लाख ७ हजार और ७७ लाख १ हजार एकड़ों के बीच भूमि पर चावल की खेती होती थी और इसका उत्पादन २ ९ लाख ६ हजार तथा २७७ लाख ७ हजार टन के बीच था। पूर्वी और दक्षिणी भारत में चावल भोजन का प्रधान अंग है।

चावल के बाद गेहूं का नम्बर आता है जो कि उत्तरी भारत के अधिकांश भागों में मुख्य भोज्य पदार्थ है। १९५१-५२ से लेकर सन् १९५५ तक वार्षिक औसत उत्पादन ७ लाख ७ हजार टन था जबकि सन् ५५-५६ में यह उत्पादन बढ़ कर ८ लाख १ हजार टन हो गया। सन् ५५-५६ में ज्वार तथा बाजरे का उत्पादन १ करोड़ १ लाख ४ हजार टन था। भारत में २ लाख ५ हजार टन मक्का २ लाख ७ हजार टन जौ और २ लाख १ हजार टन दूसरे छोटे अनाज होते हैं। सन् ५५-५६ में देश में दालों का उत्पादन १ करोड़ २ हजार टन था। सन् ५५-५६ में ४४ लाख ५ हजार एकड़ भूमि पर गन्ने की खेती हुई और खांड का उत्पादन ५ लाख ९ हजार टन था।

भारत से तिलहनों तथा वानस्पतिक तेलों का दूसरे देशों को निर्यात किया जाता है। तिलहनों के कुल क्षेत्र में से ४ प्रतिशत पर मूंगफली की खेती होती है। इसके बाद अलसी और तीसामन का नम्बर आता है। यहां से चाय का भी दूसरे देशों को निर्यात किया जाता है जिससे ९ से १५ करोड़ रुपये तक की विदेशी मुद्रा की उपलब्धि होती है। तम्बाकू, कपास और जूट ये दूसरी नकदी की फसलें हैं। भारत तम्बाकू, कपास और रुई का सबसे बड़ा उत्पादक था परन्तु विभाजन से इन के उत्पादन पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इनके उत्पादन में वृद्धि के लिए महान् प्रयत्न किये गये जिसके परिणामस्वरूप सन् ५५-५६ में ४ लाख कपास की गांठें जिसमें हर गांठ का वजन ३९२ पौंड था तैयार की गईं और जूट की गांठें, जिसमें हर गांठ का वजन ४ पौंड था ४ लाख १ हजार तैयार हुईं। सन् ४९-५ की तुलना में सन् ५५-५६ में जूट की गांठें १ लाख बढ़ गईं। २१.१ प्रतिशत भूमि पर हिमालय विन्ध्य और दक्षिण के जंगल फैले हुए हैं। इन जंगलों से जलाने का ईंधन और इमारती लकड़ी मिलती है पशुओं के लिये चरागाहें मिलती हैं भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है और भूमि का जल-क्षेत्र स्थायी रहता है। वनों से भूमि के कटाव को रोकने में सहायता मिलती है और ये हवाओं से बीरान भूमियों की नमी सूखने देते। इमारती लकड़ी का वार्षिक उत्पादन इस समय १ लाख ७ हजार टन है। वनों से

प्राप्त होने वाली लाख मोम और जड़ी बूटियों की कीमत ५.९७ करोड़ रुपये है और चिरा चराई, प्लाईवुड तथा कागज उद्योग के लिए कच्चा माल भी वनों से मिलता है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में वनों के विकास की योजनाओं पर ५७ करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे। इन योजनाओं में संचार साधनों का विकास तथा वनों का सुधार सम्मिलित है।

हमारे देश में पशुओं की संख्या १५८ लाख ९ हजार है और भैंसें ४४ लाख १ हजार हैं। दूध का वार्षिक उत्पादन १९० लाख १ हजार टन है और दूध तथा दूध से बनी वस्तुओं की प्रति व्यक्ति दैनिक खपत का अनुमान ५.२१ औंस है।

१९५१ की गणना के अनुसार मुर्गियों और बतखों आदि पालतू पक्षियों की संख्या ९७ लाख ४ हजार है। भेड़ें ३८ लाख ७ हजार हैं। १४ पशु-चिकित्सा की शिक्षा प्रदान करने वाले कालेज हैं। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में पशु-पालन की योजनाओं पर ५.१ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। भारत की राष्ट्रीय आय में मछलियों से १ करोड़ रुपये की आय सम्मिलित है। भारत में मछलियों के वार्षिक उत्पादन का अनुमान १ लाख टन है जिसमें से ७ प्रतिशत मछलियाँ तो समुद्र से आती हैं और शेष ताजे पानी में से।

भारत में ७२ शहर हैं जिनकी आबादी २ करोड़ ४ लाख या इससे अधिक है। १९४१ से इनकी संख्या बढ़ रही है और द्रुतगामी उद्योगीकरण के कारण नये नगरों का जन्म हो रहा है। सन् १९४१ की तुलना में भारत की शहरी जनसंख्या में ४१.८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। बड़े-बड़े शहरों में पाकिस्तान से लाखों विस्थापित व्यक्ति आकर बस गये हैं और आधुनिक सुख-सुविधाओं, शैक्षणिक तथा व्यावसायिक सुविधाओं के कारण भी लोग शहरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

सांस्कृतिक क्षेत्र में प्राचीन भारतीय भवन-निर्माण विद्या मूर्ति कला नाटक नृत्य संगीत तथा चित्राङ्कन का पुनरन्वेषण एवं सुधार किया जा रहा है।

## तेरहवाँ अध्याय

# भूमि-सुधार

पिछले १ वर्षों में स्वतन्त्र भारत में भूमि-सुधार संबंधी जो कदम उठाये गए हैं उनकी मिसाल भूमि-सुधार के इतिहास में मिलनी मुश्किल है। हमने केवल भूमि-समस्या का ही समाधान नहीं किया है अपितु सामन्तवाद की आधारशिलाओं को भी भूमिसात् कर दिया है। यद्यपि हम यह घोषणा करने की स्थिति में नहीं हैं कि हमने सामन्तवाद का बिल्कुल नामोनिशां ही मिटा दिया है। यद्यपि हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने कृषक वर्ग की गरीबी और दुःख-दैन्य का समलोन्मूलन कर दिया है फिर भी स्थिति में अपेक्षाकृत बहुत अधिक सुधार हुआ है। सन् १९३७ में फैजपुर कांग्रेस के अवसर पर कृषि कार्यक्रम का उद्घाटन किया गया। १९४८ में और अधिक कृषि संबंधी सुधार हुए तथा १९४९ में कांग्रेस की कृषि-सुधार समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और इसके बाद कांग्रेस ने बहुत से भूमि-संबंधी प्रस्ताव पास किये और अपनी भूमि-नीति की घोषणा की।

भूमि सुधार के क्षेत्र में निम्न कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया—(१) मध्यस्थों का उन्मूलन (२) काश्तकारी सुधार—(अ) उपज का चौथाई या पांचवां भाग भूमि-किराये के रूप में नियत करना (ब) काश्तकारों को भूमि का स्थायी अधिकार सौंपना परन्तु जमींदार को हक होगा कि वह एक निश्चित अवधि के भीतर अपनी निजी कृषि के लिये कम से कम जोत अपने अधिकार में रख सके। (स) काश्तकारों को इस योग्य बनाना कि वे जमींदार को कुछ नियत वर्षों में मुआवजा देकर भूमि के मालिक बन सकें परन्तु इसमें शर्त यह होगी कि जमींदार स्वयं खेती करने के लिये भूमि को फिर से अपने अधिकार में ले सकेगा (३) जोतों की उच्चतम सीमा का निर्धारण करना (४) कृषि का पुनस्संगठन जिसमें जोतों की चकबन्दी खण्ड-विभाजन का निवारण और सहकारी ग्राम प्रबन्ध तथा सहकारी कृषि सम्मिलित है।

असम बिहार, उड़ीसा कच्छ हिमाचल प्रदेश केरल राजस्थान मैसूर तथा अजमेर में मध्यस्थों के उन्मूलन का कार्य क्रियात्मक रूप में पूर्ण हो चुका है। जिन राज्यों में पहले ही इस विषय मे कानून बन गये हैं वहां राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली मुआवजे की राशि ١٥ ४ करोड़ रुपये है। ७९ १ करोड़ रुपये के पुनर्संस्थापन के अनुदान इसके अतिरिक्त हैं। अब तक वर्तमान जोतों की कोई उच्चतम सीमा निर्धारित नहीं की गयी। परन्तु जनवरी सन् १ ५७ में राष्ट्रीय विकास परिषद् की जो बैठक हुई उसमें सीमा निर्धारित करने के पक्ष में निश्चय किया गया और फलस्वरूप आयोजना आयोग द्वारा एक भूमि-सुधार

समिति की भी स्थापना की गयी है। ऐसा कहा जाता है कि वर्तमान जोतों पर १० एकड़ की उच्चतम सीमा निर्धारित की जायगी। निम्न राज्यों में भविष्य में निम्न सीमा-निर्धारण होगा —उत्तर प्रदेश १ एकड़ पश्चिमी बंगाल ११ एकड़ हैदराबाद १ पारिवारिक जोतें मध्य भारत ५ एकड़ सौराष्ट्र १ पारिवारिक जोतें दिल्ली १ स्टैण्डर्ड एकड़।

भूमि-सुधार नीति का मूल उद्देश्य ग्रामीण समाज का शान्तिमय तथा अहिंसक तरीकों से पुनर्संगठन एवं परिवर्तन है। इसके बाद सहकारी खेती की बारी आती है क्योंकि इसी में हमारी देश की भूमि-समस्याओं का अन्तिम समाधान निहित है।

## चौदहवाँ अध्याय

# सामुदायिक विकास कार्यक्रम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का ध्येय जनता के सक्रिय सहयोग द्वारा भारत के ग्रामों का पुनरुज्जीवन एवं विकास है। यह कार्यक्रम सरकार के सक्रिय सहयोग के साथ-साथ जनता द्वारा आयोजित एवं कार्यरूप में परिणत किया जाता है। सर्वप्रथम यह २ अक्तूबर १९५२ को प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम की सफलता के बारे में सन्देह प्रकट किये गये कि इतने विशाल क्षेत्र में इतने बड़े पैमाने पर जनता और सरकार के सहयोग द्वारा किस प्रकार कार्य सम्पन्न होगा। शुरू में ५५ केन्द्रों में सामुदायिक विकास का कार्य प्रारम्भ किया गया। हजारों की संख्या में लोगों ने सामुदायिक विकास के कार्यों में भाग लिया और चारों ओर से सामुदायिक विकास परियोजनाओं के विकास की मांग आने लगी। कुछ ही महीनों में आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। धन जन और द्रव्य की इतनी प्रबल मांग थी कि न तो जनता को प्रतीक्षा के लिये कहा जा सकता था और न सरकार इस मांग को पूरा करने की स्थिति में थी। इसके लिये केवल यही एक विकल्प था कि और अधिक विस्तृत पैमाने पर विकास कार्य प्रारम्भ किया जाय परिणामतः राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं का जन्म हुआ जो हमारे देश में ग्राम्य प्रशासन का अब स्थायी भाग बन चुका है और संविधान में कल्याण राज्य के स्वप्न साकार हो रहे हैं।

राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के आधीन ग्राम-विकास के कार्यक्रम को हाथ में लिया गया है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के द्रुतगामी विस्तार के लिए जनता की प्रबल मांगों की पूर्ति की दृष्टि से इसका आयोजन किया गया था। इस राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम के भी वही लक्ष्य हैं जो कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के। राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम अक्तूबर १९५३ में प्रारम्भ किया गया था। तब से सारे देश में दोनों कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं और अक्तूबर १ ५५ तक १ करोड़ ८ लाख ८ हजार आबादी के १ ६, ५७ गांव इस कार्यक्रम में सम्मिलित थे जबकि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में ८ करोड़ आबादी के १ २ गांवों को इस कार्यक्रम में सम्मिलित करने का लक्ष्य था। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की समाप्ति तक भारत के समस्त गांवों में राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम संचालित हो जायगा और ४ प्रतिशत क्षेत्र में गहन सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ हो जायगा।

गहन विकास की इस आयोजना का लक्ष्य ग्रामवासियों के जीवन के सब पहलुओं को प्रभावित करना है अर्थात् जनता में स्वावलम्बन की भावना का उद्बोधन करना उनका शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास करना और जनता को जीवित रहने आजीविका के

लिए कार्य करने और को कुछ उपार्जित करे उसे हस्तगत करने के अ अ क र के ि त चैतन्य सील बनाना है। एक अधिकारों का घोषणा-पत्र तैयार किया गया है और दृढ़ विश्वास तथा ध्येय निष्ठा के ये तीन सिद्धांत निर्मित किये गये हैं—श्रम द्वारा यह कार्य सम्भव है इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये श्रम को प्रतिष्ठित किया जा सकता है और इस कार्य के लिये अनुकूल अवस्थाएं उत्पन्न की जा सकती हैं। जीवन के आनन्द और स्वावलम्बन द्वारा सृजन के आनन्द पर बल दिया जाता है और यही कारण है कि लोग राष्ट्र के नव-निर्माण में प्राण-पण से जुट गये हैं। जून १९५५ तक जनता ने भूमि धन और श्रम के रूप में इस विशाल कार्य में जो योगदान किया उसका मूल्य १५ २६ करोड़ रुपये है जबकि सरकार ने २५ ८ करोड़ की धनराशि दी। हमारे ग्रामवासी निर्धन हैं और उनके पास अतिरिक्त भूमि तथा धन का अभाव है इस तथ्य के बावजूद भी उन्होंने इस कार्य में मुक्त हस्त से दान दिया है और इसके प्रति दृढ़ निष्ठा तथा विश्वास प्रकट किया है। जून १९५५ तक हमारी सफलताएं इस प्रकार थीं —

कृषि

| | | |
|---|---|---|
| खोदे गए खाद के गढ्ढों की संख्या | ९ १८, | |
| खाद जो वितरित किया गया | ५२,१८ | मन |
| बीज जो बांटे गये | २५,५१ | मन |
| वितरित किये गये सुधरी किस्म के खेती के औजारों की संख्या | १,८६ | |
| परीक्षण एवं प्रदर्शनार्थ स्थापित कृषि-क्षेत्रों की संख्या | ६,११ | |
| फलों तथा सब्जियों के उत्पादन के लिए रक्षित क्षेत्र | २,५७ | एकड़ |
| नव-स्थापित प्रजनन तथा गर्भाधान केन्द्रों की संख्या | ११ ११४ | |
| नस्ल सुधार के लिये केन्द्रों को दिये गये बैलों की संख्या | ४ ७१८ | |
| इलाज किये गये पशुओं की संख्या | ५७ | |
| मछलियां जो दी गईं | ९८, | |
| सुधारी गयी भूमि का क्षेत्रफल | ५,९१, | एकड़ |
| सिंचाई के अन्तर्गत लायी जाने वाली अतिरिक्त भूमि का क्षेत्रफल | १२, | |

स्वास्थ्य और स्वच्छता

| | | |
|---|---|---|
| सोखने वाले गढ्ढों की संख्या | १ ५५, | |
| ग्राम्य शालाओं की संख्या | ५९ ९ | |
| नालियों की लम्बाई | २९ | गज |
| कुएं | २१, | |
| जिन कुंओं की मरम्मत की गयी | १२ | |

**शिक्षा**

| | |
|---|---|
| नये स्कूलों की संख्या | १० |
| बेसिक स्कूलों में परिवर्तित किये गये स्कूलों की संख्या | २,९२९ |
| प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र | २४ |

**जन-संगठन**

| | |
|---|---|
| सामुदायिक केन्द्र | ४८ |
| विकसित जन-संगठन-एकक | ६२ |
| नयी सहकारी समितियां | २२ |
| सहकारी समितियों के नये सदस्यों की संख्या | ५,१२८ |

**सड़कें और संचार साधन**

| | |
|---|---|
| पक्की सड़कों की लंबाई | २,६५१ मील |
| कच्ची सड़कों की लम्बाई | २१ मील |
| कला और कारीगरी के उत्पादन तथा प्रशिक्षण केन्द्र | ४४ |

इन दो कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप किसानों ने खेती के नए तरीके अपनाये हैं लगभग ६ लाख एकड़ भूमि का सुधार किया गया है और १ लाख १ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की गयी है। ११ से अधिक मुख्य ग्राम-केन्द्रों की स्थापना और लगभग ५ अच्छी नस्ल के बैलों का इन केन्द्रों को दिया जाना इस ओर निर्देश करता है कि देश में पशुओं की नस्ल सुधारने की दिशा में पुष्कल प्रयत्न किये जा रहे हैं केवल जनता द्वारा २१ ६५१ मील लम्बी सड़कों का निर्माण इस ओर संकेत करता है कि ग्राम्य-क्षेत्रों में सड़कों की आवश्यकता किस तीव्रता से अनुभव की जाती है।

इन सब कामों की देख-रेख ग्राम-कार्यकर्ता द्वारा की जाती है इसलिये चाहे वे कार्य पशु-पालन से सम्बन्धित हों या कृषि से स्वास्थ्य से सम्बन्धित हों या शिक्षा से ग्राम कार्यकर्ता का एक बहुद्देश्यीय कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है। ग्राम्य स्तर के कार्यकर्ता को जितने ग्रामवासियों को प्रशिक्षित करना है इन समस्याओं की मूलभूत बातों से अवश्य परिचित होना चाहिये। साधारणतया उसे डेढ़ वर्ष तक इस कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है और उसके बाद वह कार्यक्षेत्र में आकर ५ से १ गांवों तक की देखभाल करता है। साढ़े पांच लाख गांवों के लिए लगभग एक लाख कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। अब तक ४१ प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। इन विशेषज्ञों की गतिविधियों में एकीकरण की स्थापना के लिए एक खंड विकास अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। समाज-शिक्षा-संगठनकर्ता जनता को स्वावलम्बन तथा परिश्रम के लिए तैयार करता है।

नीति-विषयक प्रश्नों का पथ-प्रदर्शन एक केन्द्रीय समिति द्वारा किया जाता है जिसमें आयोजना आयोग के सदस्य खाद्य तथा कृषि मंत्री और समिति के प्रधान के रूप में प्रधान मंत्री होते हैं। राज्यों में नीति-निर्देशन का कार्य राज्य विकास समितियों द्वारा किया जाता है जिनके सदस्य विभिन्न विकास विभागों के मंत्री होते हैं। और समिति के अध्यक्ष पद पर मुख्य मंत्री आसीन होते हैं। विकास कमिश्नर समिति का सचिव होता है। जनता के प्रतिनिधि सब स्तरों पर सामुदायिक विकास के कार्य से सम्बद्ध होते हैं।

एक स्वतन्त्र निकाय जिसका नाम कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन है सामुदायिक विकास कार्यक्रम के परिणामों का मूल्यांकन करता है जिससे नीति-निर्माताओं को कार्यक्रम के समय-समय पर मूल्य-निर्धारण से बड़ी सहायता मिलती है।

राष्ट्र-निर्माण के इस महान् कार्य में भारत को अमरीका तथा फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा विशाल परिमाण में आर्थिक और तकनीकी सहायता प्राप्त हुई है। सामुदायिक विकास के कार्यक्रम में आर्थिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का महान् आदर्श निहित है।

शिक्षा

| | |
|---|---|
| नये स्कूलों की संख्या | १० |
| बेसिक स्कूलों में परिवर्तित किये गये स्कूलों की संख्या | ९,९२९ |
| प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र | २४ |

जन-संगठन

| | |
|---|---|
| सामुदायिक केन्द्र | ४८ |
| विकसित जन-संगठन-एकक | १२ |
| नयी सहकारी समितियां | २२ |
| सहकारी समितियों के नये सदस्यों की संख्या | ५,१२८ |

सड़कें और संचार साधन

| | |
|---|---|
| पक्की सड़कों की लंबाई | २,९५१ मील |
| कच्ची सड़कों की लम्बाई | २१ मील |
| कला और कारीगरी के उत्पादन तथा प्रशिक्षण केन्द्र | ४४ |

इन दो कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप किसानों ने खेती के नए तरीके अपनाये हैं लगभग ९ लाख एकड़ भूमि का सुधार किया गया है और १ लाख १ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की गयी है। ११ से अधिक मूल ग्राम-केन्द्रों की स्थापना और लगभग ५ अच्छी नस्ल के बैलों का इन केन्द्रों को दिया जाना इस ओर निर्देश करता है कि देश में पशुओं की नस्ल सुधारने की दिशा में पुष्कल प्रयत्न किये जा रहे हैं केवल जनता द्वारा २१ ९५१ मील लम्बी सड़कों का निर्माण इस ओर संकेत करता है कि ग्राम्य-क्षेत्रों में सड़कों की आवश्यकता किस तीव्रता से अनुभव की जाती है।

इन सब कार्यों की देख-रेख ग्राम-कार्यकर्ता द्वारा की जाती है इसलिये चाहे ये कार्य पशु-पालन से सम्बन्धित हों या कृषि से स्वास्थ्य से सम्बन्धित हों या शिक्षा से ग्राम कार्यकर्ता का एक बहुउद्देशीय कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है। ग्राम्य स्तर के कार्यकर्ता को, जिसने ग्रामवासियों को प्रशिक्षित करना है इन समस्याओं की मूलभूत बातों से अवश्य परिचित होना चाहिये। सामान्यतया उसे डेढ़ वर्ष तक इस कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है और उसके बाद वह कार्यक्षेत्र में जाकर ५ से १ गांवों तक की देखभाल करता है। इससे पांच लाख गांवों के लिए लगभग एक लाख कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। अब तक ४१ प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। इन विशेषज्ञों की गतिविधियों में एकीकरण की स्थापना के लिए एक खंड विकास अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। समाज-शिक्षा-संगठनकर्ता जनता को स्वावलम्बन तथा परिश्रम के लिए तैयार करता है।

नीति-विषयक प्रश्नों का पथ-प्रदर्शन एक केन्द्रीय समिति द्वारा किया जाता है जिसमें आयोजना आयोग के सदस्य खाद्य तथा कृषि मंत्री और समिति के प्रधान के रूप में प्रधान मंत्री होते हैं। राज्यों में नीति-निर्देशन का कार्य राज्य विकास समितियों द्वारा किया जाता है जिनके सदस्य विभिन्न विकास विभागों के मंत्री होते हैं। और समिति के अध्यक्ष पद पर मुख्य मंत्री आसीन होते हैं। विकास कमिश्नर समिति का सचिव होता है। जनता के प्रतिनिधि सब स्तरों पर सामुदायिक विकास के कार्य से सम्बद्ध होते हैं।

एक स्वतन्त्र निकाय जिसका नाम कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन है सामुदायिक विकास कार्यक्रम के परिणामों का मूल्यांकन करता है जिससे नीति-निर्माताओं को कार्यक्रम के समय-समय पर मूल्य-निर्धारण से बड़ी सहायता मिलती है।

राष्ट्र-निर्माण के इस महान् कार्य में भारत को अमरीका तथा फोर्ड फाउन्डेशन द्वारा विपुल परिमाण में आर्थिक और तकनीकी सहायता प्राप्त हुई है। सामुदायिक विकास के कार्यक्रम में आर्थिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का महान् आदर्श निहित है।

## पन्द्रहवाँ अध्याय

# उपसंहार

१

### जीवन के कार्यों का विस्तार

जीवन के कार्य एक सुविस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह विस्तार हमेशा खुली आंख के लिये दृश्य नहीं होता। शरीर-विज्ञानवेत्ता यह भली-भांति जानता है कि आंख की पुतली अपने कार्यों को विनियमित करने के लिये और प्रकाश तथा दूरी के साथ अपनी अनुकूलता स्थापित करने के लिये निरन्तर सिकुड़ और फैल रही है। अणुवीक्षण यन्त्र का प्रयोग करने वाला भौतिक शास्त्र या चिकित्सा विज्ञान का एक विद्यार्थी अपनी उंगली और अंगूठे को निरन्तर केन्द्रित करने वाले स्थान पर रखता है इसी प्रकार रेडियो-रिसीवर भी। प्रतिक्षण उस फोकस का अनुकूलन करना पड़ता है। एक मोटर ड्राइवर अपने स्थान पर बैठा हुआ अपने हाथ स्टियरिंग ह्वील पर रखता है जिसे कि वह लगातार हिलाता रहता है ताकि मोटर कार सड़क के बाईं ओर रहे या वह निर्धारित मार्ग का अनुसरण करे। जब आप हृदय के प्रति मिनट ७२ बार संकुचन और विस्तार का विचार करते हैं, या फेफड़ों के १७ बार प्रतिमिनट सिकुड़ने और फैलने का विचार करते हैं जब आप शरीर के कोषों के निर्माण और विनाश की शाश्वत प्रक्रियाओं का विचार करते हैं जब आप कल्पना करते हैं कि किस प्रकार मस्तिष्क के कोष अब विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को उत्तेजित कर रहे हैं और अब उनका निषेध कर रहे हैं अब आशाएं दे रहे हैं और अब इन्द्रियानुभवजन्य ज्ञान को ग्रहण कर रहे हैं जब आप इस बीज का विचार करते हैं कि किस प्रकार आंतों के सूक्ष्म तन्तु अन्तड़ियों के खनिजमय रसों को शरीर का भाग बना रहे हैं और किस प्रकार शरीर में रक्त-परिभ्रमण द्वारा रक्त के ओषजनीकरण और दूषित पदार्थों के निस्सरण की क्रियाएं निरन्तर संपन्न हो रही हैं, जब आप विचार करते हैं कि एक दूसरे से सहस्रों मीलों की दूरी पर स्थित आकाश के ग्रह-नक्षत्र किस प्रकार गुरुत्वाकर्षण के नियम द्वारा अपनी पूर्व-स्थिति को धारण किये हुए हैं तब आप यह अनुभव करेंगे कि इस छोटे से मानव-शरीर में एक ओर तो कितनी तमाम पेचीदगियां और विस्तार हैं और दूसरी ओर अणु में सब सूक्ष्मताएं विद्यमान हैं। क्या हम यह अनुभव कर सकते हैं कि एक तांबे के सिक्के में ठोस अणु तो समस्त आयतन का दस लाखवां स्थान घेरे हुए हैं जबकि शेष सब खाली स्थान है। एक प्रकांड विद्वान् का कार्य-क्षेत्र सीमित हो सकता है परन्तु एक विशाल हृदय वाले महाप्राण पुरुष की ग्रहणशीलता बड़ी विस्तृत होती है और वह उपनिषद् के महावाक्य "अणोरणीयान्

महतो महीयान्" महत्तम से महान् और लघुतम से लघु की गहराई में पैठ सकता है। इसी प्रकार गांधीजी जब तो आसमान की ऊंचाइयों को छूते नजर आते हैं और जब अपने चरखे की ओर नीचे उतरते दिखायी देते हैं। वे विश्व की गंभीर समस्याओं का समाधान ढूंढ निकालने की योग्यता रखते हैं और साथ ही सेवाग्राम में डा० फ्रीडमैन द्वारा आविष्कृत धनुष चरखे की बनावट और कार्य-प्रणाली में क्या गलती है इस ओर निर्देश करने की भी क्षमता रखते हैं। क्योंकि गांधीजी हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा निर्मित भारतीय ग्राम के पक्षपाती हैं, इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उनका दृष्टिकोण प्रांतीय या धर्मीय है। अगर ऐसा होता तो वे निश्चय ही भारतीय राष्ट्र का अपना नेतृत्व कायम रखने के लिये बड़ी आसानी से समझौता कर सकते थे और उन्हें अनेक बार अपने नेतृत्व का परित्याग करने की आवश्यकता न होती। गांधीजी का अपने विरोधी के प्रति कोई द्वेष-भाव नहीं है और वे अपने विरोधी के दृष्टिकोण के प्रति भी सदा उदार रहे हैं। उन्होंने अपने सिद्धांतों का विरोध करने वाले भारतीय राजनीतिज्ञों के प्रति ही शिष्ट बर्ताव नहीं किया अपितु भारतीय राष्ट्र के शत्रुओं—अंग्रेजों के प्रति भी। वे भारत की आने वाली पीढ़ियों के लिये ही एक प्रकाश-स्तम्भ नहीं हैं अपितु "वे तो एक धार्मिक नेता हैं एक ऐसे महाप्राण महापुरुष हैं जिनकी स्थानीय या राष्ट्रीय महत्ता ही नहीं है अपितु समस्त संसार उनके चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाता है।

## गांधीवाद—जीवन का एक प्रकार

विख्यात अमेरिकन लेखिका पर्ल बक के शब्दों में "आज के विक्षुब्ध और संतप्त संसार में गांधीजी के जीवन-काल में ही उनके नाम से एक व्यक्ति का बोध न होकर जीवन के एक प्रकार का बोध होता है।" अपने अनुयायियों की उद्विग्नता की चिन्ता किये बिना महात्माजी ने यह बार-बार घोषणा की कि वे अंग्रेजों के मित्र हैं उनका उनके प्रति कोई द्वेष-भाव नहीं है और वे अंग्रेजों की मुसीबत के समय सत्याग्रह संग्राम का संचालन करके उन्हें और अधिक परेशानी में नहीं डालेंगे। मी हार्किंग के अनुसार "एक दार्शनिक को किसी दल से संबंधित नहीं होना चाहिये उसे लड़ाई-झगड़ों से ऊपर होना चाहिए। अपने विरोधी के प्रति इसी उदार वृत्ति ने उनके विरोधी को निरस्त्र कर दिया है। गांधीजी ने अपनी आत्म-कथा में इस ओर निर्देश किया है कि दक्षिणी अफ्रीका के प्रधानमंत्री जनरल स्मट्स उनके सत्याग्रह के तौर-तरीकों के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुए थे।

गांधी जी अक्तूबर १९३४ से कांग्रेस के चार-आना सदस्य भी नहीं रहे थे इस बात से कांग्रेस के प्रति उनकी दिलचस्पी कम नहीं हुई। वे कांग्रेस के जीवन-पर्यन्त गैर-अधिकारी पथप्रदर्शक मध्यस्थ और नियामक रहे। जून १९४ में वर्धा में और जुलाई १९४ में दिल्ली में स्वतन्त्र भारत में प्रतिरक्षा के लिए अहिंसा के सिद्धांत को विस्तृत करने के प्रश्न

## पन्द्रहवाँ अध्याय

# उपसंहार

### १

### जीवन के कार्यों का विस्तार

जीवन के कार्य एक सुविस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं। यह विस्तार हमेशा खुली आँख के लिये दृश्य नहीं होता। शरीर-विज्ञानवेत्ता यह भली-भाँति जानता है कि आँख की पुतली अपने कार्यों को विनियमित करने के लिये और प्रकाश तथा दूरी के साथ अपनी अनुकूलता स्थापित करने के लिये निरन्तर सिकुड़ और फैल रही है। अणुवीक्षण यन्त्र का प्रयोग करने वाला भौतिक शास्त्र या चिकित्सा विज्ञान का एक विद्यार्थी अपनी उंगली और अंगूठे को निरन्तर केन्द्रित करने वाले स्थान पर रखता है इसी प्रकार रेडियो-डिजाइनर भी। प्रतिक्षण उस फोकस का अनुकरण करना पड़ता है। एक मोटर ड्राइवर अपने स्थान पर बैठा हुआ अपने हाथ स्टियरिंग व्हील पर रखता है जिसे कि वह लगातार हिलाता रहता है ताकि मोटर कार सड़क के बाईं ओर रहे या वह निर्धारित मार्ग का अनुसरण करे। जब आप हृदय के प्रति मिनट ७२ बार संकुचन और विस्तार का विचार करते हैं या फेफड़ों के १७ बार प्रतिमिनट सिकुड़ने और फैलने का विचार करते हैं जब आप शरीर के कोषों के निर्माण और विनाश की शाश्वत प्रक्रियाओं का विचार करते हैं जब आप कल्पना करते हैं कि किस प्रकार मस्तिष्क के कोष जब विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को उत्तेजित कर रहे हैं और जब उनका निषेध कर रहे हैं जब आज्ञाएँ दे रहे हैं और जब इन्द्रियानुभवजन्य ज्ञान को ग्रहण कर रहे हैं जब आप इस चीज का विचार करते हैं कि किस प्रकार आंतों के सूक्ष्म तन्तु ग्रन्थियों के पचित्रभव रसों को शरीर का भाग बना रहे हैं और किस प्रकार शरीर में रक्त-परिभ्रमण द्वारा रक्त के ओषजनीकरण और दूषित पदार्थों के निस्सरण की क्रियाएँ निरन्तर संपन्न हो रही हैं जब आप विचार करते हैं कि एक दूसरे से सहस्रों मीलों की दूरी पर स्थित आकाश के ग्रह-नक्षत्र किस प्रकार गुरुत्वाकर्षण के नियम द्वारा अपनी ध्रुव-स्थिति को धारण किये हुए हैं तब आप यह अनुभव करेंगे कि इस छोटे से मानव-शरीर में एक ओर तो विश्व की तमाम पेचीदगियाँ और विस्तार हैं और दूसरी ओर अणु की सब सूक्ष्मताएँ विद्यमान हैं। क्या हम यह अनुभव कर सकते हैं कि एक तांबे के सिक्के में ठोस अणु तो समस्त आयतन का दस लाखवाँ स्थान घेरे हुए हैं जबकि शेष सब खाली स्थान है। एक प्रकांड विद्वान् का कार्य-क्षेत्र सीमित हो सकता है परन्तु एक विशाल हृदय वाले महाप्राण पुरुष की ग्रहणशीलता बड़ी विस्तृत होती है और वह उपनिषद् के महावाक्य "अणोरणीयान्

## निहित स्वार्थों के साथ संघर्ष

गांधीजी के कार्यक्रम ने एक ओर तो कांग्रेस और गांधीजी तथा दूसरी ओर विभिन्न निहित स्वार्थों में संघर्ष पैदा कर दिया था।

अस्पृश्यता-निवारण के कार्यक्रम ने सनातनी ब्राह्मणों और सवर्ण हिन्दुओं को, विश्वविद्यालय सुधार ने प्रोफेसरों को मद्य-निषेध ने ताड़ी खींचने वालों को राष्ट्रीय शिक्षा ने अध्यापकों को पंचायतों के कार्यक्रम ने वकीलों और उनके एजेन्टों को, खद्दर ने मिल-मालिकों को, बिक्री कर ने व्यापारियों को, संपत्ति-कर ने धनियों को भूमि-कर ने निर्धनों को महोद्योग ने पूंजीपतियों को, ऋण सहायता अधिनियम ने महाजनों को काश्तकारी कानून ने जमींदारों को हाथ के पिसे चावलों ने मिलों को श्रम-सुधार ने भूमिपतियों को, हड़ताली के प्रस्ताव ने अधिकारियों को भारतीयकरण ने यूरोपियनों को हिन्दी के प्रचार ने अंग्रेजी पत्रों को उपाधियों के निवारण ने धनिकों को और धार्मिक संस्थाओं की संपत्ति पर अधिकार ने पुजारियों तथा महन्तों को कांग्रेस और गांधीजी का शत्रु बना दिया था।

## संतुलित जीवन में सब एक रूप

गांधीजी अपने आदर्शों का परित्याग किए बिना अपनी नीति में अवसर के अनुकूल या किंचित् परिवर्तन करके समस्त राष्ट्र को संकीर्ण स्वार्थों की परिधि से बाहर ले जाने में सफल हुए और उन्होंने उन बाधाओं को पार किया जो भारतीय स्वतन्त्रता के मार्ग में समय समय पर आती रहीं। गांधीजी की सफलता का रहस्य संतुलित जीवन के सिद्धांतों को ठीक-ठीक समझने में है।

वस्तुतः गांधीजी द्वारा प्रतिपादित संतुलित जीवन ही हम सबका ध्येय होना चाहिए। राजनीति में यह केन्द्र-पक्ष कहा जाता है जो कि दक्षिण पक्ष की तरह अनुदार नहीं होता और वाम-पक्ष की तरह अग्रगामी एवं शीघ्र परिवर्तन चाहने वाला नहीं होता। इसे दूसरे रूप में बाड़ी बैंच कह सकते हैं न ही सामने की बैंच जिस पर सत्तारूढ़ दल विराजमान होता है और न ही पिछली बैंच जिसकी आवाज बड़ी कठिनाई से ही कभी सुनी जाती है। परन्तु इनसे पृथक्, इनके नाम रूप में नहीं आपको एक ऐसे संतुलित मस्तिष्क की आवश्यकता है जो कि विरोधी तत्वों की कार्य प्रणाली में समता उत्पन्न कर सके और विरोधी शक्तियों की उत्पत्ति को विनियमित कर सके। कभी-कभी किसी व्यक्ति के गुण ही उसके दोष बन जाते हैं। विचारों में अग्रगामी होना निस्सन्देह एक बड़ा गुण है परन्तु अपने और अपने विरोधी के बीच समझौता न कर सकना एक दोष है। एक व्यक्ति अपने विचारों और सिद्धान्तों से चिपटा रहता है यह ठीक है। निरपेक्ष मापदंडों द्वारा निर्णय करने पर वह मत प्रतिपन्न

पर जो मतभेद पैदा हुए उनकी वे बड़ी सरलता से पूना में जुलाई '४  के अधिवेशन के समय उपेक्षा कर सकते थे। पूना अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने युद्ध में उनके सहायता के कांग्रेस कार्यकारिणी के वर्धा और दिल्ली के निर्णयों की पुष्टि की थी। राष्ट्र का नेतृत्व ही नहीं हिंसा पर आधारित स्वराज्य भी महात्मा जी के लिए कुछ नहीं है। वे एक विश्वविजेता हैं, एक नये विश्वास के संस्थापक हैं और वे एक संगठन द्वारा तभी तक कार्य करने के उत्सुक हैं जब तक वह संगठन उनके सिद्धांतों और दर्शन का पूर्णरूपेण समर्थक है। वे किन्हीं सीमाओं से अपने दर्शन और सिद्धांतों के मर्यादित होने की स्वीकृति नहीं दे सकते। गांधीजी के पास इस दुनिया में ऐसा कुछ नहीं है जिसे वे अपना कह सकें। सन् ३३ में जेल के अन्दर रहकर हरिजनोद्धार के लिये की गई अपनी जद्दोजहद और उपवासों के दौरान में उन्होंने अपने प्रिय साबरमती आश्रम को हरिजनोद्धार के लिए समर्पित कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने सन् ३  में उनका यंग इंडिया प्रैस जब्त कर लिया परन्तु उन्होंने इसे वापस लौटाने की कभी मांग नहीं की। गांधी सेवा संघ के सदस्यों की संख्या भी गांधी जी ने बिलकुल कम कर दी थी और इसमें अब सत्य और अहिंसा के क्षेत्र में अन्वेषण करने वाले कुछ थोड़े से कार्यकर्ता रह गये हैं।

गांधीजी का दर्शन स्थानीय प्रयोग के लिये नहीं है। वह किसी स्थानीय बुराई के लिए ही उपचार-मात्र नहीं समझा जाता। वह तो विश्व की बीमारियों के लिये रामबाण औषधि है। गांधीजी अपने नित्य और शाश्वत स्वरूप के सिद्धांतों में किसी भी शर्त पर परिवर्तन करके समझौते के लिए तैयार नहीं हैं और न ही संकट के समय उन सिद्धांतों को तोड़-मरोड़ सकते हैं। सिद्धांत के विरुद्ध अवसरवादिता उनके शब्दकोष या चरित्र में नहीं है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे समझौतों के लिये अपनी स्वीकृति नहीं देते क्योंकि समझौते तो सत्याग्रह का सार हैं परन्तु उनके सिद्धांतों और दर्शन के नैतिक कार्यव्यापार में किसी प्रकार की रियायत की गुंजाइश नहीं है। मी होम्स के शब्दों में "जिस चीज की शिक्षा दूसरों ने वैयक्तिक अनुशासन के रूप में दी है गांधीजी ने उसे विश्व की मुक्ति के लिये एक सामाजिक कार्यक्रम के रूप में परिवर्तित कर दिया है। एक ऐसे महान् कार्य में निश्चय ही कुछ ऐसा तत्त्व अवश्य होगा जो तुच्छ और क्षुद्र व्यक्तियों की दृष्टि में असंगत और अव्यावहारिक हो। सोफिया वाडिया के शब्दों में "हम इन तथाकथित असंगतताओं और अव्यावहारिकताओं को तभी समझ पाते हैं जब हम गांधीजी को एक महान् आत्मा के रूप में देखते हैं और जब हम इस चीज को हमेशा ध्यान में रखते हैं कि वे ऐसे महापुरुष हैं जो अपने हृदय और मस्तिष्क में समझौता करने से इन्कार कर देते हैं, जो अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करते जो इन घटनाओं को सांसारिक दृष्टिकोण से नहीं देखते परन्तु अपने लिए आत्म-ज्ञान का और दूसरों की आध्यात्मिक सेवा का अवसर समझते हैं।

## निहित स्वार्थों के साथ संघर्ष

गांधीजी के कार्यक्रम ने एक ओर तो कांग्रेस और गांधीजी तथा दूसरी ओर विभिन्न निहित स्वार्थों में संघर्ष पैदा कर दिया था।

अस्पृश्यता-निवारण के कार्यक्रम ने सनातनी ब्राह्मणों और सवर्ण हिन्दुओं को विश्वविद्यालय सुधार ने प्रोफेसरों को मद्य-निषेध ने ताड़ी खींचने वालों को राष्ट्रीय शिक्षा ने अध्यापकों को पंचायतों के कार्यक्रम ने वकीलों और उनके एजेन्टों को, खद्दर ने मिल-मालिकों को बिक्री कर ने व्यापारियों को संपत्ति-कर ने धनियों को भूमि-कर ने निर्धनों को ग्रामोद्योग ने पूंजीपतियों को, ऋण सहायता अधिनियम ने महाजनों को काश्तकारी कानून ने जमींदारों को हाथ के सिले चावलों ने मिलों को भूमि-सुधार ने भूमिपतियों को [illegible] के प्रस्ताव ने अधिकारियों को, भारतीयकरण ने यूरोपियनों को हिन्दी के प्रचार ने मुस्लिम पार्टी को उपाधियों के निवारण ने धनिकों को और धार्मिक संस्थाओं की संपत्ति पर अधिकार ने पुजारियों तथा महन्तों को कांग्रेस और गांधीजी का शत्रु बना दिया था।

## संतुलित जीवन में सब एक रूप

गांधीजी अपने आदर्शों का परित्याग किए बिना अपनी नीति में अवसर के अनुकूल या किञ्चित् परिवर्तन करके समस्त राष्ट्र को संकीर्ण स्वार्थों की परिधि से बाहर ले जाने में सफल हुए और उन्होंने उन बाधाओं को पार किया जो भारतीय स्वतन्त्रता के मार्ग में समय समय पर आती रहीं। गांधीजी की सफलता का रहस्य संतुलित जीवन के सिद्धांतों को ठीक-ठीक समझने में है।

वस्तुतः गांधीजी द्वारा प्रतिपादित संतुलित जीवन ही हम सबका ध्येय होना चाहिए। राजनीति में यह केन्द्र-पक्ष कहा जाता है जो कि दक्षिण पक्ष की तरह अनुदार नहीं होता और वाम-पक्ष की तरह अग्रगामी एवं शीघ्र परिवर्तन चाहने वाला नहीं होता। इसे दूसरे रूप में आड़ी बैंच कह सकते हैं न ही सामने की बैंच जिस पर सत्तारूढ़ दल विराजमान होता है और न ही पिछली बैंच जिसकी आवाज बड़ी कठिनाई से ही कभी सुनी जाती है। परन्तु इससे पृथक इसके वाम रूप में नहीं आपको एक ऐसे संतुलित मस्तिष्क की आवश्यकता है जो कि विरोधी तत्त्वों की कार्य प्रणाली में समता स्थापित कर सके और विरोधी शक्तियों की उत्पत्ति को विनियमित कर सके। कभी-कभी किसी व्यक्ति के गुण ही उसके दोष बन जाते हैं। विचारों में अग्रगामी होना निस्सन्देह एक बड़ा गुण है परन्तु अपने और अपने विरोधी के बीच समझौता न कर सकना एक दोष है। एक व्यक्ति अपने विचारों और सिद्धांतों से चिपटा रहता है यह ठीक है। निरपेक्ष मापदण्डों द्वारा निर्णय करने पर वह मत प्रतिपादित

है कि वह मानवता की आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहा है और यह चेतना है कि जब तक उसकी दिशा ठीक है वह ठीक अपने गंतव्य स्थान की ओर जा रहा है। गांधीजी का ऐसा विश्वास है कि यात्रा के अंतिम दौर में पहले दौर की अपेक्षा बहुत कम समय लगता है और जब एक सत्याग्रही अपने ध्येय की ओर अग्रसर होता है तो प्रारम्भिक दिनों में जो चीज उससे दूर हटती हुई प्रतीत होती थी अब दुगुने वेग के साथ उसकी ओर आती हुई दिखायी देती है। एक सत्याग्रही अहिंसा के मंदिर का पुजारी होने के कारण सदा आत्मविश्वासी होता है।

गांधीजी की महानता में महत्ता का इससे बढ़कर सादा और स्पष्ट चित्र और कोई नहीं हो सकता जो न्यूयार्क के कम्यूनिटी चर्च के भी थे एच होम्स ने आज से १६ साल पहले खींचा था और जिसमें उन्होंने अमरीकी जनता तथा संसार के आगे अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा यह पहले ही घोषणा कर दी थी कि "गांधीजी संसार के सबसे महान् पुरुष हैं। होम्स महोदय कहते हैं, "गांधीजी नम्र हैं मृदु हैं और परम दयालु हैं। वे बड़े विनोदी स्वभाव के हैं और उनके बर्ताव की सादगी अत्यन्त चित्ताकर्षक है। वे शान्त स्वभाव हैं और अपने व्यवहार में मृदुल हैं उनकी संकल्प शक्ति दुर्दमनीय और साहस अनुपमेय है। उनकी बच्चों की सी निष्कपटता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और सत्यनिष्ठा अगाध है। उनके पास खोने के लिये कोई वस्तु नहीं है। इसलिये उनकी स्थिति अनाक्रमणीय है। स्वयं प्रत्येक वस्तु का बलिदान करके वे दूसरों से कोई भी वस्तु मांग सकते हैं। भौतिक विचार, सांसारिक चिन्ताएं और महत्वाकांक्षाएं कभी की उनसे विदा हो चुकी हैं। सत्य और प्रेम की उच्च भावना उन्हें पूर्ण रूप से परिव्याप्त किये है। महात्मा जी कहते हैं "मेरा धर्म भगवान् की सेवा है इसलिये मानवता की सेवा है और सेवा का अभिप्राय है आत्म-शुद्धि तथा प्रेम।

एक किसान को गांधीजी किसी भिन्न लोक से आए हुए प्राणी प्रतीत होते हैं, ऐसे प्राणी जिन्हें प्रकृति की शक्तियों पर लगभग अतिप्राकृतिक शक्ति प्राप्त है, एक ऐसे प्राणी जिनके प्रति सम्मान और भय की मिश्रित भावना—जो प्रायः दास-भावना का रूप धारण कर लेती है—प्रकट की जानी चाहिए, एक ऐसे प्राणी जिनके आगे भय से कम्पन पैदा होने लगता है और जिनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। यह ठीक ही कहा गया है कि महात्मा गांधी ने अपने देशवासियों को जो सबसे बड़ी भेंट दी है, वह गोरे आदमियों की उपस्थिति में भय की भावना पर विजय है। उन्होंने भारतीयों को साहसपूर्वक भारतीय रियासतों को तन कर खड़ा होना सिखाया है गोरों के आगे निर्भय दृष्टि और जानबूझ कर उनके आदेशों की अवहेलना करना सिखाया है। भय छूत से फैलता है। इसी प्रकार निर्भयता भी। गांधीजी में निर्भयता की भावना है जिसे दूसरे लोगों में प्रविष्ट करने की शक्ति उनमें अतुल्य है। उन्होंने भारतीय रियासतों में साहस का संचार किया है कि वे जिला

अधिकारियों की विरोधी कार्रवाई के बावजूद भी अनुचित भूमि-करों को देने से इन्कार कर देवें।

महात्माजी ने पूर्ण रूप से अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है। उनमें समचित्तता प्रसाद और आनन्द के साथ-साथ उद्दाम उत्साह और वीरोचित धीर्य भावना विराजमान है। वे शक्ति के प्रचंड ज्वालामुखी हैं जिनसे विचारों और आदर्शों के सोते फूट-फूट कर बह रहे हैं। आत्मिक शक्ति ने उन्हें अनन्त धैर्यशील और प्रचंड रूप से शक्तिमान बनाया है। वे सब पर प्रेम की वर्षा कर रहे हैं—वह प्रेम जो कि श्री वफुस एम जोन्स के शब्दों में "पुरस्कृत सम्मानित या प्रशंसित नहीं होना चाहता इसकी एकमात्र इच्छा अपना प्रसार करने की है और उस प्रत्येक वस्तु को जो इसकी कामना करती है प्रफुल्लता और वरदान से परिप्लावित करने की है। इसीलिये यह क्रोध और बुराई का घृणा और विरोध का उसी मंतव्य शक्ति से स्वागत करता है जिस प्रकार कि प्रकाश अन्धकार के साथ हमसिम जाकर मिलता है ताकि वह अपने सम्पूर्ण वरदानों के साथ इस पर विजय पा सके। शत्रु का क्रोध मित्र का धोखा और प्रत्येक दूसरी बुराई प्रेम-भावना के और अधिक विजयी होने में अपनी शानदार जिन्दगी जीने में और अपने समस्त वरदानों को उत्कृष्ट रूप में प्राप्त करने में सहायक होती है।

गांधीजी हमारे कर्णधार हैं। वे नौका की पतवार संभाले हुए हैं। हम सब यात्री हैं। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य मल्लाह हैं जिनका कर्तव्य नौका खेना है। कर्णधार ही इसका दिशा-निर्णय करता है। यात्रियों के रूप में हमारा कर्तव्य शान्त होकर बैठना है और आदेश मिलने पर बाहर निकल आना है। नौका के हिचकोले खाने पर हमें अशान्त और विचलित नहीं होना चाहिये। सब भाँप प्रलोभन या उत्तेजना के बावजूद भी हमें शान्त रहना चाहिए और अपनी जगह नहीं छोड़नी चाहिए। अन्यथा सन्तुलन कायम नहीं रहेगा और हम सब डूब जायेंगे। फिर हम यह कहेंगे कि गांधीजी हमारे ऐसे नायक हैं जिनका अनुसरण करना कठिन है। यदि आप आग बुझाना चाहते हैं तो आपको आटे और पानी को गूंध और से सानना चाहिए, तभी आप आटे से चपातियां बना सकते हैं। भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिये ही गांधीजी को सार्वजनिक आवेश के आटे के साथ सत्य एवं अहिंसा के पानी का मिश्रण करना पड़ा। गांधीजी इसलिये इधर-उधर निरुद्देश्य घूमते से दिखायी देते हैं परन्तु इसके पीछे भी एक प्रयोजन है।

गांधीजी की उपमा वृक्ष के तने से दी जा सकती है जिसकी जड़ें जमीन में चारों ओर बहुत गहरी धसी हुई हैं और जिसके शीर्ष पर अनेकों शाखाएँ-प्रशाखाएँ तथा अनन्त फल और फल हैं। वैसा-क्याल तो तना है। गांधीजी मन-मारक हैं जिनके अनुयायियों ने उनकी स्थिति को अत्यन्त दृढ़ और अचल बना दिया है और कार्यकारिणी के सदस्य पर्ने हैं जिनमें से कुछ दूसरों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं परन्तु वे सब तन को स्थिर और दृढ़ बनाती

ठीक हो सकता है। परन्तु समाज में अकेला वह व्यक्ति ही नहीं है। अगर ऐसा होता तो विचारों और दृष्टिकोणों जैसी कोई चीज ही न होती। विचार तो व्यक्तियों और वस्तुओं के सम्बन्ध पर आधारित सिद्धांत है। इस प्रकार विचारों से एक सामूहिक जीवन का बोध होता है और सामूहिक जीवन के लिए परस्पर अनुकूल समझौतों और "दान तथा प्रतिदान" की भावना आवश्यक है। इसमें प्रमुख तत्व तो हमारी दूर-दृष्टि है और इसी प्रकार अनुभव तथा औचित्य की भावना भी। आपको कितना बोलना है कहां और किन परिस्थितियों में बोलना है यह विषय एक सुसंस्कृत बुद्धिमान व्यक्ति की विवेक शक्ति पर छोड़ देना चाहिए। एक उदार व्यक्ति विवेकहीन और अपव्ययी नहीं हो सकता और न ही एक मित-व्ययी को हम कंजूस की उपाधि दे सकते हैं। एक दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति हठी नहीं हो सकता और न ही समझौते का यह अभिप्राय है कि हमने अपने विरोधी के प्रति आत्म-समर्पण कर दिया है। आज्ञाकारिता आधीनता नहीं है और न ही आत्म-सम्मान को हम अत्याचार या कठोरता कह सकते हैं। प्रायः अपने अधीनस्थों पर अत्याचार करने वाला अपने से उच्च अधिकारी का दास बन जाता है। रेल-टिकट पर १      रुपये खर्च करने वाला व्यक्ति अपने भोजन पर एक रुपया खर्च नहीं करना चाहता या कुली को चार आने नहीं देना चाहता। जीवन में अनेकों विचित्र विरोधाभास पाए जाते हैं और जीवन की इन असंगतताओं में परस्पर संबंध स्थापित करना ही संतुलित चरित्र है।

## गांधी—पूर्ण पुरुष

हममें से बहुतों ने यह अनुभव किया होगा कि एक शक्ति-विशेष के विकास से सामान्यतः दूसरी शक्तियों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। शरीर-विज्ञान के क्षेत्र में इसकी सत्यता हमें एक लंगड़े व्यक्ति में दिखायी देती है जिसकी भुजाओं और वक्षस्थल के पुट्ठे बड़े पुष्ट और शक्तिशाली हो जाते हैं। किसी को अगर एक भुजा खोनी पड़े तो इसकी क्षतिपूर्ति उसकी दूसरी भुजा की अत्यधिक परिपुष्टि एवं सामर्थ्य द्वारा हो जाती है। क्योंकि मनुष्य ने अपनी स्वर-सम्बन्धी शक्तियों का अपनी बुद्धि और उद्वेगों का विकास कर लिया है इसलिये उसने सांप की सी श्रवण-शक्ति शिकारी कुत्ते की सी घ्राण-शक्ति और पक्षियों की सी विहार-शक्ति खो दी है। इसी प्रकार स्वयं मनुष्यों में भी जिसका शारीरिक विकास उत्कृष्ट होता है उसकी बुद्धि मन्द होती है। हम ऐसा देखते हैं कि जिनकी आध्यात्मिक शक्तियां बहुत विकसित होती हैं उनका शरीर इतना सुदृढ़ और सुपुष्ट नहीं होता। गांधीजी ने अपने शरीर को कठोर अनुशासन में रखते हुए भी उसकी सहज वृत्तियों की कभी उपेक्षा नहीं की। वे अपने उद्वेगों का बुद्धि द्वारा नियन्त्रण करते हैं जबकि उद्वेग उनकी बुद्धि का पुष्टीकरण करते हैं। ये दोनों एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं और एक पूर्ण जीवन के साथ एक संतुलित जीवन की स्थापना में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार हमें गांधीजी के व्यक्तित्व का

है कि वह मानवता की आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहा है और यह चेतना है कि जब तक उसकी दिशा ठीक है, वह ठीक अपने गंतव्य स्थान की ओर जा रहा है। गांधीजी का ऐसा विश्वास है कि यात्रा के अंतिम दौर में पहले दौर की अपेक्षा बहुत कम समय लगता है और जब एक सत्याग्रही अपने ध्येय की ओर अग्रसर होता है तो प्रारम्भिक दिनों में जो चीज उससे दूर हटती हुई प्रतीत होती थी अब दुगुने वेग के साथ उसकी ओर आती हुई दिखायी देती है। एक सत्याग्रही अहिंसा के मंदिर का पुजारी होने के कारण सदा आत्मविश्वासी होता है।

गांधीजी की मानवरूप में महत्ता का इससे बढ़कर ताजा और स्पष्ट चित्र और कोई नहीं हो सकता जो न्यूयार्क के कम्यूनिटी चर्च के जी० जे० एच० होम्स ने आज से १६ साल पहले खींचा था और जिसमें उन्होंने अमरीकी जनता तथा संसार के आगे अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा यह पहले ही घोषणा कर दी थी कि "गांधीजी संसार के सबसे महान् पुरुष हैं। होम्स महाशय कहते हैं 'गांधीजी नम्र हैं, भद्र हैं और परम दयालु हैं। वे बड़े विनोदी स्वभाव के हैं और उनके बर्ताव की सादगी अत्यन्त चित्ताकर्षक है। वे शान्त स्वभाव हैं और अपने व्यवहार में मृदुल हैं, उनकी संकल्प शक्ति दुर्दमनीय और साहस अनुपमेय है। उनकी बच्चों की सी निष्कपटता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और सत्यनिष्ठा अथाह है। उनके पास खोने के लिये कोई वस्तु नहीं है। इसलिये उनकी स्थिति अनाक्रमणीय है। स्वयं प्रत्येक वस्तु का बलिदान करके वे दूसरों से कोई भी वस्तु मांग सकते हैं। भौतिक विचार, सांसारिक चिन्ताएं और महत्त्वाकांक्षाएं कभी की उनसे विदा हो चुकी हैं। सत्य और प्रेम की उच्च भावना उन्हें पूर्ण रूप से परिव्याप्त किये हैं।" महात्मा जी कहते हैं, "मेरा धर्म भगवान् की सेवा है इसलिये मानवता की सेवा है और सेवा का अभिप्राय है आत्म-शुद्धि तथा प्रेम।

एक किसान को गांधीजी किसी भिन्न लोक से आए हुए प्राणी प्रतीत होते हैं ऐसे प्राणी जिन्हें प्रकृति की शक्तियों पर लगभग अतिप्राकृतिक शक्ति प्राप्त है, एक ऐसे प्राणी जिनके प्रति सम्मान और भय की मिश्रित भावना—जो प्रायः दास-भावना का रूप धारण कर लेती है—प्रकट की जानी चाहिए, एक ऐसे प्राणी जिनके आगे भय से कम्पन पैदा होने लगता है और जिनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। यह ठीक ही कहा गया है कि महात्मा गांधी ने अपने देशवासियों को जो सबसे बड़ी भेंट दी है, वह गोरे आदमियों की उपस्थिति में भय की भावना पर विजय है। उन्होंने भारतीयों को खासकर भारतीय सिपाहियों को तन कर खड़ा होना सिखाया है गोरों के आगे निर्भय दृष्टि और जानबूझ कर उनके आदेशों की अवहेलना करना सिखाया है। भय भय से पनपता है। इसी प्रकार निर्भयता भी। गांधीजी में निर्भयता की भावना है जिसे दूसरे लोगों में प्रविष्ट करने की शक्ति उनमें अनुपमेय है। उन्होंने भारतीय सिपाहियों में साहस का संचार किया है कि वे बिना

अधिकारियों की विरोधी कार्रवाई के बावजूद भी अनुचित भूमि-करों को देने से इन्कार कर देवें।

महात्माजी ने पूर्ण रूप से अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है। उनमें समचित्तता प्रसाद और आनन्द के साथ-साथ उद्दाम उत्साह और वीरोचित धैर्य भावना विराजमान है। वे शक्ति के प्रचंड ज्वालामुखी हैं जिससे विचारों और आदर्शों के सोते फूट-फूट कर दूर जा रहे हैं। आत्मिक शक्ति न उन्हें अनन्त धैर्यशील और प्रचंड रूप से शक्तिमान बनाया है। वे सब पर प्रेम की वर्षा कर रहे हैं—वह प्रेम जो कि श्री रुफुस एम जोन्स के शब्दों में "पुरस्कृत सम्मानित या प्रशंसित नहीं होना चाहता इसकी एकमात्र इच्छा अपना प्रचार करने की है और उस प्रत्येक वस्तु को जो इसकी कामना करती है प्रफुल्लता और वरदान से परिव्याप्त करने की है। इसीलिये यह क्रोध और बुराई का घृणा और विरोध का वही संरस शक्ति से स्वागत करता है जिस प्रकार कि प्रकाश अन्धकार के साथ इसलिये बाहर मिलता है ताकि वह अपन सम्पूर्ण वरदानों के साथ इस पर विजय पा सके। शत्रु का क्रोध मित्र का धोखा और प्रत्येक दूसरी बुराई प्रेम-भावना के और अधिक विजयी होने में अपनी शानदार जिन्दगी जीने में और अपन समस्त वरदानों को उत्कृष्ट रूप में प्राप्त करने में सहायक होती है।

गांधीजी हमारे कर्णधार हैं। वे नौका की पतवार संभाले हुए हैं। हम सब यात्री हैं। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य मल्लाह हैं जिनका कर्तव्य नौका खेना है। कर्णधार ही इसका दिशा-निर्देशन करता है। यात्रियों के रूप में हमारा कर्तव्य शान्त होकर बैठना है और आदेश मिलने पर बाहर निकल आना है। नौका के हिचकोले खाने पर हमें अशान्त और विचलित नहीं होना चाहिये। सब क्षोभ प्रलोभन या उत्तेजन के बावजूद भी हमें शान्त रहना चाहिए और अपनी जगह नहीं छोड़नी चाहिए। अन्यथा सन्तुलन कायम नहीं रहेगा और हम सब डूब जायेंगे। फिर हम यह कहेंगे कि गांधीजी हमारे ऐसे नायक हैं जिनका अनुसरण करना कठिन है। यदि आप आटा गूंधना चाहते हैं तो आपको आटे और पानी को खूब जोर से सानना चाहिए, तभी आप आटे से चपातियां बना सकते हैं। भारत को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिये ही गांधीजी को सार्वजनिक आदेश के आटे के साथ सत्य एवं अहिंसा के पानी का मिश्रण करना पड़ा। गांधीजी इसलिये इधर-उधर निरुद्देश्य घूमते से दिखायी देते हैं परन्तु इसके पीछे भी एक प्रयोजन है।

गांधीजी की उपमा वृक्ष के तने से दी जा सकती है जिसकी जड़ें जमीन में चारों ओर सब तरफ फैली हुई हैं और जिसके शीर्ष पर अनेकों शाखाएं-प्रशाखाएं तथा अनन्त फल और फूल हैं। वैयक्तिक नो तना है। गांधीजी धन-शासक हैं जिनके अनुयायियों ने उनकी स्थिति को अत्यन्त दृढ़ और अचल बना दिया है और कार्यकारिणी के सदस्य डालें हैं जिनमें से कुछ दूसरों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं परन्तु वे सब तने का स्थिर और दृढ़ बनाती

है। कांग्रेस का संगठन जनता का प्रतिनिधित्व करता है इसमें कांग्रेस के कैबीनेट, दर्शक मतदाता अनुयायी प्रशंसक और सदस्य सभी सम्मिलित हैं।

२

## गांधीवाद का निवास कहां है ?

गांधीवाद क्या है और यह कहां रहता है ? जबान पर नहीं कपड़ों में भी नहीं मानव जीवन के विविध परिष्कृत या अपरिष्कृत धार्मिक सामाजिक वर्गों में भी नहीं। आश्रम के पास इसका एकाधिकार नहीं है और न ही सजे-सजाये कांग्रेस के भव्य मंडपों के पास। इसका निवास न तो वन के वृक्षों में है और न तीव्र गति से बहती हुई नदियों के किनारों पर। इसका वास-स्थान तो हृदय है। यह अनेकों भाषाओं में बोलता है पर इसकी जबान एक है। यह एक ही लक्ष्य की ओर जाने वाले सैकड़ों पथों का निर्धारण करता है। उसी आदर्श की निष्ठा में यह हजारों प्रकार की सेवाओं का निष्पादन करता है। इसका निवास भारत के गांवों में है—शायद इसके विशुद्ध रूप में नहीं—आधुनिक वृद्धि एवं विकास के कूड़े-कचरे के साथ जिसे हम सभ्यता का नाम देते हैं।

*हिन्दुस्तान के कस्बे और नगर, प्रवासी ग्रामवालों के लिए केवल उपनिवेश-मात्र* हैं। उन्होंने केवल अपने घरों का ही परित्याग नहीं किया अपितु अपने प्राचीन राष्ट्रीय पक्षपातों का भी परित्याग कर दिया है और शहरी क्षेत्रों के निवासियों के रूप में जीवन के तौर-तरीकों को बदल डाला है आत्म-पूर्णता के आधार पर स्थित ग्राम-संगठन के प्रति अपनी धारणा को बदल डाला है तथा अपने फैशनों अपने कपड़ों अपने पेशों अपने दृष्टिकोणों, अपनी रुचियों और अपनी प्रवृत्तियों को बदल डाला है। परन्तु भारतीय राष्ट्रवाद का वास गांवों में है और गांधीवाद इसके सर्वोत्तम अंशों के पुनरुज्जीवन के लिए सोचता और योजना बनाता है। भारत अब भी अपनी संरचना और आदर्शों की दृष्टि से गांवों में बसता है। इन सब युगों में भारतीय सभ्यता की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहमान है और केन्द्रीय धारा में जिन विविध सहायक नदियों ने अपना जल डाला है उन्होंने विस्तार और विषय-वस्तु की दृष्टि से उसे समृद्ध बनाया है।

बीसवीं शताब्दी के एक महापुरुष और भगवान् के दिव्य अंश के रूप में गांधीजी ने इस प्रकार में स्वतन्त्रता और न्याय सार्वजनिक कर्तव्य और मानवता के सिद्धान्तों की स्थापना के लिए पिछली आधी शताब्दि से महान् प्रयत्न किये हैं। दूसरे शब्दों में एक ओर तो उन्होंने पराधीन देशों की मुक्ति के लिए कार्य किया है और दूसरी ओर छोटे राष्ट्रों की रक्षा के लिए।

ऐसे महान् नियन्ता के वश प्रदर्शन में कांग्रेस ने सेवा के आदर्शों के साथ राजनीति का अभिषेक किया है एक विशाल संस्कृति और विभिन्न वर्गों में स्पष्ट ऊंचे विरल की देश भक्ति

की आवश्यकता पर बल दिया है और ग्राम-नेतृत्व की स्थापना के लिए प्रयत्न किया है। तथ्य तो यह है कि कांग्रेस ने एक नये धर्म—राजनीति का धर्म—की स्थापना की है। धर्म का अभिप्राय किसी विशेष सिद्धान्त या पूजा के प्रकार से नहीं है परन्तु इसके अर्थ तो एक उत्कृष्ट जीवन बलिदान की भावना और आत्म-समर्पण की योजना से है। जब हम राजनीति के धर्म के विषय में बात करते हैं तो हम केवल आज की दूषित राजनीति को पवित्र बनाते हैं, आज की संकुचित राजनीति को अधिक व्यापक बनाते हैं, और आज की प्रतिद्वन्द्वी राजनीति को सहयोगी राजनीति बनाते हैं।

इसी धारणा और मनोवृत्ति के साथ ही हमने भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण में सत्य तथा न्याय का मुख्य घटकों के रूप में समर्थन किया है। जीवन में असत्य को हमेशा ही प्रारम्भ में सस्ती विजय मिली है, छल-कपट और प्रतिहिंसा ने प्राय तर्क और ईमानदारी पर विजय प्राप्त की है। भूतकाल में कानून और तर्कशास्त्र ने स्वयं जीवन को पराजित किया है। परन्तु ये विजयें जितनी आंशिक हैं उतनी ही क्षणिक हैं और उन्होंने विजेताओं को केवल दयनीय स्थितियों में डाल दिया है। बड़े पैमाने पर, महायुद्ध की विजयों ने विजेताओं को विजितों पर कोई सफलता नहीं दी। छोटे पैमाने पर, भारत पर इंग्लैण्ड की तथाकथित विजय से इंगलैण्ड को कोई स्थायी प्रसन्नता नहीं मिली।

## ६
## गांधीजी एक पुरातत्ववस्तुशास्त्र-वेत्ता के रूप में

गांधीजी केवल एक सन्त और दार्शनिक एक अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ एक जन-हितैषी और मानवतावादी ही नहीं हैं अपितु वे इतिहास भूगर्भ-विद्या और पुराण वस्तुशास्त्र के एक ऐसे विद्यार्थी हैं जिन्होंने युगों के मलबे के नीचे दबे हुए खजानों को खोज निकाला है। खान में छिपे हुए हीरे की तरह भारतीय संस्कृति के ये खजाने शताब्दियों तक सुरक्षित आशामय और नहुषे की तरह अनमोल पड़े हैं। गांधीजी केवल इतिहास के विद्यार्थी मात्र ही नहीं हैं अपितु वे आधुनिक इतिहास के निर्माता हैं और उन्होंने प्राचीन इतिहास का संशोधन एवं पुन निर्वचन किया है। यह इतिहास तारीखों और घटनाओं का राजाओं और राज-परिवारों का युद्धों और सन्धियों का इतिहास नहीं है—ये सब तो हिंसा और घृणा के मार्ग रूप हैं। वे तो उस इतिहास के निर्माता हैं जो प्रेम और आत्मिक शक्ति का इतिहास है। इसके मार्ग में आने वाली प्रत्येक बाधा का उन्होंने अपने इतिहास में संग्रह किया है। शरीर का—इसके आवेगों और पक्षपातों का—इतिहास ही हमारी और हमारी संतति की दृष्टि में इतिहास है और हम शरीर के क्रिया-कलाप को ही इतिहास के नाम से संबोधित करने के अभ्यस्त हैं। आत्मिक शक्ति के कार्यों को, नियन्त्रित और मर्यादित संयमित, परिष्कृत और परिशोधित आवेगों को ही संस्कृति तथा सभ्यता का नाम दिया जाता है। वेद और वेदांग, शास्त्र और षड्दर्शन, इतिहास और पुराण, सन्तों और ऋषियों, वीरों और

प्राचीन धर्म-संस्थापकों और दर्शन-व्याख्याताओं के जीवन-सूत्र हैं। अपने दिव्य और उत्कृष्ट रूप में भारत का इतिहास है। भारत के राष्ट्रीय जीवन के उत्कृष्ट सार तत्त्व के गांधीजी सबसे बड़े और आधुनिक व्याख्याता हैं। गांधीजी की सिद्धान्तें बड़ी ऊंची हैं उनका व्यक्तित्व पूर्ण है और वे इतने अधिक नम्र हैं कि इन सब उत्कृष्टताओं और गुणों के बाद भी वे केवल एक साधारण मनुष्य होने का दावा करते हैं। वे बराबर के दरजे वालों में सर्वप्रथम हैं। ऐसा नहीं है कि वे पूर्ण निर्भ्रान्त पुरुष हैं परन्तु उन्होंने धर्मों की संस्कृति को उत्तराधिकार में पाया है और सत्य तथा अहिंसा के अन्वेषण में इसे अपना एकमात्र पथ प्रदर्शक बनाया है। ऐडवर्ड थाम्पसन के शब्दों में "गांधीजी ने एक नया मत चलाया है जिसे हम गांधीवाद कह सकते हैं।" जब गांधीजी द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस के सिलसिले में इंग्लैंड गए थे उन्होंने विभिन्न स्कूलों, शिक्षात्मक बस्तियों फैक्टरी-केन्द्रों घरों और धार्मिक संस्थाओं का निरीक्षण किया था। डा. मरिया मान्टीसरी के स्कूल के बच्चों ने उनके सम्मान में एक स्वागत समारोह का आयोजन किया। महात्माजी के निवास-स्थान पर लन्दन के ईस्ट एण्ड की ओर दर्शकों का तांता बंध गया। लार्ड सैन्की ने सेण्ट जेम्स के प्रासाद में अपनी दायीं ओर गांधीजी को बैठने के लिए सर्वप्रथम स्थान दिया और उनके प्रति अत्यन्त आदर-भाव प्रदर्शित करते हुए कहा "ऐसा प्रतीत होता है कि समय-समय पर गांधीजी मानो किसी आन्तरिक आवाज से प्रेरित होकर कार्य कर रहे हैं। गिलबर्ट मरे, बैलियोल के मास्टर सर माइकेल सैडलर और जी सी डिक्सन जैसे विख्यात साहित्यिक महात्माजी से मिले और कोई तीन घंटे तक उनसे सवाल-जवाब करते रहे। परन्तु वे जरा भी विक्षुब्ध नहीं हुए। रोम में इटली के राजा की सबसे छोटी लड़की प्रिंसेज मेरिया ने महात्माजी के साथ मुलाकात की। पेन्सिलवानिया के डा. रूफुस एम जोन्स (हावर्ड कालिज) यह स्वीकार करते हैं कि "गांधीजी ने मेरे जीवन-दर्शन पर और मेरे वास्तविक जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है।" इंग्लैण्ड के राजा ने कम्बल ओढ़े हुए तथा पैरों में खड़ाऊं पहने हुए इस सन्त-राजनीतिज्ञ का राजभवन में अत्यन्त शालीनता के साथ स्वागत किया। लन्दन के गरीब उनके चारों ओर इकट्ठे हो गये। लंकाशायर के बुनकर और मजदूर महात्माजी से मिले और उन्होंने उनसे विनती की कि वे भारतवर्ष के लिए लंकाशायर की मिलों का कपड़ा लेवें। हरेक को महात्माजी ने उसके अनुकूल जवाब दिये। उन्होंने बकिंघम पैलेस में राज-दरबार के शिष्टाचार का पूर्णतः पालन किया और राजा के समक्ष कोई तर्क-वितर्क नहीं किया। मानचेस्टर के बेकारों को उन्होंने आश्वासन दिया और उनसे सहानुभूति प्रदर्शित की। श्री एडवर्ड थाम्पसन ने बिल्कुल सत्य और ठीक ही कहा है "सुकरात के बाद से इनकी बराबरी का महात्माजी के सिवाय और कोई महापुरुष नहीं हुआ जो पूर्ण आत्म-नियंत्रण के लिए विख्यात हो।"

हमने यह भली प्रकार समीक्षा कर ली और देखा कि गांधीजी किस प्रकार सार्व-

एक धार्मिक महापुरुष हैं। परन्तु उनका धर्म सब धर्मों को बराबर का सम्मान देता है क्योंकि गांधीजी ने हमें बार-बार यह बताया है कि अहिंसा सत्य की आत्मा है, सर्वोच्च धर्म है। उन्होंने अपने समस्त उपदेश को संक्षेप में निम्न शब्दों में व्यक्त किया है

"अगर आप अपने प्रेम—अहिंसा—को इस प्रकार प्रकट करते हैं कि वह आपके तथाकथित शत्रु के मन पर एक गहरी छाप छोड़ जाता है तो आपका शत्रु आपके प्रेम का अवश्यमेव प्रत्युत्तर देगा। यह उस महापुरुष का विश्वास है जिसके बारे में मीलिसेन्ट पोलक ने लिखा है, "अपमानित और प्रताड़ित होकर, और एक अवसर पर तो गोरों द्वारा *डरबन में मारे पीटे जाने पर भी महात्माजी में जरा भी कड़ुवाहट नहीं आई।*" वस्तुतः *समस्त संसार इस पर चकित है कि इतने छोटे शरीर में इतनी महान् आत्मा बसती है।* जरा उस प्रतिष्ठा की कल्पना कीजिये जो सैयम लोगन की मिस मौड रायडेन जैसी पश्चिमी धर्मपरायणा महिलाओं ने महात्माजी के प्रति प्रकट की है "आज दुनिया में सर्वोत्कृष्ट ईसाई एक हिन्दू है।" स्वेबाईल स्विट्जरलैण्ड के भी मीलिसिन पाउसमी प्रसिद्ध दार्शनिक नित्शे के इस वचन का कि "दुनिया में केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ है जो कि क्रास पर ही शहीद हो गया" विरोध करते हुए कहते हैं कि दार्शनिक नित्शे महात्माजी के रूप में इस नए गुरु के दर्शनों के लिए जीवित नहीं रहा। अगर नित्शे जिन्दा होता तो अवश्य ही यह कहता

"उस समय केवल एक ही ईसाई था और वह क्रास पर शहीद हो गया।
आज भी केवल एक ही ईसाई है और वह सेवाग्राम में रहता है।"

इतिहास में इससे बढ़ कर और कोई चामत्कारिक घटना दिखाई नहीं देती कि ईसा की मृत्यु के १९ वर्ष बाद दुनिया के सब हिस्सों से ईसाई नेता महात्माजी से प्रकाश पाने के लिए सेवाग्राम में उनके चरणों में एकत्रित हों। वे इस बारे में महात्माजी का परामर्श चाहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों में फंसे हुए ईसाई राष्ट्रों को सुपथ पर लाने के लिए ईसा की शिक्षाओं के प्रयोग का सर्वोत्तम तरीका कौन-सा हो सकता है। गांधीजी का उत्तर है *"एक ईसाई के रूप में अहिंसक कार्यों द्वारा और बड़े प्रभावी रूप में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में योगदान कर सकते हैं भले ही आपको इसके लिए अपने सर्वस्व की बाजी ही क्यों न लगानी* पड़े। तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती जब तक दुनिया की बड़ी ताकतें साहसपूर्वक निरस्त्रीकरण का पूर्ण निश्चय नहीं कर लेती। मुझे पूर्ण विश्वास है—एक ऐसा जीवित जाग्रत विश्वास जो कि आधी शताब्दी तक अहिंसा के निरन्तर अभ्यास के बाद आज भी उसी प्रकार प्रकाशमान है—कि मनुष्य जाति की रक्षा केवल अहिंसा के द्वारा सम्भव है और यही बाइबिल की शिक्षा का सार है जैसा कि मैंने उसे समझा है। इस प्रकार गांधी के लिये तो यहां यही बहाना चरितार्थ हुई है "उन्हें आज बरेली को। उन्होंने परमात्मा की कृपा की खोज एक ईसाई भूमि में की क्योंकि वहां होने के कारण उन्हें

रेलवे ट्रेन से धक्के देकर बाहर फेंक दिया गया था और भीषण सर्दी में एक छोटे-से स्टेशन पर अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया था। इस अपमान से प्रताड़ित होकर उन्होंने गंभीर विचार किया जिसके परिणामस्वरूप सत्याग्रह का जन्म हुआ। उन्होंने अपने घर में ही अपनी धर्मपत्नी की हठधर्मिता के विरुद्ध सत्याग्रह का अभ्यास किया और इसे पूर्ण बनाया। उन्होंने स्थानीय शिकायतों को दूर हटाने के लिए अपने सिद्धान्तों का पहले चम्पारन में और फिर खेड़ा तथा बोरसद में प्रयोग किया। तब उन्होंने अहमदाबाद के मिल मजदूरों की मांगों के लिए अनिश्चित काल तक उपवास करके उसे पूर्ण बनाया बाद में धीरे-धीरे अपने अनुभवों के क्षेत्र को राज्य की समस्याओं तक विस्तृत करते हुए राष्ट्रीय सीमाओं से सुदूर क्षेत्रों तक वे इसे ले गये। इन सब में महात्माजी को भिन्न-भिन्न अंशों तक सफलता प्राप्त हुई परन्तु सारी दुनिया उनके सिद्धान्त को मान गयी है—किसी राजनैतिक नारे या चिह्न के रूप में नहीं रहस्यवादी नीति के रूप में भी नहीं धार्मिक चमत्कार के रूप में भी नहीं, अपितु, एक विज्ञान और कला के रूप में। संसार के ईसाई नेताओं ने महात्माजी के चरणों में बैठना चाहा ताकि वे ईसा के सिद्धान्तों या व्यवहार में आने पर उसे समुचित उत्तर दे सकें। यह सबसे बड़ा सम्मान है जो संसार के ईसाई उनके प्रति प्रदर्शित कर सकते हैं। लेकिन, गरीबी के व्रत के कारण अगाध प्रेम के कारण निःस्वार्थ सेवा के कारण और मानव बुद्धि द्वारा गम्य सर्वोच्च सत्ता में अगाध विश्वास के कारण महात्माजी अपने आपको एक विश्व-शिक्षक की स्थिति तक ले जाने में समर्थ हुए हैं।

गांधीजी ने अपने नम्रता के गुण द्वारा समस्त पृथ्वी के साम्राज्य को विरासत में पाया है। लाखों आदमी उनकी आज्ञा का पालन करते हैं उनकी भौतिक शक्ति के कारण नहीं बल्कि इसलिए कि वे अधिकारपूर्वक बोलते हैं। परन्तु गांधीजी आखिरी मनुष्य होंगे जो अपने को प्रभाव और प्रभुत्व का शिकार बनने देना पसन्द करेंगे। उन्होंने यह स्वीकार किया कि सन् १९१९ में सत्याग्रह प्रारम्भ करके उन्होंने बड़ी जबर्दस्त गलती की थी। उन्होंने यह स्वीकार किया कि उनके राजकोट के उपवास में हिंसा सम्मिश्रित थी। महात्माजी अपनी गलतियों को स्वीकार करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों के दोषों की निःसंकोच घोषणा की है। अपने ही देशवासियों द्वारा अमृतसर में अराजकता और हिंसा का प्रदर्शन जिसके कारण जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ सन् १९२२ में चौरी-चौरा के पुलिस थाने में २१ सिपाहियों और एक थानेदार का जिन्दा जलाया जाना कोहाट, मुल्तान सहारनपुर, बनारस कानपुर, कलकत्ता दिल्ली बंगलौर, गुलबर्गा, सिकन्दराबाद इलाहाबाद बम्बई, जम्मू, सक्खर तथा दूसरे स्थानों में हिन्दू-मुस्लिम दंगे-फिसाद—इन सबकी गांधीजी ने बड़ी कड़ी आलोचना की। १९१९ में उन्होंने कांग्रेस में रहने की अनिच्छा प्रकट की जब तक कि अमृतसर कांग्रेस जनता की ज्यादतियों के कारण उसकी भर्त्सना कर उसे दोषी न ठहराये और विषय समिति पहले ऐसा करने के

लिए तैयार नहीं थी। जब सन् १९२१ में अपने बन्धुओं ने एक ऐसा भाषण दिया जो अहिंसा और हिंसा की सीमा-रेखा पर था तो उन्होंने अपने बन्धुओं को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे यह घोषणा करें कि उनका हिंसा का कोई इरादा नहीं है। उन्होंने शत्रु की मुसीबत से कभी फायदा नहीं उठाया और अपने पक्ष की अव्यवस्था और कमजोरियों से शत्रु को हमेशा लाभ उठाने दिया है। सन् १९३४ में अपने ७ अप्रैल के पटना के वक्तव्य में उन्होंने यह अवज्ञा आन्दोलन को बन्द करते हुए कहा था

> मैं अनुभव करता हूँ कि जनता ने सत्याग्रह के पूर्ण शुद्ध संदेश को ग्रहण नहीं किया है क्योंकि इस संदेश को दूसरों तक पहुँचाने की प्रक्रिया में अपमिश्रण हो गया है। मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि आध्यात्मिक साधनों की शक्तिमत्ता में तब अन्तर आ जाता है जब इनका प्रयोग अनाध्यात्मिक साधनों द्वारा सिखाया जाता है। आध्यात्मिक सन्देश तो स्वयं-प्रचारक और स्वयं-प्रसारक होते हैं।

यदि गांधीजी को समकालिक विश्व से स्वीकृति और प्रशंसा प्राप्त हुई है केवल अपने अनुयायियों से ही नहीं अपितु समालोचकों से भी जिनमें दार्शनिक सन्त और महात्मा सम्मिलित हैं तो यह हमारे संतोष के लिए पर्याप्त कारण है। उनके नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम में भाग लेने वालों या असंबंधित तथा निरपेक्ष एवं उदासीन दर्शकों द्वारा महात्माजी की प्रशंसा एक चीज है परन्तु उस समय की ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने सरकारी दस्तावेजों में महात्माजी की प्रशंसा सर्वथा भिन्न चीज है।

नीचे १९१९ के "India" से जो कि एक सरकारी प्रकाशन है, एक उद्धरण दिया जाता है

> साधारणतया गांधीजी आत्मत्याग के उच्च आदर्शों पर चलने वाले और पूर्ण निःस्वार्थ महापुरुष समझे जाते हैं। दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के पक्ष-समर्थन से लेकर उन्हें अपने देशवासियों का पारम्परिक सम्मान प्राप्त हुआ है जो कि पूर्व के लोग अपने तपस्वी धार्मिक नेताओं को सदा से देते आये हैं। महात्माजी के प्रशंसक किसी विशेष धर्म या संप्रदाय से संबंधित नहीं हैं। जबसे उन्होंने अहमदाबाद में रहना प्रारम्भ किया वे विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों में जोर-शोर से लगे हुए हैं।
>
> जिस किसी व्यक्ति या श्रेणी को वे प्रताड़ित और पीड़ित समझते हैं उसका पक्ष समर्थन करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। और इस चीज ने उन्हें अपने देशवासियों का अत्यन्त प्रिय बना दिया है। बम्बई प्रेसीडेंसी की देहाती और शहरी जनता पर उनका महान् प्रभाव है और उन्हें बड़ी भक्ति भावना तथा आदर की दृष्टि से देखा जाता है। भौतिक शक्ति के ऊपर 'आत्मिक शक्ति' की श्रेष्ठता में विश्वास के कारण, महात्माजी की यह दृढ़ धारणा है कि 'रौलट एक्ट' के

विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध के शस्त्र जिसका उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में बड़े प्रभावी ढंग से प्रयोग किया था, का प्रयोग उनका परम कर्तव्य है। २४ फरवरी को यह घोषणा की गयी थी कि महात्माजी निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रह करेंगे अगर ये बिल पास कर दिये गए।

गांधीजी ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से किसी भी प्रकार की भौतिक शक्ति का आश्रय लेने की निन्दा की। उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि वे नागरिक कानूनों के निष्क्रिय प्रतिरोध द्वारा सरकार को रौलट एक्ट के परित्याग के लिए बाध्य कर सकेंगे। १८ मार्च को रौलट बिलों के बारे में उन्होंने एक प्रतिज्ञा प्रकाशित की जो इस प्रकार है :

"हमारी यह दृढ़ धारणा है कि १९१९ का इंडियन क्रिमिनल ला एमेंडमेंट बिल नं. १ और क्रिमिनल ला एमरजेंसी पावर्स बिल नं. २ अन्याय पर आधारित, स्वतन्त्रता और न्याय के सिद्धान्तों का हनन करने वाले तथा व्यक्ति के उन आधारभूत मौलिक अधिकारों के विनाशक हैं जिन पर समग्र रूप में भारत की और राज्य की सुरक्षा आश्रित है; हम यह जोरदार शब्दों में कहते हैं कि इन बिलों के कानून बनने की हालत में और जब तक वे वापस नहीं लिये जाते, हम इन नियमों को नागरिक के रूप में मानने से सर्वथा इनकार कर देंगे और ऐसे कानूनों को भी मानने से इनकार कर देंगे, जो इसके बाद नियुक्त समिति की दृष्टि में अनुचित सिद्ध हों और हम फिर यह घोषणा करते हैं कि इस बाहोजहद में हम ईमानदारी और निष्ठापूर्वक सत्य का पालन करेंगे और मानव जीवन तथा संपत्ति पर किसी प्रकार का हिंसात्मक आक्रमण कदापि नहीं करेंगे।"

गांधीजी ने सदा धर्म-युद्ध किया है वह धर्मयुद्ध जिसका हमारे महाकाव्यों में वर्णन है और जो सदा सीमित हिंसा के धरातल पर लड़ा जाता था। मित्रों ने उन पर बहुत अधिक आक्षेप एवं आक्रमण किये हैं। श्री गिल्बर्ट मरे की सुन्दर भाषा में 'महान् जन-समुदाय पर एक ऐसे निरस्त्र व्यक्ति का आध्यात्मिक प्रभाव स्वयं आश्चर्य में डालने वाला है परन्तु जब वह आदमी केवल हिंसा का प्रतिषेध ही नहीं करता अपितु अपने शत्रुओं को उनकी जरूरत के समय सहायता करता है और अपनी इन्सानी कमजोरियों को भी स्वीकार करता है तब वह निर्विवाद रूप से समस्त संसार की प्रशंसा का पात्र बनता है।"

गांधीजी की सफलता किसी पैमाने से नहीं मापी जा सकती। सफलता और असफलता सत्याग्रह में सापेक्षिक शब्द हैं। वे गीता की दृष्टि में उपेक्षणीय हैं। सब सफलता केवल समय का प्रश्न है। अपने ध्येय के प्रति दृढ़ निष्ठा और विश्वास ही वे चीजें हैं जिन पर हमें एकमात्र अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। अन्तर में ऐसे एकनिष्ठ विश्वास के साथ

हर सत्याग्रह में गांधीजी ने अपने को सबसे आगे रखा है; समझौता करने में उन्होंने हमेशा उदारता का परिचय दिया है। उन्होंने यह स्वीकार किया है "राष्ट्र की सामूहिक सम्मति की रफ्तार धीमी होती है; पुराने जमाने में सारे-के-सारे कबीले के स्थान-परिवर्तन की तरह यह घरेलू सामान से बहुत अधिक लदी होती है। हजारों अदृश्य वस्तुएँ इसके रास्ते को बदल सकती हैं या उसमें बाधा उपस्थित कर सकती हैं। एक विरोधी अवरोध या वर्तमान सुविधा के प्रलोभन के कारण अपने मौलिक ध्येय से थोड़ा दूर भी हटा जा सकता है। किसी पथ-प्रदर्शिका बुद्धि और केन्द्रीय इच्छा का अभाव इसे अस्त-व्यस्त कर सकता है परन्तु अनुभव सिखाता है कि नायक बनने के इच्छुक व्यक्तियों को उन्नति के इस निरन्तर तत्त्व को सदा दृष्टि में रखना चाहिए कि बुद्धिमान सेनानायक का स्थान बिल्कुल आगे मोर्चे पर होने की बजाय प्रायः सबसे पीछे या केन्द्र में होना चाहिए। स्वामी नेतृत्व का रहस्य यह जानना है कि किस प्रकार उदार होना चाहिए और मध्यमार्ग अपनाने के लिए सन्नद्ध होना चाहिए। गांधीजी ने अपने द्वारा संगठित अहिंसक संग्रामों में इस चीज को अनुभव नहीं किया है क्योंकि वे इन संग्रामों में हमेशा आगे रहे हैं पीछे कभी नहीं परन्तु इन संग्रामों के बाद आने वाले समझौता में उन्होंने इसे अनुभव किया है।

राष्ट्र के भाग्य-निर्माता गांधीजी ने जिनका जन्म ही अपने देश को पराधीनता पाश से मुक्त करने के लिए हुआ है पहले अपने को भय और इच्छा से मुक्त किया है। वे हिंसा और युद्ध से जीर्ण-शीर्ण विश्व के आधुनिक मसीहा हैं।

उनके जीवन में हिन्दुओं के चारों वर्णों और चारों आश्रमों का एक नया संश्लेषण हुआ है। उनके मोक्ष का साधन तप त्याग भक्ति ज्ञान और कर्म का केन्द्र-बिन्दु है। महात्माजी वे सन्त हैं जो ध्यान धारणा का उच्च जीवन व्यतीत करने के लिए जंगल या पहाड़ का आश्रय नहीं लेते न ही समुद्र या नदी किनारे जाते हैं परन्तु वे तो सचि दान, दम दया और क्षमा के अभ्यास द्वारा इस संसार में रह कर ही तपश्चरण कर रहे हैं।

बुराई के साथ युद्ध करने में सत्य और अहिंसा उनके शस्त्र तथा युद्ध कौशल के साधन हैं। उनकी दृष्टि में साध्य और साधन परस्पर परिवर्तनीय हैं सफलता और असफलता, एक हैं सुखी और दुःखी एक हैं। वे मानव-आत्मा को प्रेरित करते हैं और इस आत्म प्रेरणा द्वारा वे यूरोप के राजनीतिज्ञों का विख्यात दार्शनिकों का प्रसिद्ध कवियों और मजदूर धर्माध्यक्षों का बरबस ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। उनके सहयोगी उनके सिद्धान्त को एक निश्चित उच्च-शक्ति में विश्वास की भावना के साथ स्वीकार करते हैं परन्तु जब वे जनता में इसका प्रचार करते हैं तो वे इसे किसी शक्ति वाली बुद्धि में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित अपनी कार्य्यक्रम की योजना का आविष्कार किया है।

"सत्य क्या है?" एक बार पाइलेट ने पूछा था और अहिंसा क्या है? आज

विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध के शस्त्र जिसका उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में बड़े प्रभावी ढंग से प्रयोग किया था, का प्रयोग उनका परम कर्तव्य है। २४ फरवरी को यह घोषणा की गयी थी कि महात्माजी निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रह करेंगे अगर ये बिल पास कर दिये गए।

गांधीजी ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से किसी भी प्रकार की भौतिक शक्ति का आश्रय लेने की निन्दा की। उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि वे नागरिक कानूनों के निष्क्रिय प्रतिरोध द्वारा सरकार को रौलट एक्ट के परित्याग के लिए बाध्य कर सकेंगे। १८ मार्च को रौलट बिलों के बारे में उन्होंने एक प्रतिज्ञा प्रकाशित की जो इस प्रकार है :

"हमारी यह दृढ़ धारणा है कि १९१९ का इंडियन क्रिमिनल ला एमेंडमेंट बिल नं. १ और क्रिमिनल ला एमरजेंसी पावर्स बिल नं. २ अन्याय पर आधारित, स्वतन्त्रता और न्याय के सिद्धान्तों का हनन करने वाले तथा व्यक्ति के उन आधारभूत मौलिक अधिकारों के विनाशक हैं जिन पर समग्र रूप में भारत की और राज्य की सुरक्षा आश्रित है; हम यह जोरदार शब्दों में कहते हैं कि इन बिलों के कानून बनने की हालत में और जब तक ये वापस नहीं लिये जाते हम इन नियमों को नागरिक के रूप में मानने से सर्वथा इनकार कर देंगे और ऐसे कानूनों को भी मानने से इनकार कर देंगे जो इसके बाद नियुक्त समिति की दृष्टि में अनुचित सिद्ध हों और हम फिर यह घोषणा करते हैं कि इस महायुद्ध में हम ईमानदारी और निष्ठापूर्वक सत्य का पालन करेंगे और मानव जीवन तथा संपत्ति पर किसी प्रकार का हिंसात्मक आक्रमण कदापि नहीं करेंगे।

गांधीजी ने सदा धर्म-युद्ध किया है वह धर्मयुद्ध जिसका हमारे महाकाव्यों में वर्णन है और जो सदा सीमित हिंसा के धरातल पर लड़ा जाता था। मित्रों ने उन पर बहुत अधिक आक्षेप एवं आक्रमण किये हैं। श्री गिल्बर्ट मरे की सुन्दर भाषा में "महान् जन-समुदाय पर एक ऐसे निरस्त्र व्यक्ति का आध्यात्मिक प्रभाव स्वयं आश्चर्य में डालने वाला है परन्तु जब वह आदमी केवल हिंसा का प्रतिरोध ही नहीं करता अपितु अपने शत्रुओं की उनकी जरूरत के समय सहायता करता है और अपनी इन्सानी कमजोरियों को भी स्वीकार करता है तब वह निर्विवाद रूप से समस्त संसार की प्रशंसा का पात्र बनता है।"

गांधीजी की सफलता किसी पैमाने से नहीं मापी जा सकती। सफलता और असफलता सत्याग्रह में सापेक्षिक शब्द हैं। वे गीता की दृष्टि में उपेक्षणीय हैं। सब सफलता केवल समय का प्रश्न है। अपने ध्येय के प्रति दृढ़ निष्ठा और विश्वास ही वे चीजें हैं जिन पर हमें एकमात्र अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। अन्तर में ऐसे एकनिष्ठ विश्वास के साथ

हर आन्दोलन में गांधीजी ने अपने को सबसे आगे रखा है समझौता करने में उन्होंने हमेशा यथार्थता का परिचय दिया है। उन्होंने यह स्वीकार किया है "राष्ट्र की सामूहिक सम्मति की रफ्तार धीमी होती है पुराने जमाने में सारे-के-सारे कबीले के स्थान-परिवर्तन की तरह, यह घरेलू सामान से बहुत अधिक लदी होती है। हजारों अदृश्य वस्तुएं इसके रास्ते को बदल सकती हैं या उसमें बाधा उपस्थित कर सकती हैं। एक विरोधी अवरोध या वर्तमान सुविधा के प्रलोभन के कारण अपने मौलिक ध्येय से थोड़ा दूर भी हटा जा सकता है। किसी पथ प्रदर्शिका बुद्धि और केन्द्रीय इच्छा का अभाव इसे अस्त-व्यस्त कर सकता है परन्तु अनुभव सिखाता है कि नायक बनने के इच्छुक व्यक्तियों को उन्नति के इस निरन्तर तत्त्व को सदा दृष्टि में रखना चाहिए कि बुद्धिमान सेनानायक का स्थान बिल्कुल आगे मोर्चे पर होने की बजाय प्रायः सबसे पीछे या केन्द्र में होना चाहिए। स्थायी नेतृत्व का रहस्य यह जानना है कि किस प्रकार उदार होना चाहिए और मध्यमार्ग अपनाने के लिए सन्नद्ध होना चाहिए।" गांधीजी ने स्वयं द्वारा संगठित अहिंसक संग्रामों में इस चीज को अनुभव नहीं किया है क्योंकि वे इन संग्रामों में हमेशा आगे रहे हैं पीछे कभी नहीं परन्तु इन संग्रामों के बाद आने वाले समझौतों में उन्होंने इसे अनुभव किया है।

*राष्ट्र के भाग्य-निर्माता गांधीजी ने जिनका जन्म ही अपने देश को पराधीनता* पाश से मुक्त करने के लिए हुआ है पहले अपने को भय और इच्छा से मुक्त किया है। वे हिंसा और युद्ध से जीर्ण-शीर्ण विश्व के आधुनिक मसीहा हैं।

उनके जीवन में हिन्दुओं के चारों वर्णों और चारों आश्रमों का एक नया संगम हुआ है। उनके मौन का साधन रूप त्याग, भक्ति ज्ञान और कर्म का केन्द्र-बिन्दु है। महात्माजी वे सन्त हैं जो ध्यान धारणा का उच्च जीवन व्यतीत करने के लिए जंगल या पहाड़ का आश्रय नहीं लेते न ही समुद्र या नदी किनारे जाते हैं परन्तु वे तो सर्व दान, धर्म दया और क्षमा के अभ्यास द्वारा इस संसार में रह कर ही तपश्चरण कर रहे हैं।

बुराई के साथ युद्ध करने में सत्य और अहिंसा उनके [illegible] तथा [illegible] के साधन हैं। उनकी दृष्टि में साध्य और साधन परस्पर परिवर्तनीय हैं सत्यता और अनासक्ता, एक है सुखी और धनी एक है। वे मानव-आत्मा को प्रेरित करते हैं और इस आत्म प्रेरणा द्वारा वे युगों के पदार्थविज्ञानियों का [illegible] का [illegible] शक्तियों और [illegible] धर्मात्माओं का [illegible] ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। उनके सहयोगी उनके सिद्धान्त को एक निश्चित उच्च-शक्ति म विश्वास की भावना के साथ स्वीकार करते हैं परन्तु जब वे जनता में इसका प्रचार करते हैं तो वे इसे [illegible] बुद्धि से परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित अपनी सत्याग्रह की योजना का आविष्कार किया है।

न्याय क्या है? एक बार [illegible] ने पूछा था और अहिंसा क्या है? [illegible]

हिन्दुस्तान यह पूछ रहा है। लोग गांधीजी की अहिंसा के विस्तार और परिभाषा के बारे में पूछते हैं। अहिंसा एक दिशा है ध्येय स्थान नहीं एक धारणा है प्राप्ति नहीं। अन्धकार नहीं प्रकाश असत्य नहीं सत्य घृणा नहीं प्रेम प्रतिशोध नहीं क्षमा—यह सत्याग्रह का सार है। भारतीय राष्ट्रवाद के इस रूपक और बुनकर की राजनीति के ताने पर बुने जाने वाले वस्त्र का यह बाना है। राजनीति महात्माजी की दृष्टि में कोई साहसिक कृत्य नहीं है, अपितु एक धर्म और दर्शन है एक विज्ञान और कला है एक सेवा और पूजा है।

गांधीजी अत्यन्त बड़े कार्यकुशल और बुद्धिमान व्यक्ति हैं बड़े विनोदी और आनन्दमय हैं एक ठीक तरीके से चलने वाले इन्सान हैं एक ऐसे महापुरुष हैं जिनका अनेक परिस्थितियों से सम्बन्ध है वे एक पूर्ण पुरुष हैं। वे दसवें अवतार हैं और अवतारों में सबसे बड़े हैं वे भगवान् बुद्ध के रूप में पुनः धराधाम पर अवतीर्ण हुए हैं, वे ईसा मसीह के रूप में इस पृथ्वी पर पुनः अवतीर्ण हुए हैं। वे गीता के स्थितप्रज्ञ और उपनिषदों के पूर्ण पुरुष हैं। वे लोग धन्य हैं जो उनके युग में रहते हैं जिन्होंने उनके सिद्धान्तों का अनुसरण कर लिया है वे और भी धन्य हैं जो उनके दर्शन का प्रचार करते हैं वे तो सबसे अधिक धन्य हैं। गांधीजी मर सकते हैं परन्तु गांधीवाद सदा अमर रहेगा।

जापान के प्रख्यात कवि योने नगूची ने महात्माजी के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए क्या ही भावपूर्ण शब्द कहे हैं

> स्वर्ग के समीप खड़ा हुआ यह महान् योद्धा, जिसे अपनी अदृश्य विजय का पूर्ण विश्वास है बिगुल बजा रहा है जिसकी आवाज नरक की आखिरी खाड़ी तक पहुँच रही है। यह अकेला और भविष्य को चुनौती दे रहा है। यद्यपि यह जरा-जीर्ण और दुर्बल-काय है, परन्तु इसकी महान् आत्मा के सम्मुख विश्व भय से कांप रहा है। कलंकित एवं उपेक्षित प्रेम, भय-दमित और ध्वस्त जीवन की स्वतन्त्रता, सम्मान और पुरस्कार से वंचित शारीरिक श्रम इस महाप्राण महापुरुष के द्वारा अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह-गर्जना कर रहे हैं। भगवान् के न्याय की प्रशस्ति हो। पृथ्वी-माता के समीप जीवन की करुण कथा के गायक, इस महापुरुष से बढ़ कर और कौन बड़ा देशभक्त हो सकता है? जीवन के भोग-विलास और भौतिक कामनाओं का परित्याग करने वाले इस एकाकी सत्य अन्वेषक से बढ़ कर और कौन बड़ी महान् आत्मा हो सकती है। यह तो क्षुधा और शोक के अनन्त पथ का तीर्थयात्री है।

## परिशिष्ट एक

# गौ-रक्षा

मेरे लिए गौ-रक्षा मानवीय विकास में एक सर्वाधिक आश्चर्यमय घटना है। यह मानव प्राणी को उसकी जाति से परे ले जाती है। मेरे लिए गाय का अभिप्राय है संपूर्ण मानव से नीचे की सृष्टि। गाय के द्वारा मनुष्य समस्त जीवित प्राणियों के साथ अपनी एकरूपता अनुभव करता है। गाय को देवतुल्य क्यों समझा गया यह मुझे सर्वथा स्पष्ट हो गया है। भारत में गाय सर्वोत्तम साथी थी। वह प्रचुर रूप में दुग्धदात्री थी। वह केवल दूध ही नहीं देती थी अपितु उससे कृषिकार्य में भी सहायता मिलती थी। गाय तो दया पर एक कविता है। इस भोले-भाले जन्तु में हमें दया के दर्शन होते हैं। वह लाखों भारतीयों की माता है। गाय की रक्षा का अभिप्राय है भगवान् की समस्त मूक सृष्टि की रक्षा। प्राचीन ऋषि ने जो कोई भी वह था गाय से ही प्रारम्भ किया था। भगवान् की निचली सृष्टि की प्रार्थना अधिक शक्तिशालिनी है क्योंकि यह मूक है। गौ-रक्षा विश्व को हिन्दू धर्म की देन है, और जब तक हिन्दू गौ-रक्षा करेंगे हिन्दू धर्म जीवित रहेगा। (यंग इंडिया अक्तूबर ६ १९२१)।

जैसे कि मैंने पहले इन पृष्ठों में कहा है मेरे लिए मानव से निचली सृष्टि के प्राणियों में गाय सबसे अधिक पवित्र है। वह समस्त निचली सृष्टि के प्राणियों की ओर से मनुष्य द्वारा, जो कि जीवधारियों में सर्वश्रेष्ठ है उनके प्रति न्याय करने के लिए नम्रतापूर्वक प्रार्थना करती है। वह अपनी आंखों से मनुष्यों को यही कहती हुई प्रतीत होती है (पाठक को चाहिए कि वह गाय को उस श्रद्धा से देखे जिस से मैं देखता हूँ) आपको हमारे वध के लिए नहीं नियुक्त किया गया हमारे मांस खाने या दूसरे तरीकों से हमारे साथ दुर्व्यवहार करने की आज्ञा नहीं दी गयी आपको तो हमारा मित्र और रक्षक बनना चाहिए। —यंग इंडिया जून १९२१।

मैंने गौ-रक्षा की कुछ शर्तें रखी थीं जिन्हें मैं फिर से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१ प्रत्येक गौ-रक्षिणी संस्था खुले स्थान में होनी चाहिए जहां हजारों एकड़ जमीन में पशुओं के लिए चारा उगाया जा सके और उनके चलने-फिरने के लिए बड़ा विस्तृत क्षेत्र हो। अगर मेरे हाथ में सब गोशालाओं का प्रबन्ध होता तो मैं बहुत सी वर्तमान गोशालाओं का अच्छे खासे मुनाफे पर बेच देता और पास में अच्छा एवं उपयोगी जमीन के प्लाट खरीद लेता।

२ प्रत्येक गोशाला को एक आदर्श डेरी फार्म और चमड़ा कमाने के कारखाने का

कम देना होगा। मृत पशु के चमड़े, आँतों और हड्डियों आदि का वैज्ञानिक विधियों का आश्रय लेकर पूर्ण लाभप्रद उपयोग करना चाहिए। मृत पशु के चमड़े को मैं पवित्र और उपयोगी समझता हूँ परन्तु मौत के घाट उतारे गये पशुओं के चमड़े और दूसरे भागों के प्रयोग को मैं मानव-उपयोग के लिए, विशेषतः हिन्दुओं के उपयोग के लिए निषिद्ध समझता हूँ।

३ *बहुत सारी गोशालाओं में गो-मूत्र और गोबर को यूँही फेंक दिया जाता है।* मेरी समझ में यह व्यर्थ की बरबादी है और इसके लिए दण्ड मिलना चाहिए।

४ सब गोशालाओं का प्रबन्ध-संचालन, निरीक्षण और पथ-प्रदर्शन वैज्ञानिक रीति से संपन्न होना चाहिए।

५ अगर गोशालाओं का प्रबन्ध उत्तम रीति से किया जाय तो वे आत्मनिर्भर बन सकती हैं। लाभ में आयी धनराशि का प्रयोग गोशालाओं के विस्तार के लिए किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं को मुनाफा कमाने वाली संस्थाएँ बनाने का मेरा उद्देश्य नहीं है, सारे मुनाफे का प्रयोग लूले-लंगड़े और बूचड़खाने भेजे जाने वाले पशुओं को खुले बाजार में खरीदने में करना चाहिए।

६ यह तब तक संभव नहीं है जब तक गोशालाएँ भैंसों और बकरियों इत्यादि को भी गोशालाओं में लेती रहेंगी। जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है जब तक सारा हिन्दुस्तान निरामिष-भोजी नहीं बनेगा, भेड़-बकरियों को कसाई की चाकू की तीक्ष्ण धार से नहीं बचाया जा सकता। भैंसों को तभी बचाया जा सकता है अगर हम भैंसों के दूध के लिए आग्रह नहीं करेंगे और धार्मिक दृष्टि से गाय के दूध के मुकाबले में भैंस का दूध लेना पसंद नहीं करेंगे। बम्बई में लोग गाय के दूध की जगह भैंस के दूध का प्रयोग करते हैं। डाक्टरों की यह सर्वसम्मति है कि चिकित्सा की दृष्टि से गाय का दूध भैंस के दूध से बहुत अच्छा है और डेरी के कार्य-कलाप में निपुण व्यक्तियों की यह सम्मति है कि अगर उत्तम और वैज्ञानिक रीति से प्रबन्ध किया जाय तो गाय के दूध को अब की अपेक्षा और भी अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। मेरी सम्मति तो यह है कि गाय और भैंस दोनों को बचाया जा सकता है। गाय को तभी बचाया जा सकता है यदि हम भैंस पालना छोड़ दें। भैंस को बड़े विस्तृत पैमाने पर कृषिकार्य में नहीं लगाया जा सकता। वर्तमान भैंसों को हम तभी बचा पायेंगे अगर हम आगे इनकी उत्पत्ति और वृद्धि बन्द कर दें। हम धर्म के लिए गाय और भैंसों का पोषण नहीं करते। इनका पोषण तो हम अपने उपयोग के लिए करते हैं। भैंस का पालना गाय और भैंस दोनों के प्रति निर्दयता है। मानवतावादियों को यह पता होना चाहिए कि *हिन्दू ग्वाले अब भी बड़ी निर्दयतापूर्वक अपने भैंसों को मौत के घाट उतार देते* हैं क्योंकि उसे व्यर्थ ही खाने पिलाने में उन्हें कोई लाभ नहीं सूझता। गाय और उसके वंश की रक्षा के लिए—और यही एक व्यवहार्य एवं विचारणीय प्रस्ताव है—हिन्दुओं को गाय और

उसकी उपज के व्यापार से होने वाले लाभ का परित्याग करना होगा। और कोई दूसरा तरीका नहीं है। सच्चा धर्म तो मानवतावादी अर्थशास्त्र की संतुष्टि करता है अर्थात् जहां आय और व्यय एक दूसरे को संतुलित करते हैं। इस प्रकार के अर्थशास्त्र की ओर, गाय की सहायता से केवल गाय की सहायता से जिसके लिए धार्मिक भाव के हिन्दुओं को कुछ वर्षों तक दान के रूप में आर्थिक सहायता देनी होगी पहुँचा जा सकता है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यह मानवतावादी प्रयत्न गो-मांस-भक्षी विश्व के सम्मुख किया जा रहा है। जब तक समस्त संसार प्रधानतः निरामिषभोजी नहीं बन जाता उन सीमाओं में जिनका मैंने अभी वर्णन किया है प्रगति संभव नहीं है। उस सीमा तक सफलता भावी पीढ़ियों के प्रयत्नों पर निर्भर है। इन सीमाओं के पालन न करने का अभिप्राय है भैंस और दूसरे पशुओं के अतिरिक्त गाय को भी हमेशा के लिए बूचड़खाने के सुपुर्द कर देना।

गोशालाओं तथा पिंजरापोलों के संरक्षक हिन्दुओं और दूसरी मानवतावादी सोसाइटियों को गो-रक्षा की इन पूर्वगामी शर्तों को ध्यान में रखना होगा और उन्हें तत्काल ही कार्यरूप में परिणत करना होगा।—यंग इंडिया (मार्च ११ १९२७)।

*अब मैं यह विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हूं कि केवल गौ-रक्षा से मोक्ष मिल* जायगा। मोक्ष के लिए तो मनुष्य को अपनी अधोगामी प्रवृत्तियों—आसक्ति घृणा क्रोध ईर्ष्या-द्वेष इत्यादि से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मोक्ष के रूप में गौ-रक्षा का अर्थ उससे अधिक विस्तृत और व्यापक है जैसी कि कल्पना की जाती है। मोक्ष प्राप्त कराने वाली गौ-रक्षा में तो सब प्राणियों की रक्षा का समावेश हो जाता है।—यंग इंडिया (जनवरी २ १९२५)।

# परिशिष्ट दो

[नीचे हम आधी शताब्दि पूर्व दो विद्वानों की प्रसिद्ध घोषणाओं को उद्धृत कर रहे हैं।]

## अ

## भारत में यन्त्रों और गृहोद्योग पर सर जार्ज बर्डवुड के विचार—

जिस बात का हमें भय है वह भारत में यन्त्रों का सामान्य प्रचलन है। हम यूरोप में भी अभी यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि किन चीजों का निर्माण यन्त्रों से किया जाय और किनका कुटीर उद्योगों के हस्त कला-कौशल द्वारा। अगर हमें कला के पक्ष को दृष्टि में रखना है तो हमें इस पर विचार करना होगा।

अगर कुछ आर्थिक कारणों की वजह से भारत में परम्परा से हस्त-कला-कौशल द्वारा निर्माण की जाने वाली कलात्मक वस्तुओं के लिए धीमे-धीमे यन्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ किया गया तो उस हालत में एक औद्योगिक क्रांति उठ खड़ी होगी अगर इसके पीछे विवेकशील एवं सुशिक्षित सार्वजनिक सम्मति और सामान्य रूप में सुसंस्कृत अभिरुचि न हुई। यह देश की परम्परागत प्राचीन कलाओं को सिद्धान्तों और उनके दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं पर क्रियात्मक प्रयोग की उसी अव्यवस्था में डाल देगी जो तीन पीढ़ियों से इंग्लैण्ड उत्तर-पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में कला और मध्यवर्गीय अभिरुचि के विनाश का कारण बनी है।

भारत में यन्त्रों के प्रचलन से सामाजिक तथा नैतिक बुराइयों की ओर अधिक बढ़ी संभावना है। इस समय सारे देश में भारत के उद्योगों का संचालन हो रहा है यद्यपि हाथ से कपड़ा बुनने के उद्योग को मानचेस्टर और प्रेसीडेन्सी मिलों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। परन्तु प्रत्येक भारतीय ग्राम में परम्परागत कुटीरोद्योग अब भी कार्य कर रहे हैं।

गांव की गली के बाहर ऊँची जमीन पर, बाप-दादाओं के जमाने से मिट्टी के बर्तन बनाने वाला कुम्हार बैठा है और अपने हाथ की स्वाभाविक शक्तियों द्वारा वह चाक पर नाना प्रकार के बर्तन बना रहा है। घरों के पीछे दो या तीन खड्डियां लगी हैं जिन पर नीले लाल और सुनहरी रंग के वस्त्र बुने जा रहे हैं अमलतास के वृक्षों के बीच में प्रेम लटके हुए हैं और कपड़ा बुनते समय ऊपर से पीले फूलों की वृष्टि हो रही है।

गली में पीतल और तांबे के बर्तन बनाने वाले बैठे हैं और कुछ दूरी पर किसी धनी आदमी के बरामदे पर सुनार और हीरे तथा मोतियों पर कलात्मक काम करने वाला बैठा

है जो रुपयों और सोने की मोहरों को सुन्दर आभूषण का रूप दे रहा है, सोने और चांदी के कांटे बना रहा है चन्द्राकार गोल आभूषण कंगन और नथ बना रहा है पांव में पहनने के झंकार करने वाले पायजेब बना रहा है। इन आभूषणों के नमूने वह अपने चारों ओर के फलों और फूलों से या गली के सिरे पर कमलों से भरे हुए गांव के तालाब के किनारे, आमों और ताड़ वृक्षों के झुरमुट में स्थित महान् देवालय के चित्रों और उसकी दीवारों पर की गयी नक्काशी से लेता है।

मध्याह्नोपरान्त साढ़े तीन या चार बजे सारी गली अपने सिरों पर घड़े रख कर गांव के तालाब से पानी भरने के लिए जाती हुई स्त्रियों की रंग-बिरंगी लहराती हुई पोशाकों से चमचमा उठती है और इस प्रकार जब वे पंक्तिबद्ध होकर तालाब की ओर जाती और वापस लौटती हैं उस समय का दृश्य देखते ही बनता है।

थोड़ी देर बाद आदमी हल्के भूरे रंग की गायों को मैदान से हांककर ले आते हैं खिड़कियां बन्द कर दी जाती हैं ठठेरे अपना काम बन्द कर देते हैं वयस्क लोग दरवाज़े पर इकट्ठे होते हैं अन्धेरे में बत्तियां जगमगाने लगती हैं हर तरफ आनन्द और उल्लास का वातावरण छा जाता है संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है और रात को देर तक रामायण तथा महाभारत का श्रुतिमधुर संगीत वायुमंडल में लहराता रहता है।

अगली सुबह सूर्योदय के साथ घरों के सामने खुले में भक्तिभावमय पूजा-पाठ और बलिवैश्वदेव यज्ञ के साथ दिन का प्रारम्भ होता है। समस्त पश्चिमी भारत में कस्बों के गांवों में दैनिक जीवन का यह नित्यप्रति का कार्यक्रम है गांव के ये लोग अपने सीधे सादे आचार-व्यवहार, और आडम्बरहीन मितव्ययी जीवन के साथ बड़े प्रसन्न दिखायी देते हैं उनकी धर्म प्राण संस्कृति जिसमें वे जीवित रहते हैं और जिसमें उनके साहित्य कला तथा सभ्यता की महान् अभिव्यक्ति हुई है पिछले १ वर्षों से इसी प्रकार चली आ रही है।

परन्तु बापदी अर्से से इन कुशल भारतीय कारीगरों को, जिनकी कलात्मक वस्तुओं के लिए पिछले १ वर्षों से सारा संसार अपना स्वर्ण-भंडार भारत को भेजता रहा है और जिन्होंने अपनी अद्भुत कशीदाकारी के लिये नदियों के जल को मलिन नहीं किया पुरातन प्राकृतिक तत्वों को विकृत नहीं किया वायुमंडल को विषाक्त नहीं बनाया अब जिन पीढ़ियों के प्रशिक्षण से जिनकी कला और नैपुण्यता अपने विकास के चरम शिखर पर पहुंची है सहस्रों की संख्या में अपने प्रजातान्त्रिक पद्धति पर चलने वाले गांवों से उखाड़ करके वेतन का प्रलोभन देकर बम्बई की मिलों में भर्ती किया जा रहा है ताकि वे मान चेस्टर की मिलों का मुकाबला कर सकें और मिलों के इस बृहद् उत्पादन में इन कुशल कारीगरों का बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से इतना ही महत्व है जितना कि मशीन के किसी पुर्जे का।

मेरा वर्तमान सभ्यता में मशीनों के उचित कार्यों के अवमूल्यन का अभिप्राय नहीं है,

परन्तु यन्त्रों को मनुष्यों का सेवक होना चाहिए, स्वामी कदापि नहीं। यह जीवन के सौंदर्य और आनन्द का स्थान नहीं ले सकते। भारत तथा इंग्लैण्ड में इसे जबर्दस्ती अपने स्थान पर ही रखना चाहिए।

जब इंग्लैण्ड में सुविकसित अभिरुचि और सार्वजनिक सम्मति के कारण यन्त्रों को सुशिक्षित कलाकारों की कला के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करने दिया जायगा तो सारे समाज में सम्पत्ति का अधिक समानता से वितरण संभव होगा और कामगार लोग अपने दैनिक कार्य के बढ़ते हुए प्रभाव अपनी प्रतिभा बुद्धि-चातुर्य एवं संस्कृति के प्रति बढ़ते हुए सम्मान के कारण सामाजिक नागरिक तथा राजनैतिक स्थिति में ऊँचे उठेंगे और सारे देश को ऊँचा उठायेंगे। इस प्रकार यूरोप जीवन के उस सुख संतोष तथा प्रसन्नता का आनन्द ले सकेगा जो कि अब भी पूर्व में पाया जाता है और जिसके कभी प्राचीन यूनान और रोम में दर्शन होते थे।

## ब

## भारतीय कारीगरी तथा कला-कौशल को सरकारी रूप से दबाने पर श्री ई बी हावेल के विचार

भारत में अब भी प्रशिक्षित एवं कुशल कारीगर बहुत बड़ी संख्या में हैं। ये भवन विद्या के उन्हीं सिद्धान्तों से परिचित हैं और उसी प्रकार के उन्होंने भवन निर्माण किये हैं जैसे मध्यकालीन यूरोप के कुशल कारीगरों ने किये थे। उन्होंने किसी विश्व विद्यालय में प्रवेश नहीं किया क्योंकि भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना इस उद्देश्य से हुई थी कि वे सरकारी काम-काज के लिए क्लर्क बना सकें उनमें किसी प्रकार की कला या धर्म के लिये प्रबन्ध नहीं था। परन्तु उसके पूर्वजों ने ताज माउन्ट आबू के मन्दिर और दूसरे अगणित कलापूर्ण भवनों का निर्माण किया उन्होंने सुगढ़ प्रासादों सार्वजनिक कार्यालयों सिंचाई साधनों और क्रियात्मक उपयोग की ऐसी अनेक वस्तुओं का निर्माण किया जो भवन निर्माण-कला द्वारा सम्भव था।

आजकल के सरकारी विभाग किस प्रकार इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। कुछ नौजवान जिन्हें कला या दस्तकारी में किसी प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ यह जानने के लिये कि एक कोड़े का शहतीर अधिक से अधिक कितना भार उठा सकेगा जमीन पर बिना गिरे एक दीवार कम से कम कितनी लम्बी चौड़ी और ऊँची बनाई जा सकती है और कम से कम कीमत पर एक भवन किस प्रकार बनाया जा सकता है जिससे उस पर व्यय की जाने वाली धनराशि वार्षिक बजट से अधिक न हो—इन सब बातों को जानने के लिए कुछ सूत्र याद कर लेते हैं। जब कोई विभाग भवन की रूपरेखा तैयार कर लेता है एक इंजीनियर विभागीय अभिरुचि के अनुसार भवन के

सामने के भाव को 'मौलिक' या 'क्लासिक' रूप देता है और उस विशेष विभाग की पदवी तथा महत्ता के अनुरूप इस भवन में साज-सजावट कर देता है। तब उत्तराधिकार से भवन निर्माण का काम करने वाले कारीगरों को जिनके परिवार शताब्दियों से भवन-निर्माण का कार्य कर रहे हैं विभागीय कागजों पर बने हुए नमूनों का अनुकरण करके पश्चिम की भवन-निर्माण-कला का अनुसरण करने के लिए कहा जाता है। कला कितनी विकृत हो जाती है यह उन व्यक्तियों की समझ में कठिनाई से आ सकता है जिनकी दृष्टि में वस्तु के कलात्मक पक्ष की अपेक्षा भवन-निर्माण सम्बन्धी असुविधा अधिक भयंकर है। कलकत्ता के एक आधुनिक ढंग के सर्वश्रेष्ठ भवन के निर्माण के लिए कुछ पुश्तैनी भारतीय कारीगर काम पर लगाये गये थे। इनमें से बहुत से कलाकार भी थे और कारीगर भी जो कि भवन की रूपरेखा बनाने उसका निर्माण करने तथा मूर्ति-निर्माण में बड़े कुशल थे। भवन-निर्माण की रूपरेखा और नक्शा उसके लिए विभाग ने तैयार किया था इसलिए उनका इससे कोई सरोकार न था। इस भवन में बहुत सारा सजावट का काम भी होना था परन्तु उसकी रूप रेखा भी पहले से विभाग द्वारा निश्चित कर दी गई थी जो कि इटालियन शैली पर थी। इसलिए कारीगरों को यहां भी कोई प्रयत्न नहीं करना था। दूसरे कारीगरों को जिन्हें बम्बई में यूरोपीय भवन-निर्माण-विद्या का प्रशिक्षण दिया गया था उनके लिए कागज पर तैयार की गई रूप-रेखाओं की हूबहू नकल करने के लिए कलकत्ता लाया गया। इन कारीगरों को २ रुपये प्रति व्यक्ति प्रति दिन के हिसाब से मजदूरी दी गयी। अब भी कलकत्ता के समीप अपने शानदार भवनों के लिए प्रसिद्ध उड़ीसा के जिले में ऐसे राज और भवन-निर्माता मौजूद हैं, जिन्होंने पिछले २ सालों में ऐसे सुन्दर एवं कलात्मक भवन बनाये हैं जिनकी तुलना मध्यकालीन यूरोप के भवनों से की जा सकती है और वे इटालियन शैली पर बनाए गए भवन से जिसका मैंने ऊपर जिक्र किया है बहुत अधिक सुन्दर हैं। इन कारीगरों की औसत आय चार आना प्रतिदिन है या विभागीय राज मजदूर के लिए दी जाने वाली मजदूरी का आठवां भाग है। ये और इनके साथी कारीगर सारे देश में निरन्तर कामकाज की खोज में हैं क्योंकि विभाग को उनकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है। भारतीय कला रोटी के लिए चिल्ला रही है और हम इसे अजायबघर, प्रदर्शनियां और भवन-निर्माण-विद्या दे रहे हैं।

●